श्री मरुधर केशरी प्रवचन माला: पुष्प ४

प्रवचनकार

मरुधर केशरी, प्रवर्तक, आशुकविरत्न

मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

प्रकाशक

श्री मरुधर केशरी साहित्य प्रकाशन समिति

जोधपुर—ब्यावर,

भगवान महावीर पच्चीस-सौवें निर्वाण-महोत्सव समारोह
के उपलक्ष मे

प्रकाशक
श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

प्रेरक श्री रजत मुनि
सम्पादक
श्री सुकन मुनि

प्रथम आवृत्ति,
वि० संवत् २०२६
अक्षय तृतीया

मुद्रण व्यवस्था
संजय साहित्य संगम, आगरा—२
मुद्रक.
रामनारायन मेड़तवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा—२

मूल्य :– पाँच रुपये मात्र

तप और त्याग

सयम और स्वाध्याय

के

कठोर, किन्तु आनन्दमय पथ पर

बढना चाहनेवाले

आत्मार्थी साधको के लिए

प्रस्तुत है—

'साधना के पथ पर' . ।

—मुनि मिश्रीमल

● ●

प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आंख है। यह आंख जन्म से नही, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नही होगा, इस दिव्य नेत्र को जागृत करने मे सद्गुरु का सहयोग अत्यत अपेक्षित है। सद्गुरु ही हमारे इस दिव्य चक्षु को उद्घाटित कर सकते हैं। उनके दर्शन, सत्सग, उपदेश और प्रवचन इसमे अत्यत सहायक होते हैं। इसलिए सद्गुरुओ के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नही पाते। चूकि वे सुदूरक्षेत्रो मे रहते हैं, जहां सद्गुरुजनो का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति मे प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथो मे पहुचाना और भगवद्वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारो वर्षों से होने भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा मे हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधरकेशरी जी म० के प्रवचन साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथो मे पहुचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधरकेशरी जी म० के प्रवचन बडे ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते हैं।

उनके प्रवचनो मे सामयिक समस्याओ पर और जीवन की पेचीदी गुत्थीयो पर बडा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमे बडा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्बक की भाँति अपनी ओर खीचे रखते हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि यह प्रवचन साहित्य पाठको को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेशरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी बहुत सा साहित्य, कविताऐं, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पडा है। हम इस दिशा मे प्रयत्नशील है कि यह जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप मे प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुचे।

इन प्रवचनो का सपादन मुनिश्री के विद्याविनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अत मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानने है।

प्रस्तुत पुस्तक 'साधना के पथ पर' के प्रकाशन मे सोजत सिटी (मारवाड) निवासी धर्मप्रेमी शाह वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा ने २५०१)रु० का उदार अर्थ सहयोग प्रदान किया है। इस सहयोग के लिए हम उनके आभारी हैं।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नही जा सकता।

अब यह पुस्तक पाठको के हाथो मे प्रस्तुत है—इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक जन लाभ उठायेंगे।

—पुखराज सिशोदिया

अध्यक्ष

श्री मरुधर केशरी साहित्य प्रकाशन समिति

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किंतु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्टबल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर विजली की भाति आदोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

'साधना के पथ पर' के प्रवचन पढते समय पाठक को कुछ ऐमा ही अनुभव होगा—इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्बोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी बिल्कुल सहज रूप मे नदी प्रवाह की भाँति वहती हुई सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान ! ऐमा लगता है, जैसे पाठक स्वयं वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है। प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता बहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने वडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक बनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की बहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज सचमुच 'मिश्री' की भांति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक है। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के बाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते है।

मिश्री—की दो विशेषताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही 'मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका वाह्य आकार बडा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही है ?

उनका हृदय बहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाँति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे वद कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते हैं, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते हैं। जीव दया, मानव-सेवा, सार्धमिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है।

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगडे देखते है तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते हैं। समाज मे जहा-तहा साम्प्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते हैं—वहा प्राय मरुधर केसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते हैं।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र तडप है। एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्वपूर्ण कडी की भाति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सन्माननीय रहे हैं। समाज सेवा के

क्षेत्र मे उनका देय बहुत बडा है। राजस्थान के अचलो मे गाँव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभडार, वाचनालय, उद्योगमदिर, व धार्मिक साधना केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र हैं। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करने वाली लगभग ३५ सस्थाए उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही हैं, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो, व विद्वानो को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही, एक सस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र हैं।

मुनिश्री आशुकवि हैं। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किंतु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रवल तरगें भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही हैं।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये हैं। इन प्रवचनो को साहित्यिक रूप देने मे तपस्वी कविरत्न श्रीरूपचन्द्र जी म० 'रजत' का बहुत बडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर इच्छा है कि मरुधर केसरी जी म० का सम्पूर्ण प्रवचन साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथो मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कृतिया हमे प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सम्पादन एव प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा।

मुझे विश्वास है, 'साधना के पथ पर' के पाठक एक नई प्रेरणा और कर्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

हमारा महत्वपूर्ण साहित्य

१	श्रीमरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ	मूल्य २४)
२	श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य)	१०)
३	श्रीमरुधर केसरी ग्रंथावली, प्रथम भाग	५)४० पैसा
४	,, ,, द्वितीय भाग	७)
५	संकल्प विजय	२)
६	सप्त रत्न	२)
७	मरुधरा के महान संत	२)
८	हिम्मत विलास	२)
९	सिंहनाद	१)
१०	बुध विलास प्रथम भाग	१)
११	,, द्वितीय भाग	१)
१२	श्रमण सुरतरु चार्ट	५)
१३	मधुर पंचामृत	१)
१४	पतंगसिंह चरित्र	५० पैसा
१५	श्री वसंत माधुमंजूघोषा	५० पैसा
१६	आषाढभूति	२५ पैसा
१७	भविष्यदत्त	२५ पैसा
१८	सच्ची माता के सपूत	१)
१९	तत्वज्ञान तरंगिणी	१)
२०	लमलोटका लफंदर	२५ पैसा
२१	भायलारो भिरु	२५ पैसा
२२	टणकाइ रो तीर	२५ पैसा
२३	सच्चा सपूत	२५ पैसा
२४	पद्यमय पट्टावली	१)
२५	जिनागम संगीत	५० पैसा

संपूर्ण साहित्य के लिए सूचीपत्र मंगवाइये

श्रीमरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

पीपलिया बाजार, जैनस्थानक

ब्यावर, राजस्थान।

अपनी बात

: मनहर-छंद :

"साधना प्रचारहित, ग्रन्थ यह लिखा गया,
धर्म गग बह रही, त्याग तप कीजिये।
नाम जप जिनवर, धर्म ध्यान करो नित्त;
केवल न दूर 'प्यारे, कर्म कार लीजिये।
परिश्रम करो नित्त, साधना के पथ पर,
थको मत, आगे बढो, ज्ञानसुधा पीजिये।
पल-पल रटो नाम, मरुधर-केशरी का,
रक्षक रहे हैं सच्चे, 'सुकन' धी दीजिये ॥

अनुपम पुस्तिका है, साधना के पथ पर,
नाम के समान गुरु, अमृत महान है।
मधुर व्याख्यान श्रेष्ठ, मरुधरकेशरी के;
पठन करत हित पावे पुण्यवान है ॥
आतमा को सुखकर भरा है अटूट भाव,
कथा उपदेश द्वारा, अनूठा ही ज्ञान है।
गुरुदेव गुणवन्त, त्याग वो वैराग्यवन्त,
'सुकन' पिलावे ज्ञान, पीवे गुणवान है ॥

—सुकन मुनि,

अनुक्रमणिका

साधना के पथ पर

१

आत्मविकास का मार्ग

अट्ठविहकम्मवियला णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा।
दिट्ठसयलत्थसारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

'आज विकास का विषय है। विकास का अर्थ विस्तार है। एक वस्तु यदि एक रूप मे ही बनी रहे तो उसे नष्ट होते देर नही लगेगी। यदि वही वस्तु अनेक रूप मे आ जाय तो फिर उसके नष्ट होने की कोई बात नही है। विकास भौतिक पदार्थों का भी है और आत्मा का भी है। आज जितना भी बाहिरी पदार्थों का विकास आप देख रहे हैं, वह सब भौतिक विकास ही है। नाना प्रकार के कल-कारखाने, बिजली के कार्य, मशीन और यन्त्रो के कार्य, नाना प्रकार के परमाणु अस्त्रो का निर्माण और एटमबम आदि सब भौतिक विकास हैं जिनसे आप सबकी नाना प्रकार की इच्छाओ की पूर्ति हो रही है। आप जितने उद्योग कर रहे हैं, देवी-देवताओ को मनाते है, जालसाजी, कपट और धूर्तता करते हैं, तो इस सबका मूल ध्येय क्या है? यही कि दुनिया मे हमारा विकास हो, हम आगे बढें और दुनिया हमारी ओर देखें। वैभव की वृद्धि को कम कोई नही करना चाहता है, सभी उसकी वृद्धि करने मे ही लग रहे हैं। परन्तु यह भौतिक विकास भी कब होता है? जबकि पूर्व भव-कृत शुभ कर्मों के उदय का सयोग मिले, स्वय मनुष्य उद्योग करे और निमित्त, उपादान कारण सब ही शुद्ध प्राप्त हो जायें तो झट विकास हो जाय। मनुष्य लाखो का लाभ चाहता है, परन्तु होता है सैकडो का ही। क्योकि निमित्त उपादान, कारण समुचित रूप से मिले ही नही। बिना निमित्त, उपादान, कारण के वह आगे कैसे बढ सकता है।'

बौद्धिक विकास

: वचनो का विकास कब होता है ? जब पढाई पास मे होती है और बुद्धि का बल होता है, तब वह व्यक्ति एक जरा सी बात को लेकर घण्टो तक उसका विस्तार पूर्वक विवेचन करता है और तिल को ताड बना करके दिखा देता है। जनता उसके व्याख्यान को सुनते नही आघाती है और एकाग्रमन से सुनती ही रहती है। श्रोताओ की उत्सुकता आगे सुनने के लिए बढती ही जाती है। इसे कहते है वचनो का विकास।

जब गोपाल कृष्ण गोखले लन्दन गये हुए थे तब वहा के प्रबुद्ध वर्ग ने उनके भाषण सुनने की उत्कण्ठा प्रकट की। आयोजको ने उनके भाषण का प्रबन्ध एक व्याख्यान हॉल मे किया। वहा की पद्धति के अनुसार व्याख्यान का विषय पहिले से नही बताया जाता था। किन्तु हॉल मे टगे ब्लैक बोर्ड (सूचना पट्ट) पर पहिले से लिख दिया जाता था और उस पर परदा डाल दिया जाता था। जब व्याख्यानदाता व्याख्यान देने के लिए खडा होता, तब वह परदा उठाकर उस पर लिखित विषय के ऊपर भाषण देने के लिए उससे कहा जाता। जब गोखले व्याख्यान देने के लिए खडे हुए, तब ब्लैक बोर्ड का परदा उठाया गया। उस पर अण्डे का आकार O जैसा एक बडा गोलबिन्दु बना हुआ था। सभी श्रोता लोग उत्सुकता पूर्वक गोखले के मुख की ओर देखने लगे कि उस शून्य के ऊपर ये क्या बोलते है ? किन्तु गोखले ने उस शून्य को ही अपने व्याख्यान का लक्ष्य बिन्दु बनाकर जो इस ब्रह्माण्ड रूप जगत् का विवेचन लगातार तीन घण्टे तक धारा प्रवाह रूप से किया तो श्रोताओ के आश्चर्य की सीमा नही रही और व्याख्यान के अन्त मे तालियो की गडगडाहट से हाल को गुजा दिया।

भाइयो, इसका नाम है वचन का विकास। उन विदेशी विद्वानो ने तो गोखले का मजाक बनाने के लिए O शून्य लिखा था कि देखें—इस पर वे क्या बोलते है ? मगर उन्होने अपने प्रतिभा बल से सबको आश्चर्य चकित कर दिया। यदि गोखले के पास पूर्वजन्मोपार्जित ज्ञान का विशिष्ट क्षयोपशम नही होता तो वे ऐसी प्रतिभा कहा से पाते। जिसके पास यह पूर्वजन्म से उपार्जित ज्ञान का क्षयोपशम नही है, वह यदि किसी कथन का विस्तार भी करे तो भी दुनिया उसके कथन को सुनना नही चाहती है और कहती है कि यह क्यो माथा-पच्ची कर रहा है। और 'हमारा समय क्यो नष्ट कर रहा है। वचनो का यह विकास भी उसके निमित्त उपादान और कारण के पीछे है। अत हमे निमित्त, उपादान भी सुधारना है और कारण की भी शुद्धि करना है।'

निमित्त और उपादान का विवेक

अब मैं आपसे पूछूँ कि निमित्त क्या है उपादान क्या है और कारण क्या है ? तो आप क्या उत्तर देंगे ? आप सुनते तो प्रतिदिन है और समय-समय पर बताया भी गया है। परन्तु आपका दिल तो लहरिया खा रहा है, इन बातो के जानने-समझने का भाव जागृत नही होता है। बुरी बाते आपने जो पच्चीस-पचास वर्ष पूर्व सुनी थी, वे आज भी आपके लिए ताजी की ताजी हैं और कभी उनके कहने का अवसर आ जाय तो सुना भी देंगे। परन्तु इन उपादान-निमित्त आदि बातो के सुनाने का अवसर आये तो कल की आज और आज की अगले दिन भी याद नही रहती है। इसका कारण कर्म का प्रबल उदय है। कहा भी है—

> हेये स्वय सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे।
> तद्धेतु कर्म तद्वन्तमात्मानमपि साधयेत् ॥

हेय वस्तु मे—छोडने योग्य पदार्थ मे, बुरे काम मे मनुष्य की बुद्धि स्वय आगे दौडती है और शुभ कार्य मे यत्न करने पर भी नही लगती है। इसका कारण पाप कर्म है जो इस कर्म मलीमस आत्मा को साध लेता है अर्थात् अपने अनुकूल जैसा चाहता है, वैसा परिणमा देता है।

'कर्म क्या वस्तु है ? इस पर भी आपने कभी विचार किया है ? भाई, आज हम जो कुछ भी भला-बुरा काम करते है, उसके अनुसार एक विशेष प्रकार की सूक्ष्म पुद्गल रज उन भावो से सस्कारित होकर आत्मा से चिपट जाती है और आत्मा को अपने रग मे रग देती है। कर्म का यह बीजारोपण ही कालान्तर मे फलता है जिससे जीव सुख और दुःख का वेदन करता है। यदि हम पुरुषार्थ करें और दुर्भाव हृदय मे आने ही नही देवें तो यह निश्चित है कि हमारे भीतर बुरे विचार उत्पन्न ही न हो।

'हा, तो आज इस बात का विचार करना है कि निमित्त, उपादान और कारण क्या वस्तु है ? और पदार्थ के साथ इनका कैसा कार्य-कारण सम्बन्ध है ? आप एक वस्त्र को ले लीजिए, वस्त्र का उपादान सूत है और उसका कारण रुई-कपास है। तथा वस्त्र बनाने का निमित्त जुलाहा और उसके सहायक तुरी, वेम, शालाका आदि हैं। पहिले कपास को चर्खी मे ओटकर कांकडे (बिनौले) अलग करके रुई निकालेंगे। पुन रुई को पीज करके उसकी पोनी बनाई जावेगी। पुन पोनी से चर्खे द्वारा सूत तैयार किया जायेगा। पुन सूत से वस्त्र बनेगा। इस प्रकार वस्त्र का साक्षात् कारण उपादान तो

सूत है और परम्परा कारण रुई, पोनी और कपास है। तथा वस्त्र बनाने मे निमित्त कारण जुलाहा और उसके वस्त्र बनाने मे सहायक उपकरणादिक है। इन उपादान, कारण और निमित्त के सहयोग से वस्त्र रूप कार्य उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार एक मकान रूप कार्य को ले लीजिए। मकान का उपादान तो ईंट-चूना का सयोग है। उनका कारण मिट्टी, चूना-ककड या पत्थर है। तथा ईट-चूना बनाने के निमित्त पानी, अग्नि और इसी प्रकार की अन्य सहायक सामग्री है। तथा मकान का निमित्त कारीगर, मजदूर, इजीनियर, एव उनके हथियार करनी, हथौडा आदि हैं।

उपादान, निमित्त और कारण की यही व्यवस्था सर्वत्र लगा लेना चाहिए। मोक्ष का उपादान वीतराग भाव है। उसके कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र हैं। तथा उसके निमित्त सर्वज्ञ वीतराग का उपदेश, गुरुजनो की कृपा, सत्सगति आदि हैं।

ससार मे प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के लिए उपादान, कारण और निमित्त इन तीनो की आवश्यकता है। इनमे से किसी एक की कमी होने पर या किसी एक सदोष होने पर निर्दोष कार्य की उत्पत्ति नही हो सकती है।

हमे अपने आत्मा का उद्धार करना है तो इस कार्य के लिए ज्ञान के भडार एव उद्योत कारक महात्मा पुरुष का मिलना निमित्त है। आत्मा के उद्धारक कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं। और आत्मा का वीतराग भाव उपादान है, क्योकि वीतरागता के विना आत्मा का उद्धार असभव है। इस वीतराग भाव के कारण सामायिक आदि है।

अब निमित्तरूप महात्मा पुरुष मिले ऐसे कि जो ससार की वृद्धि करने वाले है, तथा सामाजिक, पौषध, प्रतिक्रमणादि जो आत्मा की उपादान शक्ति के बढाने वाले थे, वे भी नही किए। और पर-निन्दा, विकथा, चोरी, जारी, व्यभिचारी आदि पापो के कारणो का ही योग जोडा, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र रूप ही प्रवृत्ति की। अब वताओ—आत्मा का कल्याण हो तो कैसे हो ? क्योकि ये सभी निमित्त, उपादान और कारण-कलाप तो ससार के वर्धक ही मिलाये हैं तो इनसे तो ससार ही बढेगा।

आत्म उद्धार के साधन

इस विवेचन से आप लोग जान गये होंगे कि आत्मा के उद्धार का कारण-कलाप मिलेगे तो आत्मा का उद्धार होगा। और यदि ससार मे गिराने वाले

कारण-कलाप जुड़ेंगे तो आत्मा का ससार मे पतन होगा और आत्मा चिरकाल तक इस ससार मे परिभ्रमण करती रहेगी। यहाँ पर इतना विशेप जानना चाहिए कि ससार के परिवर्धक कारण-कलापो से भौतिक उन्नति तो सभव नही है। इसके विपरीत आत्मिक-विकास के कारण-कलाप जोडते हुए आत्मिक-विकास तो होगा ही, साथ मे भौतिक विकास भी होगा और भौतिक सुख-सामग्री स्वय ही प्राप्त होती जावेगी। जैसे गेहू बोने वाले को गेहू तो मिलता ही है, साथ मे भूसा भी मिलता है। किन्तु घास-चरी बोने वालो को घास ही हाथ लगता है, अन्न हाथ नही आता। यहाँ पर यह भी ज्ञातव्य है कि जिन व्यक्तियो मे सासारिक या भौतिक विकास की सामर्थ्य होती है, उनमे आत्मिक विकास की भी सामर्थ्य होती है। इसीलिए कहा गया है कि जे कम्मेसूरा ते धम्मेसूरा। अर्थात् जो कर्तव्य कर्म करने मे शूरवीर होते है, वे धर्म-कार्य करने मे भी शूरवीर होते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय कभी नही लेना कि सभी कर्म-शूर पुरुप धर्म-शूर होते हैं। क्योकि अनेक कर्म-शूर धर्म से सर्वथा विमुख देखे जाते है। भगवान ने जो उक्त वाक्य कहा है, वह शक्ति की अपेक्षा से कहा है। अब यह बात दूसरी है कि मनुष्य अपनी शक्ति को भले कार्यों मे व्यय करता है, अथवा बुरे कार्यों मे व्यय करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जो पुरुप सासारिक कार्यों मे पुरुपार्थ-हीन हैं, दीनता का जीवन यापन कर रहे है, वे क्या सिंह के समान पुरुपार्थ जीवन यापन करेंगे। जो सासारिक छोटा कार्य भी नही कर सकते हैं, वे आत्मिक-पारमर्थिक क्या बडा कार्य कर सकेंगे ? जिसे गिनती, पहाडे और पौना सवाया भी याद नही है, या पढा नही है, वह मनुष्य बडे सवालो को क्या हल करेगा ? क्या वह मिती काटा का ब्याज निकाल सकेगा ? अथवा किसी स्थान का क्षेत्रफल और घनफल निकाल सकेगा ? कभी नही निकाल सकेगा। इसलिए विकास करने को दिमाग लडाने की आवश्यकता है।

सोने के थाल मे लोहे की मेख न लगे !

भाइयो, मनुष्य को प्रत्येक कार्य करते समय ऊँच-नीच का बराबर ध्यान रखना चाहिए। यदि हम ऊँचा काम कर रहे हैं तो इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि हमारे द्वारा कोई नीचा या हलका काम न हो जाय। कही सोने के थाल मे लोहे की मेख न लग जाय। कल्पना कीजिए आप अपने बडेरो का नुकता कर रहे हैं और हजारो व्यक्तियो को आमन्त्रित किया है। उस दिन जीमनवारके समय यदि कोई गरीब मनुष्य बिना न्योते

के ही पगत मे आ बैठा है तो उसे देख कर आपने उसका कान पकड कर कहा कि तुझे किसने बुलाया है, निकल जा यहाँ से, वह बेचारा उठकर चला गया। अब आप ही बतलाये कि इस काम से आपकी प्रशसा होगी या निन्दा ? यदि वह बिना बुलाए भूख से पीडित होकर, या आपकी पूडी-मिठाई, पर ललचा करके आ ही गया था, तो खा लेने देते। अरे वह कितना खा जाता ? पाव, आधा सेर या सेर भर खा जाता ? इतने से आपके भोजन मे क्या कमी आ जाती ? पर इतने जन-समुदाय मे उसका माजना बिगाड दिया तो यह क्या शोभनीक बात हुई ? उसे लताड कर, तिरस्कार पूर्वक निकाल करके तो आपने सारे किए हुए पर पानी फेर दिया। और भी देखो तुम अपनी गाय के लिए, बैलो के लिए चारा-कुट्टी लाए और उन्हें चरने के लिए डाल भी दिया। वे खा रहे है। अब ,इतने मे ही उधर से जाते हुए किसी गाय ने चारे मे मुह डाल दिया गुस्से मे आकर आपने ऐसे जोर से लाठी मारी कि वह वही गिर पडी और कराहने लगी। आपके इस कार्य को देखकर लोग यही कहेंगे कि अरे हत्यारे, तूने गाय को मार दिया। क्या तुझ मे इतनी भी दया नही है ? आपके अनाज की दूकान है और दुकान के आगे आपने गेहू जो वाजरे की ढेरिया लगा रखी हैं। इतने मे कोई आवारा या लावारिश जानवर आ गया और उसने अनाज की किसी ढेरी पर मुह डाला और आपने डण्डे से उसकी कमर तोड दी, तो क्या यह अच्छा कार्य किया ? अरे, इन दीन-हीन पशुओ के खेती थोडे ही होती है, या उनके कोई दुकान चलती है ? वे तो बेचारे इधर-उधर से ही पेट भरते है। उनके मुह मारते ही आपने लाठियो की बौछार शुरु कर दी तो ऐसा करने से आपका धर्मात्मापना और सेठपना कहाँ ? रहा यद्यपि अपने माल की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, पर वह भी ऐसे अहिंसक उपाय से करनी चाहिए कि 'न साप मरे और न लाठी टूटे'। और इस बात का भी सदा ख्याल रखना चाहिए कि 'भरी हुई हाडी मे सबीका सीर होता है।' यदि तेरी हाँडी भरी हुई है तो मत विचार कर कि इसमे किसी और का सीर नही है, केवल मेरा ही सीर है और एक मात्र मेरा ही भोगने का अधिकार है। नही नही, भाई, उसमे सबका सीर है। यदि उसमे से एक दो ग्रास ऐसे व्यक्ति के पेट मे पहुच गये, जिसके कि प्राण आँखो मे आ रहे थे, तो उन दो-चार ग्रासो के जाने से वह बच गया। यह सहज ये ही बहुत बडा पुण्य-कार्य आपके उन दो-चार ग्रासो से हो गया। भाई, पर भव मे यह तगदिली और स्वार्थी प्रकृति तुम्हारी रक्षा नही करेगी, किन्तु सहृदयता और उदारता ही तुम्हारी रक्षा करेगी।

और भी देखो—जब न्यात होती है, पचायती भोजन होता है, तब पचो को खास कर पाटे पर वैठाते हैं कि आप लोग आने-जाने वालो की देख-रेख और उनकी आव-भगत करें। जिनको निमन्त्रण दिया गया है, वे तो वेघडक भीतर चले जाते हैं। किन्तु वाहिरी खडे मगते हैं भिखारी कहते हैं कि मालिक हमको भी कुछ दिलाओ। उनकी यह करुण पुकार सुनकर भी पचलोग कहते है कि लाना रे बांस, और मारकर निकालो इनको। भाई, पच बनकर वैठे है और इतना छोटा दिल है। अरे, अभी तो तुम मालिक हो, चाहो तो थोडा-बहुत उन कगलो और भिखारियो को दे सकते हो। घरका मालिक भी तुम्हारे बीच मे नही बोल सकता है। फिर भी तुम्हारे हृदय मे करुणा नही आती। यदि एक-एक, दो-दो पूडियां या मिठाइयो के कुछ टुकडे उनको दे दो, तो तुम्हारे घर की क्या पू जी चली जायगी। यदि जीमनवारके समय देने का अवसर नही है तो कम से कम प्रेम से उन लोगो को यह तो कह ही सकते हो कि भाइयो, ठहर जाओ, न्यात को जीम लेने दो, पीछे हम तुम लोगो को भी देंगे। यदि गुड नही दे सकते तो कम से कम गुड जैसी मीठी वाणी तो बोलो। इसमे भी क्या तुम्हारी जीभ घिस जायगी?

भाई, नदी वह रही है, तो उस पर तेरा ही अधिकार नही है, उस पर सबका अधिकार है। प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओ पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नही हुआ करता है। यदि वहती हुई नदी तेरी जमीदारी के भीतर होकर जा रही है, तो तेरा उस मे इतना ही अधिकार है कि उसके पानी से अपने खेत की सिंचाई कर ले और अपने जानवरो को पानी पिला ले। मगर दूसरो को पानी लेने से या जानवरों को पानी पीने से तू नही रोक सकता है। यदि रोकता है, तो महान् पाप करता है, इससे तेरा हरा-भरा खेत भी सूख जाएगा और भरा-पूरा वश भी नष्ट हो जाएगा।

गरीब की हाय

बुन्देलखण्ड मे ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ है उसके पास से अगाघ जल वाली 'जमडार' नदी बहती है। उसका जहा मे उद्गमस्थान है, उससे एक मील आगे चलकर मगन लाल पटवारी की जमीदारी थी और वह नदी की धारा उसके बीच मे होकर निकलती थी। कहते हैं कि उस पटवारी का भरा-पूरा घर था। एक चौके मे साठ आदमी जीमते थे। एक बार गर्मी के मौसम मे जब कि अन्य जलाशय सूख गये, तब आस-पास के गावो के लोग अपने जानवरो को वहा पर पानी पिलाने के लिए लाने लगे—जहा पर कि उसकी मालिकी की भूमि मे होकर वह नदी बहती थी।

पटवारी को लोभ आ गया और उसने आदेश देदिया कि प्रत्येक जानवर के पीछे जो चार आना देगा, वही पानी पिला सकेगा, अन्यथा नही। फल यह हुआ कि इधर तो जितने भू-भाग मे उसकी मालिकी थी, वहा पर नदी का पानी सूख गया और उधर एक-एक करके उसके परिवार के लोग मरते चले गये और दस-बारह वर्ष मे घर का घर नेस्तनाबूद हो गया। तथा उस भू भाग की नदी मे बरसात के सिवाय आज तक भी गर्मी के दिनो मे पानी नही रहता है, जबकि उसी स्थान से आधे मील आगे नदी मे आजकल भी गर्मी के मौसम मे पानी बहता रहता है। भाइयो, गरीब की, दीन-हीन की कभी हाय अपने ऊपर नही लेनी चाहिए। तुलसी दासजी कह गये है कि

तुलसी हाय गरीब की, कभी न लीजे धाय।
मुई खाल की सास सो, सार भसम हो जाय॥

देखो, मुर्दा जानवर के चमडे से बनी हुई धोकनी की सास से लोहा जैसी सार-ठोस-वस्तु भी भस्म हो जाती है, तब जीवित व्यक्ति की हाय-सास से क्या नही भस्म हो जायगा ? सभी कुछ नष्ट हो जायगा। ऊपर का दृष्टान्त इसका जीता-जागता प्रमाण है।

आप मार्ग मे जा रहे हैं, पू जीपति हैं और सर्व प्रकार से योग्य हैं। जाते हुए मार्ग मे किसी का बगीचा मिला और उसमे अगूरो से लदी हुई लताए दिखाई दी। उन्हे देखकर क्या आपके मुख से पानी नही छूटेगा ? क्या आप खाना नही चाहेगे ? अब आप बाग को देखने के लिए चले गये। यद्यपि खाने के लिए नही गये है, तथापि मन मे इतना विचार तो आता ही है कि एक-आध गुच्छा तो ले लेवें। मौका पाकर आपने दो-चार अगूर तोडकर अपने मुख मे डाल लिये तो पेट नही भर गया। जब आप ऐसे श्रीमन्त हैं, पुण्यशाली है, और खरीद कर के खाने मे समर्थ हैं, तब भी आपके मन मे उन अगूरो को तोड कर खाने की लहर आ गई। परन्तु जिनके अशुभ कर्म का उदय है और अन्तराय बाधकर के आये हैं, यदि उन्होने भी तोडकर खालिये तो क्या हुआ ? आप अपने अन्तरग से पूछ लो कि यदि कोई नयी वस्तु सामने आती है तो आपका दिल दौडता है, या नही ? कवि कहता है—

पुष्पदृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा, दृष्ट्वा च नवयौवनां।
द्रविणं पत्तितं दृष्ट्वा कस्य नो चलते मनः॥

अच्छे फूलो को देखकर किस पुरुष की इच्छा उन्हे लेने की नही होती ? अच्छे फलो को देखकर किसका मन खाने को नही होता है ? और सुन्दर

नवयुवती को देख करके किसका मन चचल नही हो जाता है। परन्तु चले हुए मन को भी पीछा ठिकाने लाना पडता है। यदि नही लाये और वह आगे बढता ही चला गया तो आप उपालम्भ के अधिकारी और दण्ड के पात्र हो जाते है। इसलिए कभी कदाचित् कही मन चल भी जाय तो गृहस्थ को उतना ही लेना चाहिए जितना कि अपराध की श्रेणी मे न आवे। आपने अगूर के यदि एक दो गुच्छे तोड लिये तो बागवान कहता है कि मेहरबान, मैंने बगीचे की रखवाली की है, इस बेल को बढाने मे और सार-सभाल मे अपार परिश्रम किया है और अनेक कष्ट उठाये है। आपने अगूर के गुच्छे क्यो तोडे ? यदि आपको खाना ही था, तो आप मुझे कहते, मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपको खाने के लिए दे देता। परन्तु बिना पूछे आपको नही तोडना चाहिए थे। भाई, शर्मदार व्यक्ति के लिए इतना ही कहना काफी है। इतने पर ही शर्मिन्दा हो जायगा और नीचा मुख करके रह जायगा।

• आत्मा का उपकारी क्या है ?

भाइयो,आप लोगो को सदा दिल उदार और विशाल रखना चाहिए। खुले दिल से व्यापार करो तो कितना खर्च लगता है—कोठे का किराया, दुकान का किराया,रेल का भाडा और कुली आदि की मजदूरी सभी कुछ खर्च वहन करना पडता है। फिर मुनीम गुमास्तो और आढतियो का भी खर्च उठाना पडता है। अब यदि इसी को रोते रहो कि इतना खर्च हो गया, तो भर पेट क्या व्यापार कर सकोगे ? अरे, खुलेदिल से खर्चा होने दो, प्रभुकी कृपा होगी तो फिर नफा ही नफा है। खुले दिलसे व्यापार करोगे तो खर्चे के लिए पीछे नही देखना पडेगा। इसी प्रकार यदि आत्मा का विकास करना है, तो उसके लिए तदनुकूल खर्चा तो करना ही पडेगा। क्या करना पडेगा ? शरीर का दमन, इन्द्रियो का दमन और मन का नियमन रूप खर्च का भार उठाना पडेगा। यदि कोई कहे कि ऐसा शरीर, जिसे बचपन से मैंने खूब खिलाया-पिलाया, सर्दी-गर्मी से जिसकी रक्षा की और नहला-धुला कर स्वच्छ रखा और हृष्ट-पुष्ट रक्तवर्ण का बनाया है। अब यदि मैं बेला—तेला करू, तो यह सूख जायगा और इतने दिनो का परिश्रम व्यर्थ चला जायगा ? तो भाई, ऐसा विचार करने पर तो क्या त्याग-तप हो सकेगा ? अरे, यह त्याग-तप और उपवास आदि तो परीक्षा के साधन हैं। इनके द्वारा हमे यह जाच भी तो करना चाहिए कि इतने दिनो तक इस शरीर को जो माल खिलाये हैं तो इसमे कुछ शक्ति भी है, या योही यह

गुड का गोवर करता चला आ रहा है। यदि उपवास आदि करने पर यह अपनी कमजोरी दिखाता है, तो फिर इसे माल खिलाना व्यर्थ है। जो नौकर वर्ष भर नौकरी पाने पर भी समय पर काम न आवे तो उसे फिर रखना व्यर्थ है, अपने पैसे को पानी मे फेकना है। आत्मा के विकास के लिए तप-सयम का पालन करना आवश्यक है और तप-सयम करने के लिए शरीर का शोपण, इन्द्रियो का दमन और मन का नियमन करना ही पडेगा। भाई, यह भी विचार करना चाहिए कि यह खर्च किस पर है ? जैसे व्यापार का खर्च माल पर है, वैसे ही यह खर्च भी आत्म-विकास के ऊपर है। यदि उपवास करते हैं तो खाना-पीना बन्द करना पडता है। खाना-पीना नही मिलने से शरीर शिथिल होता है तो इन्द्रिया भी कमजोर पडती हैं और इधर-उधर भागने वाला तथा उछल कूद मचाने वाला यह मन-मर्कट भी शान्त हो जाता है। मनके शान्त होने पर ही आत्म-विकास का भाव जागृत होता है। जव तक मनकी प्रवृत्ति वाहिर की ओर रहेगी, तव तक वह अन्तरात्मा की ओर लक्ष्य नही दे सकता है। अन्तर्मुख होने पर ही आत्मा अपना उत्थान, विकास और कल्याण कर सकता है। इसलिए अन्तरग मे इतना दृढ निश्चय कर लो कि मुझे आत्मोत्थान के लिए देह का दमन करना ही पडेगा। महर्पियो ने कहा है।

यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्।
यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम् ॥

अर्थात् जो वस्तु देह के उपकार के लिए साधक है, वह जीव की अपकार करने वाली है। तथा जो वस्तु जीव का उपकार करने के लिए साधक है, वह देह का अपकार करने वाली है। एक की साधक वस्तु दूसरे की वाधक ही रहेगी। ससार मे ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो समान रूप से देह और जीव की उपकारक हो। खाना-पीना और मौज उडाना ये कार्य यदि शरीर के लिए अच्छे हैं तो आत्मा के लिए बुरे है। और त्याग-तपस्यादि कार्य आत्मा के लिए उत्तम है तो शरीर के लिए बुरे हैं, उसे सुखाने वाले हैं।

अज्ञानी जीव जिन सासारिक वस्तुओ को इन्द्रियो के विपय-सेवन सुख समझता है, ज्ञानी पुरुप उन्हे महा दुख मानता है, क्योकि वह जानता है है कि इन सासारिक विपयो के उपयोग से मेरे पाप कर्मों का ही बन्ध होता है। कहा भी है—

संसारे मन्यते सौख्य मूढ इन्द्रियगोचरम्।
दुःख तदेव जानाति ज्ञानी पापारिवर्धनात् ॥

भाषाकार ने भी कहा है—

> इन्द्रिय-सुख को मूढ जन, मानत है अति सुक्ख।
> उसे पाप-वर्धक समझ, ज्ञानी माने दुक्ख ॥

लेकिन जब तक शरीर से काम लेना है, तब तक उसे यथोचित खुराक तो देनी ही पडेगी। परन्तु शरीर को खुराक देते हुए भी अपने मन पर अकुश रखो। शरीर को ऐसी खुराक मत दो, जो उसे विकारी बनावे। तामसिक और राजसिक भोजन शरीर को विकारी बनाते है। अत उन्हे न देकर सात्त्विक भोजन दो, जिनसे मन मे सद्-भाव उत्पन्न हो। तामसिक और राजसिक भोजन नही करना यही शरीर का दमन है। मनको उन्मार्ग पर नही जाने देना यही मन का नियमन है और पाप-वर्धक, छल-प्रपचमय वचनो को नही बोलना यही वचनो का सयम है। इस प्रकार से यदि अपने अपने मन वचन काय को वश मे कर लिया तो समझ लीजिए कि आप आत्म-विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। और इस प्रकार आप अठारह पापो के सेवन से बच रहे हैं। आस्रव को रोकने से आप कर्मों का सवर भी कर रहे है।

मन जब जब भी उन वस्तुओ के खाने-पीने की ओर दौडे, जिनको कि अयोग्य और निन्द्य जान करके आपने त्याग कर दिया है, तब तक आपको यह विचार करना चाहिए कि यह शरीर मेरे साथ जाने वाला नही है, यह मेरी बीमारी और बुढापे को नही मिटा सकता है, बल्कि इस शरीर के कारण ही नाना प्रकार के रोगो से दुख भोगना पडते हैं और बुढापा भी इसी शरीर को आता है। इसलिए मुझे इसे इस प्रकार से अपने अधीन रखना चाहिए कि मैं जब तक चाहू, इससे अपना काम करा सकू और आत्म-कल्याण कर सकूँ। जब ज्ञानी मनुष्य देखता है कि यह शरीर सब मेरे कहे अनुसार कार्य करता है, तब वह उसे सात्त्विक खुराक भी देना बन्द कर देता है। जैसे स्वामी जब देखता है कि यह सेवक अब कुछ भी काम नही करता, तब वह उसे वेतन देना बन्द कर देता है।'

मैं शरीर का दास नहीं

ज्ञानी पुरुष विचारता है कि शरीर मेरे लिए है, मैं शरीर के लिए नही हू। अनादिकाल से मैं मालिक होकर के भी शरीर का नौकर बना रहा और उसकी ही चाकरी करता रहा। आज मुझे अपने स्वरूप का भान हुआ है। अब मैं इसकी नौकरी नही करूगा, किन्तु इसे नौकर बना करके इससे अपना कार्य सिद्ध कराऊँगा। हमारे महापुरुषो के शरीर को धर्म का प्रधान साधन कहा है। यथा—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।' अत अब मैं इसे धर्म के

साधन मे लगाऊँगा। ऐसा विचार कर ज्ञानी पुरुष आत्म-विकास का इच्छुक व्यक्ति उससे अपने सच्चे स्वार्थ-आत्म-प्रयोजन को सिद्ध करता है। जो अपने स्वार्थ को साधन करता है, वही बुद्धिमान् कहलाता है और जो इसे सिद्ध नही करता, उल्टा अपने स्वार्थ का विनाश करता है, उसे मूर्ख कहा जाता है। नीतिशास्त्र मे कहा है कि—

स्वार्थं साधयेद् धीमान्, स्वार्थ भ्रंशो हि मूर्खता।

जो बात शरीर के लिए कही गई है, वही बात धन के लिए भी लगाना चाहिए। धन हमारे लिए है, हम धन के लिए नही हैं। यदि हम रात-दिन धन कमाने मे ही लगे रहे और अनेको पाप करके उसका सचय करते रहे तो वह भी साथ जाने वाला नही है, यही पडा रह जाने वाला है और उसके लिए हमने जो झूठ-कपट और अनेक प्रकार की चोरिया की हैं उनका पाप हमारे साथ जायगा और पर भव मे हमे दुर्गतियो के असख्य दु खो का पात्र बनायगा। इसलिए हमे धन का उपार्जक और सचयकर्त्ता ही नही बने रहना चाहिए, बल्कि उसका उपभोक्ता बनना चाहिए। इस धन की रखवाली करते करते कितने ही चले गये, परन्तु यह धन तो यही का यही पडा हुआ है। यदि हमने इसका उपभोग और सदुपयोग नही किया तो फिर यह हमारे क्या काम मे आयगा ? नीतिकारो ने इसके विषय मे कहा है कि—

दान भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

धन की तीन गतिया होती हैं—दान, भोग और नाश। जो पुरुष न दान देता है और न स्वय उपभोग ही करता है उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् वह विनष्ट ही होता है। इसलिए मनुष्य को यह विचारना चाहिए कि जब तक धन मेरे हाथ मे है, तब तक इसे अच्छे शुभ कार्यों मे लगाकर इसका आनन्द लूट लूँ। यदि इसको यहा पर खर्च कर दिया तो भी मेरे क्या कमी आयेगी ? भाई, लक्ष्मी तो दान की चेरी है। आप दान देंगे तो उससे हजारो लाखो गुणा होकर वापिस आपको मिलेगा। कहा है कि 'लक्ष्मी दानानुसारिणी'। यह लक्ष्मी धन-सम्पत्ति तो दान के पीछे-पीछे चलती है। मनुष्य के भाव जब तक दान देने के रहते हैं और जब तक दान देता रहता है, तब तक लक्ष्मी बराबर उसके पास आती रहती है। और ज्यो ही मनुष्य के भाव दान देने से गिरने लगते हैं और दान देना बन्द कर देता है, त्योही लक्ष्मी के आने के स्रोत भी सूखने लगते हैं। इसलिए मनुष्य को दान देने से कभी भी न अपने हाथ को सिकोडना चाहिए और न अपने भावों को ही

गिरने देना चाहिए । भाई, खाया-पिया तो यही समाप्त हो जाता है । परन्तु दिया हुआ धन पर भव मे साथ जाता है और हजारो लाखो और करोड गुण होकर प्राप्त होता है । किसी लखपति या करोडपति सेठ के घर जिस वालक ने जन्म लिया है और जन्मते ही वह लाखो करोडो की सम्पत्ति का एक दम स्वामी वन गया है, तो अकस्मात् उसका स्वामी नही वन गया है । किन्तु पूर्व भव मे जैसा दान करके आया है, तदनुसार ही इस जन्म मे वह उसका जन्मते ही स्वामी वन गया है ।

त्याग का असीम फल

किसी मनुष्य के दो कोठे अनाज से भरे हुए है । उसने एक कोठे का अनाज तो खाकर पूरा कर दिया । और दूसरे कोठे के अनाज को खेतो मे वो दिया । यद्यपि उसके दोनो कोठे खाली हो गये हैं । मगर एक का अनाज तो व्यर्थ गया है और दूसरे का अनाज कई गुणा होकर घर मे वापिस आने वाला है । इसी प्रकार जो घन अपने आत्म-कल्याण के लिये खर्च कर रहे हो, वह वेकार नही जा रहा है । वल्कि जमा हो रहा है । यह आत्म-कल्याण की दुकान आगे आपके सामने आवेंगे । उसके द्वारा आपके अनेक ग्राहको के हाथ भर जावेंगे । भाई, त्याग किये विना न कभी आत्म-विकास हुआ है और न होवेगा ही ।

आपने अपने लडके को पढने के लिए स्कूल मे भेजा । वह पहिली कक्षा से पढता हुआ एम ए एल एल वी , तक पढकर निकला । उसकी इस पूरी पढाई मे आपने कितना खर्च किया ? जोडो, तव मालूम पडे । परन्तु इतना सव खर्चा किस उम्मीद पर किया ? यही मेरा लडका पढ-लिखकर अपना विकास करेगा और इसके विकास के साथ दूसरे अनेको का भी विकास होगा । वताओ— ऐसे उन्नत भाव को लेकर आपने खर्च किया कि वर्वाद होने के लिए खर्च किया ? अव जिन जिन लोगो ने अपने-अपने लडको को पढाने मे घन खर्च किया, उन लोगो की जैसी भावना थी, वैसा लडको का विकास हो गया क्या ? नही हुआ । किसी के चार आना, किसी के आठ आना, किसी के वारह आना और किसी के सोलह आना विकास हुआ । तथा किसी का वीस आना भी विकास हो गया । भाई, यह सोलह आना या वीस आना विकास कव हुआ ? जिनकी जैसी भावना थी, तदनुसार ही उनका वैसा हो गया । किसी की चार आने की भावना थी, लडका कहता कि पिताजी अमुक पुस्तक चाहिए । वाप कहता है दिला देंगे । लडका चार-छह दिन तक उसके पीछे पडा रहा । आखिर महीने के अन्त मे उसने उसे पुस्तक दिलाई ।

इसी प्रकार लडका पढाई के अन्य साधनो के लिए भी पैसे मागता है तो बाप ने उसे बहुत परेशान करके दिये, जल्दी और समय पर नही दिये। अब लडका पढ लिख करके तैयार हुआ। उसने अपना विकास किया और अब आप भी उसके विकास का लाभ लूटना चाहते है, तो आपने लडके को पढाते समय रुला-रुला करके खर्च किया था, वैसे ही वह आपको भी रुला-रुलाकर आप की सहायता करता है। जिस भाव से और जिस विधि से आपने उसके लिए खर्च किया है, उसी भाव से और उसी विधि से आपको वापिस मिलेगा। इसमे रत्तीभर अन्यथा नही हो सकता।

बन्दर न्याय

दूध का धन्धा करने वाला एक घोसी तो अपनी गाय भैंस को अच्छी तरह रखता है, बाटा भी अच्छी और पर्याप्त मात्रा मे देता है, तो इससे उसकी गाय-भैंस दूध भी अच्छा देती है। वह जैसे ही घर से दूध लेकर निकलता है, तो चौराहे पर पहुचने के पूर्व ही उसका दूध बिक जाता है। तथा मन चाहा पैसा मिलता है। उसके मन मे सदा यह ध्यान बना रहता है कि मैं एक बूँद भी पानी नही मिलाऊगा। दूध लेने वालो को क्या पता है कि वह पानी मिलाता,या नही ? यदि वह पानी मिला भी देवे तो भी उसका बिक सकता है। परन्तु वह सोचता है कि जैसे दुनियाँ को अपना धर्म प्यारा है वैसे ही मुझे अपना धर्म प्यारा है। इसलिए वह एक बूद भी पानी नही मिलाता है। अब दूसरा घोसी भी गाय भैंस रखता है और उनका दूध बेचने बाजार ले जाता है। पहिले दिन दूध मे एक लोटा पानी मिलाता है,दूसरे दिन दो लोटे मिलाने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे वह अपने दूध मे अधिक-अधिक पानी मिलाने लगा। इस प्रकार उसके कमाई होने लगी। कुछ समय मे उसके पास हजार-पन्द्रह सौ रुपए इकट्ठे हो गए। अब उसने सोचा कि यह रकम ले जाकर के किसी साहूकार के यहाँ जमा कर आना चाहिए जिससे ब्याज चालू हो जाय। यह विचार कर वह अपनी सब कमाई हुई पूजी को थैली मे रखकर घर से निकला रास्ते मे जल से भरा तालाब मिला। उसने सोचा-चलो स्नान करता चलू, जो धर्मात्मा होता है, वह जल को छानकर काम मे लेता है। पर जो भैंसो के साथी है, वे तो जल मे यो ही पड जाते हैं। उनके शरीर का मैल भी पूरा नही उतरता है और असख्य जीवो का घात भी कर डालता है। और यदि पाप का उदय आजाय तो पानी के भीतर ही डूबा रह जाता या मगर-मच्छ खा जाते हैं। उस घोसी ने इधर तो पानी मे डुबकी लगाई और उधर वृक्ष पर से बन्दर उतरा और उसके कपडो मे रुपयो की थैली

रखी थी, उसे उठा कर के वापिस वृक्ष पर चढ गया। घोसी जैसे ही नहा कर वाहिर आया कि देखा कि बन्दर थैली ले उडा है तो वह रोने लगा। बन्दर ने वृक्ष के ऊपर बैठकर थैली देखी तो चमकते हुए रुपये नजर आये। वह उन्हें हाथ मे लेकर उछालने लगा। वह घोसी नीचे से गिड-गिडाकर कहता है कि भाई, यह थैली दे दे लड्डू चने ले ले। परन्तु वह कब सुनता है वह तो थैली मे हर बार हाथ डालता है तो एक बार रुपया तालाव मे फैंकता है और दूसरी बार इसकी ओर फैंकता है इस प्रकार उसने सारी थैली खाली कर दी। अब घोसी ने रुपए गिने तो आधे रह गये।

'ऐसा अब न्याय किया बन्दर, तब दूध का दूध व पानी का पानी।

भाई, जो दूध के दाम थे, वे तो आ गये और पानी के दाम पानी मे चले गये। जो पुरुष थोडा त्याग करके बहुत मजा लेना चाहता है, तो वह नही मिल सकता है।

धर्म ध्यान का प्रकरण चल रहा है। अभी मुनि रूपचन्द्रजी ने कहा कि लोगो को यह विचारना चाहिए कि हम धर्म ध्यान कितना करते है? व्याख्यान तो महाराज बोलते ही है। तो आप नौ-साढे नौ बजे घर से चलते हैं। अभी भी कितने ही सरदार आ रहे हैं—जबकि घडी दस बजा रही हे। अब इनसे पूछो कि आज महाराज ने क्या विषय लिया और क्या सुनाया? उत्तर मिलेगा—हमे कुछ पता नही है। यहाँ इतनी देर के बाद आकर के यदि कुछ सुन भी लिया तो यह धर्म ध्यान नही है, यह तो एक मुगालता है कि व्याख्यान मे आ गये हैं तो महाराज से उपालभ नही मिलेगा। श्रावक जी आ गये हैं। कितने बजे हैं? कुछ चिन्ता नही है। आप दस बजे भी आ गए तो भी ठीक है कुमकुमपत्रिका मे आप लोग लिखते हैं कि चार दिन पहिले पधार जो। राज पधार्‌या घणी शोभा होसी? तो इसी प्रकार की शोभा यहाँ व्याख्यान मे आने की है। आप विवाह मे काम कराने को भी नही गये, माल-मसाले बने, तब भी नही गये। परोसगारी के समय और जीमने के समय भी नहीं गए। परन्तु चुल्लू करते समय पहुंच गये तब भी शामिल हो गये। इसी प्रकार व्याख्यान मे नवकार मत्र शुरू होने के समय नही पहुचे, समाप्त होने के समय पहुचे और कहा कि, 'मत्थएण वन्दामि'। यदि सभी लोग इसी प्रकार से आने लगें, जबकि मुनिजी साढे आठ बजे आते हैं व्याख्यान सुनाने को। अब जब आप लोग दस बजे आवेंगे तो मुनिजी पतरो को सुनावेंगे, अथवा थभो को सुनावेंगे।

आज सब से अन्त मे घोड़े पर चढने वाले, और मदील बाधने वाले

डोसी जी ऊपर आये और कहने लगे कि कल कृष्ण-जन्माष्टमी है। तो भाई, क्या करें। हमारे तो प्रतिदिन जन्माष्टमी है। महावीर का उपदेश देते ही हैं।

जन्माष्टमी को श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ है। परन्तु आज है भानु सप्तमी। आज सूर्य का जन्म दिन है ऐसा लोगो का कहना है—जैन धर्म का नही। कृष्ण चन्द्र जी कितने वर्ष पहिले हो गए ? क्या वे हमारे सामने हैं ? क्या वे आज हमारे काम आ सकते हैं ? परन्तु सूर्य तो प्रतिदिन हमारे काम आता है। फिर इसकी भी कभी किसी ने जन्म-जयन्ती मनाई ? आपके लिए तो ठीक है कि बहती गगा मे कोई झकोला आजाय तो हम भी झकोला ले लेवे ! कल जन्माष्टमी आयगी तो कोई कभी आयगा और कोई कभी। जन्माष्टमी के दिन आप लोगो को क्या करना है, यह भी पता है ? अथवा केवल साधु-साध्वियो के दिमाग ही खाली करना है ? आप लोग तो मा-बाप वाले हो और हम लोग तो बिना मा-बाप के हैं। आप लोग अपना ही जापता करो, माथा दुखे तो दवा लो,चूर्ण लो औरबादामखाओ। पर महाराज का दिमाग तो बेकार का है।। एक चारण भी कहता है कि क्यो खाली करते हो दिमाग। कहा है—

बानियारा सेवडा ने राजपूतो रा डूम।
हाका कर कर मर गया, ज्यांरी बार हुई ने बूम !

आप लोग तो इसी भाजने के हैं ? कल क्या करेंगे ? जन्माष्टमी से पहले भगवान महावीर की जन्म जयन्ती आ चुकी है। उस समय आप लोगो ने क्या किया ? जन्म-जयन्तिया मनाना तभी सार्थक है जब कि हम जो कुछ भी खर्च करें—शुद्ध हृदय से करें। यहाँ आपके सामने दान-सुपात्र की पेटियाँ लगी हुई है और बधी हुई भी मजबूत हैं। परन्तु किसी के नियम है भी कि हम एक-एक पैसा प्रतिदिन डालेंगे ? भाई, मन्दिर मार्गी लोग मदिर मे जाते है तो खाली हाथ नही जाते हैं, चावल लोग लेकर ही जाते हैं। और यदि पूजा करनी होती है तो केशर भी लेकर के जाते हैं। और अगर बत्ती भी ले जाते हैं। परन्तु यहा आने वाले तो खाली हाथ ही आते हैं। आप लोगो को क्या ज्ञात नही है कि -

'रिक्तपाणिर्न पश्येच्च राजान देवता गुरुम्'

अर्थात् खाली हाथ राजा, देवता और गुरु के दर्शन नही करना चाहिये।

पर्युषण की चेतावनी

अब चार दिन के बाद पर्युपण पर्व भी आ रहा है। यह भादवा वदी १३ शनिवार को लग रहा है। और भदवा सुदी ४ शनिवार को सवत्सरी है। इस वर्ष सबकी चौथ के दिन साथ-साथ है। चौथ की क्यो की ? हम तो पचमी के पक्षपाती हैं। भाई, घडियो मे उस दिन पचमी आ गई है। सवत् १९८४ की साल यहा पर जैनदिवाकर जी का चौमासा था। उन्होने उपदेश दिया कि हमारे मोट के दिन नौ है। अत शहर के आप धनी लोग व्यापार नही करना। अब राजस्थान मे तो कही पर भी व्यापार वन्द नही रहता है। आप लोगो को यह नियम पालते हुए सवत् १९८४ से आज स० २०२७ तक ४३ वर्ष हो गये है। पर आज जो धन के गुलाम और पूँजी के नौकर हैं, जिन्होंने फैक्टरिया और कारखाने खोल रक्खे है, वे कहते है कि हमारे लिए यह पावन्दी नही है। वताओ—इन्हे मालदार कहे, या भूखे ? जो वेचारे गरीब लोग पाच-सात रुपये रोज कमाते हैं, वे तो वन्द रखते है और आप लोग इतने मालदार होकर के भी वन्द नही रखते हैं। अरे, वडेरो की प्रतिज्ञा को भी निभानी चाहिए। जो असली खानदानी धर्मात्मा होगे,वे लोग तो अवश्य निभायेंगे। सर्व साधारण जैनी लोग तो यही कहते हैं कि इस नियम को नही तोडना चाहिए। परन्तु ऐसे ऐसे भी दुर्भागी हैं जो कहते है कि क्या है इसमे ? दुकान को खोल देना चाहिए और इन दिनो जो कमाई होवे तो कबूतरो को धान डाल देना चाहिए। भाई, आपने उपवास का नियम लिया और सोचा कि उपवास न करके चार-पाच दिन कबूतरो को धान डाल देंगे। तो क्या आपके उपवास हो जायगा ? आप शादी करने के लिए जाते है और उधर दूसरा कहे कि बीस हजार रुपये ले लो और यह बीदणी हमे परणा दो। तब आप फौरन कहेगे कि हिया-फूटोडा, ऐसी वात कहते तुझे शर्म नही आती है ? यह तो मेरी माग है और इसे तो मैं ही परनूँगा। भाई, वडेरे जो नियम वाध गये हैं, उस पर कटिबद्ध रहना चाहिए। यह नियम आप लोगो ने लिया है और आज तक पालन करते चले आ रहे हैं, तो इसका प्रभाव भी देख लो कि अभी पिछले दिनो पाकिस्तानियो ने इस शहर पर दो सौ से अधिक बार बम डाले, तब क्या आप लोग बच सकते थे ? परन्तु आप लोगो का ऐसी बमबारी मे भी बाल-बाका नही हुआ। अरे धर्म के गुण विचारो, धर्म को मत भूलो, परन्तु धर्म पर कायम रहो। यदि भाग्य ही ओछा होगा, तब तो आपको अपने कर्मों का फल भोगना ही पडेगा।

एक शहर मे एक बडी फर्म थी। वह प्रतिदिन एक मन आटे की रोटिया कुत्तो को खिलाती थी। परन्तु जिस दिन होनहार का अवसर आया तो मन मे विचार आया कि आज यदि कुत्तो को रोटिया नही डालेंगे तो क्या है ? उसके सवेरे ही खोटे भाव हुए और उसी दिन शाम को चार बजे दिवाला निकल गया। इसलिए मेरा तो यह कहना है कि आप लोग अपने नियम पर मजबूत रहे। अब कोई कहे कि हम तो यहा से सरदारपुरा चले गये, तो क्या हुआ ? नियम तो वैसा ही रखना चाहिए। ये कल-कारखाने वाले कहते हैं कि इतने दिन यदि हमारे कारखाने बन्द रहेंगे तो इतने लोगो को मजदूरी कौन देगा ? भाई मरते थोडे ही हो। इतना कमा लिया तो हमसे छिपे हुए थोडे ही हो ! अरे, आप लोग सरकार को दगा दे रहे है और बतला रहे हैं कि हमारे तीन फैक्टरिया चल रही है और कोटा बधा हुआ है। परन्तु फैक्टरी एक भी नही है। उन लोगो की ही भावना ऐसी होती है कि हम तो उक्त नियम को नही पाले। किन्तु जो खून का पसीना करते हैं, उनकी ऐसी भावना नही रहती है। मैं एक बात और आपसे कह देता हू कि गेहू मे काकरे निकल जावे, परन्तु आप उनका अनुसरण मत करना। आप लोगो का काम जैसा चल रहा है, वैसा ही करते रहना। क्योकि नीतिकार ने कहा है कि —

ऐनन मे समझे नहीं, उनसे करिये सैन।
सैनन मे समझे नहीं, उनसे कहिये बैन ॥
बैनन मे समझे नहीं, उनसे लेन न देन।

पहिले तो समझदार मनुष्य वही है कि जो अपने खानदान के रीति-रिवाजो को छोडते नही है। फिर जिसने अपनी ऐन को कुल-परम्परागत मार्ग को छोड दिया तो उससे सेण करो। मारवाड मे कहावत है कि बेटी को कहकर बहू को सुनाते हैं। बेटी के ऊपर जोर नही है, परन्तु बहू को कहने के लिए बेटी को कहते है। इसे कहते है सेण—इशारा। जो ऐन मे नही समझता है उसे सेण अर्थात् सकेत या इशारे से समझा देते है। जो व्यक्ति सेण मे भी नही समझे तो उसे वैन से—वचनो से—समझाना पडता है। जो वचन कहने पर भी न माने तो फिर उससे न कुछ लेना है और न देना है।

हा, तो यदि तुम्हारे भाग्य मे लिखा है तो नौ दिन के बाद भी आमदनी मे कमी नही आवेगी। आपकी सरकार ने महीने मे चार दिन दुकाने बन्द रखने का नियम बना दिया और रात के नौ बजे के बाद भी खुली नही रहने देते है। आप लोग सरकारी कानून से तो मानते हैं, पर समाज के नियम को नही मानना चाहते हैं। अरे, समाज भी तो बडी है, वह हमारी धार्मिक

सरकार है, उसके भी नियम को मानना चाहिए। और, समाज को भी जाने दो। यह काम तो आत्म-विकास के लिए किया है, उसकी तो सभाल रखना चाहिए। बाजार का जो सिलसिला रहता है, इसमे आप लोगो की भी भूल है। आप लोगो को बाजार मे चार-पाच दिन पहिले ही जाकर के कहना चाहिए कि पर्युषण पर्व मे नौ दिन तक हमारी दुकानें बन्द रहेगी। ऐसा पहिले से कह देने पर अन्य लोगो पर भी तो असर पडेगा। आप तो बाजार मे कह देते हैं, तो बाजार तो वही का वही है। अब इस जगह दुकानें खुल गई हैं तो उन्हे भी जाकर के कहना चाहिए। चार दिन पहिले जाना चाहिए और सूचना कर देनी चाहिए कि भाई साहब ध्यान रखना। यह आपका कर्त्तव्य है और पर्युषण पर्व के दिनो मे व्यापार बन्द रखने और रखाने का यह तरीका है।

कल जन्माष्टमी है, जिसकी सूचना कर दी गई है तो अब आने वाले कार्य के लिए भी कुछ न कुछ करना चाहिए। ये बहिनें तो कमाई देती है और घर मे भी कुछ घाटा नही है। परन्तु आप लोग भी तो कुछ न कुछ करो। अरे, सावन का महीना आ गया और उसमे भी जानवर यदि हरी घास नही चरे, तो कब चरेंगे और उनके बारह महीने कैसे निकलेंगे। आप लोगो से एक हिसाब पूछू कि सत्ताईस मे से नौ निकल गये तो बाकी कितने रहे ? आप तुरन्त उत्तर देंगे कि अठारह बाकी रहे। पर भाई, सब नक्षत्र सत्ताईस हैं। उनमे से वर्षा के नक्षत्र नौ ही होते हैं। उनके नाम हैं—
आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य अश्लेषा, मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा— एवं स्वाति है—

यदि ये ही नौ नक्षत्र वर्षा के बिना कोरे निकल गये, तो पीछे क्या रह जायगा ? अर्थात् पैदावारी कैसे होगी ? कुछ भी नही होगी, क्योकि पैदावारी वर्षा पर निर्भर रहती है। इसी प्रकार वर्ष के बारह मासों मे से धर्म-साधन के सावन और भादो ये दो मास प्रधान हैं। यदि ये ही खाली निकल गये, तो फिर क्या है ? कुछ भी नही है। यदि इन दो मासों मे धर्म का साधन भली भाति कर लिया और ये धर्म साधन मे ध्यानपूर्वक बीत गये तो फिर आनन्द ही आनन्द है। अब आप लोगो ने सावन तो खाली निकाल दिया है। यद्यपि बिलकुल खाली तो नही निकला है, तथापि जितना होना चाहिए, उतना धर्म साधन हुआ नही है—उतना धर्म का कार्य हुआ नही है। अब भादवा को तो योही मत जाने दो। इसमे तो भरपूर धर्म साधन करना ही चाहिए। अरे भाइयो, गया वक्त फिर हाथ नही आता। कौन जाने, अगला पर्युषण हाथ

आयेगा, या नही ? हम और आप मे से कौन रहेगा, और कौन नही रहेगा, इसे कोई नही जानता है। और फिर यह सब जोगवाई ऐसी ही बनी रहेगी, इसका भी क्या पता है ? क्योकि सबके सब दिन एक समान नही जाते हैं। कुछ न कुछ उतार-चढाव होता ही रहता है। इसलिए प्राप्त पुण्य अवसर को कभी भी हाथ से नही जाने देना चाहिए। हमारा कहने का जितना कर्तव्य है, उतना हमने कह दिया। हम आपके हाथ नही जोडेगे कि आपके बिना हमारा काम नही चलता है। हम तो अपनी दुकान की देख-रेख रखते ही हैं, सो हमारी दुकान तो मालामाल है। परन्तु आप लोग भी पडौसी है, भाई है। हम चाहते हैं कि आपके भी कमाई होवे तो हमारा भी मन आनन्द मे रहेगा।

आशा है कि आप लोग मेरे इस थोडे से कहने पर जम जावेंगे, तो अच्छा है। नही तो आपकी करनी का फल आप पायेगे। पर्युषण के ये आठ दिन अक्षय माने गये है। इनदिनो मे खूब व्याख्यान सुनो, त्याग, तपस्या करो, सामायिक करो और कर्मों का सवर करके धर्म ध्यान करो।

२
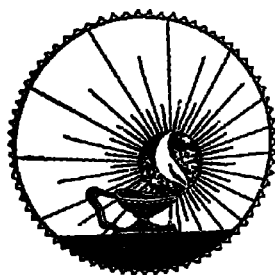
साधना की पृष्ठभूमि : सरलता

थिरधरियसील माला ववगयराया जसोहपडहत्था ।
बहुविणयभूसियंगा सुहाइं साहू पयच्छतु ॥

सज्जनो, आज का विपय है आर्जव धर्म का । आर्जव शब्द का अर्थ है सरलता । सरल अर्थात् सीधा । जिस मार्ग पर कोई ऊबडखावड वस्तु नही होती, और आका-वाकापन नही होता है, तो उसे कहा है कि वडा सरल मार्ग है, यह वस्तु वडी सरल है । इस प्रकार सरल शब्द के दो अर्थ हैं— पहिला यह कि यह काम सरल है, यानी आसानी से हो जायगा । दूसरा यह कि यह मार्ग सरल है अर्थात् सीधा है । एक दृष्टि से देखा जाय तो आसानी से होना और सीधा रास्ता, दोनो एक ही वात है । आसानी से काम तभी वनेगा, जव कि वह सीधा हो । यदि उसमे विपमपना है, टेढापन है, व्यवधान है और कई तरह की वाधाए हैं तो वह काम वनने में कठिनाई होगी और समय भी लगेगा ।

सरलता सच्ची हो !

ऋजुता अर्थात् सरलता से होने वाले धर्म को आर्जव कहते हैं । यह ऋजुता या सरलता हृदय की वस्तु है । हृदय की जो सरलता है, हृदय की जो गति है, क्रिया है और हृदय के जो विचार हैं, वे सव सरल होना चाहिए । उन विचारो मे विपमता क्यो हो ? और विपरीतता क्यो हो ? यदि विपरीतता है तो सरलपने के लिए शोभाजनक नही है । यह सरलता

कव रहती है ? जव कि माया, छल और कपटता दूर रहे, तव ही सरलता रहेगी। जो व्यक्ति कपटी है उससे यदि कोई वात पूछी जाय तो सीधा उत्तर नही मिलता है। भले ही पूछी या कही गई वात उनके हित मे ही हो। आपने किसी से कहा कि पधारिये साहव भोजन के लिए। ऐसा व्यक्ति सरल भाव से उसकी मनुहार कर रहा है, तो भी वह कहता है कि साहव, मैं तो जीम कर आया हुआ हू। अथवा कहे कि मैं अमुक व्यक्ति के यहा भोजन की स्वीकृति दिये हुए हू। यथार्थ मे वह जीमा हुआ भी नही है और कही जीमने की स्वीकृति भी नही दी है। तो भी परिणामो मे सरलता न होने से विचार कर रहा है कि इनके यहा जीमू, या नही ? जीमने पर कही कोई काम करने की न कह देवें, अथवा जिमाने मे इनका कोई स्वार्थ साधने का भाव प्रतीत होता है, इत्यादि कुटिल भावनाए उसके मनमे उठती है। अन्यथा सीधा-सा उत्तर था कि यदि जीमा हुआ नही है तो जीमने की हा भी भर लेता और जीमने चला जाता। अथवा साफ कह देता कि मेरा विचार जीमने का नही है। आपकी मनुहार के लिए आपको धन्यवाद है। ये दो उत्तर सरलता के थे। किन्तु जव मन मे कुछ इधर-उधर घूम कर कहता है, तो समझ लीजिए कि उसके हृदय मे मायाचारपना है और जहा मायाचारपना है, वहा सरलता का नाम भी सभव नही है।

भाइयो, अन्य स्थान की तो क्या कहे ? लोग धर्म स्थान पर भी मायाचार करते है। कल्पना कीजिए कि आपने सामायिक कर ली। आपके पास घडी है और दूसरे के पास नही है। वह आपसे पूछता है कि भाई जी, हमारी सामायिक का समय पूरा हुआ, या नही ? आप उत्तर देते है कि घडी चलती है। अव यह भी क्या उत्तर है ? आप मनमे क्या विचार कर रहे है कि यदि मैं ठीक समय वता दूगा, तो यह सामायिक पाल लेगा ? अरे, अव तू समय नही वतायगा तो क्या वह दिन भर वैठा रहेगा ? आपको कहना चाहिए कि घडी मे यह समय है। यदि उसको सामायिक पालनी होगी तो पालेगा और नही पालनी होगी तो नही पालेगा। पर धर्म स्थान पर भी इस प्रकार के मायाचार की क्या आवश्यकता है ? परन्तु जो मायाचारी है, वह कही भी सीधा नही रहता। वह तो अपने विचार को धर्म और कर्म दोनो मे ही लगाता है। जहा मायाचारपना है, वहा सरलता नही है। और जहा सरलता नही है, वहा पर धर्म ध्यान नही है तो शुद्ध ध्यान तो असभव ही है। उसके हृदय मे तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का निवास है। जो सरल पुरुष होते है, उनके जो मनमे होता है, वही वचन

से कहते हैं और वही कार्य काय से करते हैं। किन्तु जो कुटिल पुरुष होते हैं, उसके मन मे कुछ और होता है, कहते कुछ और है और करते कुछ और ही हैं। नीतिकार महर्षियो ने बहुत ठीक कहा है कि—

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्धि पापिनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येक महात्मनाम्॥

जो पापी पुरुष होते हैं उनके मनमे अन्य बात होती है, वचन मे अन्य बात होती है और कर्म मे—काय से कार्य करने में—अन्य ही बात होती है। किन्तु जो महात्मा हैं—महापुरुप हैं—उनके मनमे, वचन मे और कार्य मे एक ही बात होती है। उनके मनमे जो होता है वही वचन से कहते हैं और वही कार्य से करते हैं। उनके मन मे किसी भी प्रकार की कुटिलता नही होती है। किन्तु पापियो के भाव सदा कुटिल ही रहते हैं। वे अपने समान ही सभी को कुटिल या पापी समझते हैं। ऐसे लोग दूसरो के सरल हृदय से कही हुई बात का भी उलटा अर्थ लगाते है। और दूसरे को उल्लू बना कर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेते हैं। पर सरल चित्त वाले पुरुप अपने भाव और विचार शुद्ध ही रखते हैं, भले ही दूसरा व्यक्ति उसका कुछ भी अर्थ लगावे। वे जानते हैं कि जो उलटा अर्थ लगायेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। और उसे ही पीछे पछताना पडेगा। सरल चित्त व्यक्ति विचारता है कि मैंने तो अमुक बात सीधी सादी कही, किसी दुर्भाव से नही कही, पर उसने विपरीत अर्थ लिया है, तो वही उसका फल भोगेगा, भले ही महीने-दो महीने मे साल भर मे मिले, परन्तु मिलेगा अवश्य। देर हो सकती है, पर अन्धेर नही होगा। जब आपके पीछे एक घर-बार लगा है तो किसी काम के करने मे आपको भी देर हो जाती है, तब प्रकृति के पास तो असख्य काम हैं, अत उसमे देर हो सकती है पर अन्धेर नही होने वाला है। जहा सावधानी है, वहा अन्धकार की आवश्यकता ही क्या है? और जहा अज्ञानता है, मूर्खता है, वही देर होती है।

माया को कैसे जीतें ?

ज्ञानी महात्माओ ने कहा है कि—

"माया मज्जव भावेण।"

हे आत्मन्, यदि तुझे मायाचार को जीतना है, उसे छोडना है, तो सरलता धारण कर ले। सरलपना इतना सुखद है कि उसके हृदय की आवाज सभी व्यक्तियो के हृदयो मे पहुच जायगी कि अमुक व्यक्ति बिलकुल

ठीक कहता है, हमे उसकी बात मान लेना चाहिए। आप कुटिलता या मायाचार की कितनी ही पुटें लगाकर कोई बात क्यो न कहे, पर ससार के लोग इतने चतुर हैं कि वे असलियत को जान लेते है और मायाचारी से वचते रहते है। आप ऊपर से कितनी ही सफाई क्यो न दिखावें, पर तुम्हारे हृदय की कुटिलता प्रकट हुए बिना नही रहेगी और असली बात सामने आ ही जायगी। छल-कपट करके तूने एकाधवार यदि अपना काम निकाल भी लिया, तो उससे क्या पूरा पडने वाला है। बल्कि मायाचार से तो महा पाप का उपार्जन ही होगा, जिसे दुर्गतियो मे जाकर भोगना पडेगा।

प० द्यानतराय जी इस आर्जव धर्म का वर्णन करते हुए भव्यजीवो से प्रेरणा करते है कि—

> उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
> मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सो करिये॥
> करिये सरल तिहू जोग अपने, देख निरमल आरसी।
> मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अगार सी॥
> नहि लहै लछमी अधिक छल करि, कर्म-बन्ध विशेषता।
> भयत्याग दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥

लोग समझते है कि छल-कपट करने से अधिक लक्ष्मी प्राप्त हो जायगी। उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि भाई, पूर्व-पुण्योदय के बिना छल-कपट करने पर भी लक्ष्मी की प्राप्ति नही होती है। हा, कर्म का बन्ध अवश्य विशेष होता है। जैसे बिलाव निर्भय होकर दूध पीता है, पर यह नही देखता कि अभी दूध-मालिक आकर मेरी पीठ पर डडे मारेगा। उसे तो दूध पीने में आनन्द आ रहा है, अत वह आने वाली आपदा को नही देखता है। इसी प्रकार मायाचारी मनुष्य आगामी काल मे आने वाली आपत्तियो को नही देखता है और रात-दिन मायाचार करके लक्ष्मी के जोडने मे ही लगा रहता है। इसलिए वे उपदेश देते हैं कि भाई, जो मनमे हो, उसे ही वचनो से कहो और जो वचनो से कहो वही शरीर से करो। अपने मन, वचन, और काय इन तीनो योगो को सरल रखो। कपट की प्रीति अगार जैसी है, वह तेरे सब गुणो को जला देगी। तुम जैसा मायाचार करोगे, उसी जाति की पर्याय को प्राप्त करोगे। अत सासारिक कार्यों की बात तो दूर रहे, धर्म-कार्य मे भी मायाचार बुरा है।

सत्कर्म मे भी माया न करो

पूर्व काल मे राजा शख हो गये हैं उनकी रानी का नाम वसुमती था।

एक वार वन मार्ग से विचरते हुए एक गुरु अपने शिष्य के साथ मार्ग भूल गये। गर्मी के दिन थे। बहुत दूर भटकने पर भी मार्ग नही मिला और प्यास से दोनो का बुरा हाल हो गया। प्यास की वेदना से पीडित होकर शिष्य तो कही पड गया और गुरु जल की शोध करते हुए आगे बढे, तो उन्हे कुछ दूर हरे-भरे वृक्ष दिखाई दिये। उन्होंने सोचा कि जब वृक्ष दिख रहे है तो वहा पर पानी भी होगा और कोई आदमी भी अवश्य होगा। गुरु सीधे वहा पहुचे। वह राजा शख का वाग था और राजा अपनी रानी के साथ वन क्रीडा को आया हुआ था। मुनि को आते हुए देखकर राजा और रानी दोनो सामने गये, अभिवादन किया और वन्दन-स्तवन करके बोले—भगवन्! आपने वडी कृपा की। मुनि का गला प्यास मे सूख गया था, अत उत्तर मे उनसे कुछ बोला नही गया। राजा-रानी समझ गये कि मुनि महाराज को प्यास लगी है, अत ये पानी चाहते हैं। परन्तु ये कुए, तालाब, हौज या मटके आदि का सचित्त जल नही लेंगे। इनको तो प्रासुक, अचित्त जल लेना ही कल्पता है। वह श्रावक था और साधुओ की कल्पा-कल्प विधिविधान को जानता था। अत उसने रानी से कहा कि कही से प्रासुक, निर्दोष जल की तलाश करो। मुनि को उसकी तत्काल आवश्यकता है। रानी ने कहा कि दाखो का धोया जल रखा है। वहा जहा रखा था, वहा पर मुनि को ले गये। मुनि ने देखा कि जल निर्दोष और अचित्त है, हमारे लिए ग्राह्य है, अत उन्होंने लेने के लिए अपना पात्र आगे बढाया। इस समय राजा ने रानी से कहा कि पात्र दान के अवसर तो आपको सदा ही मिला करते हैं। परन्तु मुझे तो यह प्रथम ही अवसर है अत मुझे ही वहराने दो। ऐसे उत्तम पात्र आगये है तो आज मुझे ही लाभ ले लेने दो। रानी ने कहा—ऐसे अवसर पर मैं क्यो न लाभ लेऊ? इस प्रकार दोनो की खीचतान देखकर मुनिराज ने कहा—अच्छा, दोनो ही हाथ लगाकर वहरा दो। दोनो ने मिलकर दाखो का धोवन मुनिराज को वहरा दिया। इस समय राजा का हृदय सरल—सीधा था कि मुझे मुनि को वहराना है। परन्तु रानी के हृदय मे आज मायाभाव आ गया। रानी सोचने लगी कि इन्होने पूर्वभव मे खूब पात्र दान दिया है, जिसके फल से ये राजा बने है। परन्तु मुझे पहिले ऐसे अवसर नही मिले दिखते, जिससे कि मैं रानी हुई हू। अब इस भव में अधिक दान दू तो मेरा स्त्रीपना मिट जायगा। इस भाव के आने से रानी ने जल वहराते हुए झकोला ज्यादा दिया। इस प्रकार पानी वहरा दिया गया और मुनिराज पानी पीकर चले गये। राजा के भाव

सरल और शुद्ध थे, अत उन्होने तीर्थंकर गोत्र कर्म बाधा। रानी ने भी दान के भाव होने से मनुष्य भव का आयुष्य तो बाधा, परन्तु माया रहने से स्त्रीलिंग ज्यो का त्यो रह गया। राजा शख और रानी वसुमती मरकर स्वर्ग मे गये। पुन वहा से च्यवन करके राजा शख का जीव तो नेमिनाथ तीर्थंकर हुआ और रानी का जीव राजुल बना। अब आप लोग देखे कि दोनो राजा-रानियो ने दान दिया और दोनो मरकर स्वर्ग गये और वहा से आकर मनुष्य भव पाया। परन्तु रानी के कपट भाव से कितना नुकसान उठाना पडा कि उसका स्त्रीलिंग नही छिप सका और पर्याय मे राजुल बनी। छल-कपट का काम बुरा ही है।

भाइयो, छल-कपट से दिए गये दान का कोई फल नही होता, यह बात एक दृष्टान्त से खुलासा की जाती है। कल्पना कीजिए कि आप किसी की कपडे की दुकान पर गये। कपडो का मोल-भाव करते हुए और बहुतसा कपडा खरीदते हुए भी किसी तरकीब से एक थान चुराकर ले आये और घर पर रख लिया। साधु-सन्तो के आने पर उनसे आपने प्रार्थना कर निवेदन किया कि महाराज, आपको कपडो की आवश्यकता हो तो लिराओ इस प्रकार आपने उस थान का कपडा धीरे-धीरे सन्तो को दान दे दिया और घर मे कुछ भी नही रखा, तो भी आपको उस दान का कुछ भी फल नही मिलेगा। किन्तु जो उसे चुरा करके लाये हो, उस पाप का फल अवश्य मिलेगा और आपको भोगना पडेगा। क्योकि आप उसे चुराकर लाये है। तथा दूसरे के माल को अपना बना कर दान देने मे जो मायाचार किया है, उस मायाचार का फल भी आपको भोगना पड़ेगा। भले ही आप अपने मन मे यह मानकर सन्तुष्ट बने रहे कि मैंने चोरी करके भी उसे अपने घर मे नही रखा है और दान कर दिया है। भाई, ऐसे दान का लाभ नही मिलता है। यदि साहब आपको दान का लाभ लेना ही है तो जो व्यक्ति दान दे रहा है तो आप भी उससे कहिए कि भाईसाहब, मुझे भी हाथ फरसने दो। अरे भाई, शास्त्रो में तो यहा तक विचार किया गया है कि आपने सामायिक और पौषध स्वीकार किया हुआ है और अपने ही घर मे बैठे हुए हैं। यदि उस समय कोई मुनि-महात्मा पहुच गये और आपकी भावना हुई कि मैं भी दान दे दू ँ। अब यदि आप दान देने के भाव करते हैं तो इसमें कोई हर्ज की बात नही है। फिर भी आपको रसोईघर मे जाकर अपनी ही स्त्री से, या जो भी वहाँ पर है, अपना घर होते हुए भी पूछना पडेगा कि मुझे दान देने की आज्ञा है ? आप [illegible] कि अपने [illegible] घर मे हमे आज्ञा मागने की क्या आवश्यकता है ? शास्त्र

कहते हैं कि उस समय जो घर के अन्य लोग स्वामी बने हुए हैं, उनसे आज्ञा लेने की आवश्यकता है, क्योंकि उस समय आपने घर छोडा हुआ है। अत घर वालो की आज्ञा लेकर ही दान दे सकेंगे, अन्यथा दान देने के उस समय आप अधिकारी नही हैं। भाई, आगम की मर्यादा के अनुसार आपको अपने घर मे भी आज्ञा लेने का विधान है, तब चुराये हुए पराये द्रव्य का दान आप कैसे कर सकते हैं ? आपका उस पर कौन सा अधिकार है ? अपनी वस्तु पर ही अधिकार रखो। परन्तु पराये माल पर अधिकार मानना ठीक नही है।

हा, तो शख राजा की रानी ने कपटाई की, अपना द्रव्य होते हुए भी देते समय कपट किया,सो अपने द्रव्य को देने से दान का फल तो मिला परन्तु कपट भाव रखने से स्त्रीलिंग मिला।

माया से मल्लीकुमारी

शास्त्रो मे एक और कथानक आता है कि राजा महाबल और उसके पाँच मत्री सब बराबर तपस्या कर रहे थे, सभी समान रूप से स्वाध्याय और ध्यान आदि करते थे। सभी के आचार-विचार बहुत उच्च कोटि के थे। एक बार राजा महाबल ने सोचा कि इतने समय तक तो मैं बडा रहा और ये लोग छोटे रहे। इस भव मे भी गृहावस्था मे मैं राजा था और ये लोग हमारे मत्री थे। दीक्षा लेने के बाद भी हम गुरु हैं और ये लोग शिष्य हैं। अब सब तपस्या कर रहे हैं तो अगले भव मे हम बराबर हो जायेंगे। इसीलिए हमे कुछ अधिक तपस्या करनी चाहिए ? उनके हृदय मे ये भाव आ गये। सवेरे के समय जब शिष्य लोग गोचरी के लिये गये, तब महाबल ने उनसे यह नही कहा कि आज मेरे तेला है। जब वे लोग गोचरी लेकर के आये और उनसे निवेदन किया कि महाराज, पधारिये और पारणा कीजिए और हम लोगो को भी कराइये। तब उन्होने कहा कि मैंने तो तेला कर लिया है आप लोग पारणा करें। शिष्यो ने कहा—महाराज, यदि आप सवेरे हम लोगो से कह देते तो हम लोग भी तेला कर लेते। इस प्रकार महाबल ने तीन तेले कपटाई से किए। उस कपट के काल के फल से वे मल्लीनाथ तीर्थंकर बने, परन्तु स्त्रीलिंग मे आना पडा। यद्यपि तीर्थंकर स्त्रीलिंग मे उत्पन्न नही होते हैं परन्तु यह अछेरा हुवा। इतने बडे आदमी होते हुए भी तपस्या मे जरा सी कपटाई की, तो उन्हे भी उसका फल मिला। हाँ, यदि वे चाहते तो तेला कर

लेते और उनके शिष्यो को पारणा करने की उनकी आज्ञा माननी पडती। परन्तु उन्होने तपस्या मे भी कपटाई की तो उनको भी उसका फल भोगना पडा। जब ऐसे महा भाग्यशाली महापुरुषो के लिए भी यह मायाचार काम का नही है तब अपने लिए तो वह काम का कैसे हो सकता है ? परन्तु हम लोग आज क्या कर रहे है कि कहना तो कुछ और है और लिखना-पढना कुछ और ही है ? अभी आप जाते रहे है बम्बई और पूछने वाले से कहते है कि दिल्ली जा रहा हू। इस मायाचार मे क्या भाव छिपा है ? यही कि यदि यह भी मेरे साथ मे हो जाएगा और साथ मे माल लाएगा तो मुझे अधिक लाभ नही मिल सकेगा ? भाई, लाभ होना क्या तेरे हाथ मे है ? यह तो भाग्य के साथ मे है। यह भी मायाचार है। कहा भी है कि—

कहन रहन नहीं एक सी सब मत लीना हेर।
किशनलाल सच्ची कहे, कहन रहन मे फेर ॥

भाई, आज त्याग-तपस्या करने मे तो आप लोगो मे कोई कमी नही है। आपकी शक्ति के अनुसार आप लोग और अपनी शक्ति के अनुसार बहिनें भी कर ही रही है। परन्तु करने का जैसा फल मिलना चाहिये,वैसा नही मिलता है। क्यो नही मिलता है ? क्योंकि करते हुए भी आप लोगो के हृदयो मे मायाचारपना भरा हुआ है। यही कारण है कि त्याग-तपस्या का जैसा और जितना शीघ्र फल मिलना चाहिये, वह नही मिलता है। हमारी कथनी और करनी मे अन्तर पड गया है। जहाँ कथनी और करनी मे अन्तर होगा, वहा सभी बातो मे अन्तर होगा।

यह मायाचार आजकल केवल श्रावको मे ही नही है, किन्तु साधु-सन्तों मे भी चल रहा है। जब उन्होने सामने श्रावको को देखा तो भूमि पर पूंज-पूंजकर पैर रखना शुरू कर दिया। तब एक श्रावक ने कहा कि—

"थे पूंज-पूंज कर पग देवो छो, इणरीत विहार मे वेवो छो
किम लबा तड़का देवो छो, सुनो मुनिवर जी,
मत्त देखो, पर दोष विचारी बोलो जी,"

अब आप भवन से नीचे उतरे और पूंज-पूंज कर पैर रखे तो आँखो से देखते हो न ? फिर ? फिर पूंजते क्यो हो ? भाई,ओघे की कहाँ आवश्यकता है जहाँ पर कि दिखता नही हो। अब दिखाने के लिए जब विहार करते हो—एक गाँव से दूसरे गाँव को जाते हो—तब क्या ऐसे ही पूंज-पूंजकर चलते हो और क्या इसी प्रकार धीमे-धीमे विहार करते हो ? यदि ऐसे ही

पैर रखोगे, तो दिनभर मे कोस भर नही पहुच सकोगे ? और जब दस-पाँच कोस चलते हो तब वहाँ भी क्या यही की यही यतना है ? यदि आप कह भी देवे कि हा भाई, हम ऐसे ही धीमे-धीमे यतना से चलते है तो आपकी बात क्या कोई मानेगा ? नही मानेगा। इसलिए साधुपने मे भी इस प्रकार का मायाचार नही करना चाहिए।

बहुत से सन्त अपने श्रावको से कहते हैं कि जो भी सार है, वह साधुपने मे ही है, इसलिए साधुपना स्वीकार करो। क्योकि साधु के सिवाय सब चोर है। ऐसा कहना क्या साधु को कल्पता है ? इनसे पूछो कि श्रावक किसमे हैं, व्रतधारी गृहस्थ किसमे हैं ? चोरो मे है, या साहूकारो मे ? यदि कहो कि सब चोरो मे हैं तो क्या ऐसे वचन बोलना क्या शास्त्र-सम्मत है ? नही हैं। आप श्रावको को चोर कैसे कह सकते हो ? हा, यह कह सकते हो कि साधुपना लिये बिना सारे आरम्भो से दूर नही हो सकोगे। यदि आरम्भ-समारम्भ से दूर होना है तो साधुपना धारण करो। भगवान महावीर कह रहे हैं कि 'बुज्झ बुज्झ'। अर्थात् बोध प्राप्त कर, जागृत हो और साधुपना स्वीकार करो। परन्तु उन्होने भी कभी कही किसी गृहस्थ या श्रावक को चोर नही कहा है। यदि कहा है तो किस आगम सूत्र मे बताओ। जो श्रावक हैं और जिनको चारो तीर्थ के लिए 'अम्मा पिया समा'। ऐसा कहा है और जिन्हे धर्म के पोषक कहा है, फिर उनसे ही कहा जाय कि तुम लोग चोर हो। तब तो भगवान् की वाणी के विरुद्ध चलने वालो ने भी कहा है कि श्रावक तो जहर का प्याला है, तो फिर कसाई क्या है ? भाई, वे तो अन्यतीर्थी और अपच्चक्खाणी हैं, उन्हें भाषा बोलने का ज्ञान नही है, इसलिए कह देते हैं कि साधु के सिवाय सब चोर है और कुपात्र है। पर ये भगवान् के वचन नही हैं। वे तो भगवान् की वाणी के विरुद्ध व्यवहार करने वाले हैं, अत उनके ही ये वचन है। भगवान् के वचन तो ये हैं कि यह ससार असार हैं, इसमे कुछ भी सार नही है। जो इसे जितना छोडने का प्रयत्न करेगा, वह उतना ही सुख प्राप्त करेगा। ऐसे वचन सुनकर श्रावक कहेगा कि आपका कथन सत्य है। परन्तु हमारे भीतर इतनी कायरता है कि हम साधुपने को स्वीकार नही कर सकते हैं। अब कृपा करके आप हमारे लिए श्रावकपने की बात कहिये, हम श्रावक बनना चाहते हैं। तब साधु कहेगे कि अच्छा श्रावक के व्रत ही अगीकार करो। परन्तु यह नही कहेगे कि फोडो-फोडो ससार में अपना माथा फोडो। भाई, क्या यह धर्म माथाफोडने की वस्तु है ? अरे, वचन-वचन मे अन्तर पड जाता है ? यदि कहें कि हम तो त्याग करते है।

जिसके भाव त्याग के नही है, उनसे ऐसा कहना कि अरे, यदि साधुपना नही लेगा तो सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम काल तक रुलता फिरेगा और भव-भ्रमण करेगा ? ऐसी एकदम फटकार भी नही लगानी चाहिए। बल्कि उसे समझाओ, उसके हृदय मे वैराग्य जगाओ और ऐसी भावना भर दो कि उसे तुम ही एक मात्र शरण दिखाई दो। जब उसके हृदय मे वैराग्य के भाव देखो, तब वैसा उपदेश दो। परन्तु ऐसे ही अनर्गल, वज्र समान कठोर और अप्रिय वचन बोलना ठीक नही है, सूत्रविरुद्ध है।

भाषा मे सरलता रखो!

एक स्थान पर दो भाई आपस मे लड रहे थे। उनमे से एक भाई सत के पास गया। सन्त ने उससे कहा—सम्प कर ले। वह कहता है कि महाराज, मेरी सुनो तो सही। मैं सम्प कर लू, मगर उनमे यह बात नही है। तब सन्त कहता है कि बेईमान! बोल, सम्प करता है, या नही ? अन्यथा तेरा सत्यानाश हो जायेगा। तो क्या यह सम्प कराने का तरीका है ? तेरे सत्यानाश कहने से तो उसकी आत्मा मे दुख पहुचा। भाई, ससारी पुरुष की भाषा और साधु की भाषा भिन्न भिन्न होती है। साधु की भाषा तो सदा ही हितकारी और प्यारी होती है। तेरे इन कठोर शब्दो से तो उसके मन मे भय पैदा हो गया कि कही सचमुच नुकसान न हो जाय। यह तेरी भाषा तो सम्प कराने के स्थान पर विसवादकारी हो गई और लाभ के स्थान पर उससे दूसरे की हानि हुई। किसी से कुछ भी कहने मे सावधानी और मर्यादा की आवश्यकता है।

हा, तो मैं कह रहा था कि दूसरो से साधुपना पलवाना, उसमे प्रवृत्ति कराना और साधुपने का उपदेश देना तो ठीक है। क्योकि यही ससार-सागर से तिरने के लिए यानपात्र (जहाज) है। मगर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को देखकर ही उपदेश देना श्रेयस्कर होता है। हम जो उपदेश दे रहे है। वह भी आरम्भ को घटाने के लिए ही देरहे हैं बढाने के लिए नही दे रहे है। किन्तु श्रोताओ का तो क्षयोपशम जितना पकेगा वे उतना ही कर सकेंगे। स्कूल सबके लिए है, कोर्स की पुस्तके भी वही की वही हैं और मास्टर भी वे ही के वे हैं और सबको यही उपदेश देते है कि मन लगा करके पढो। मगर जिनके मिडिल पास होने का भी योग नही है, उनको क्या मास्टर लोग मैट्रिक बना देगे ? विद्याभ्यास का योग जिनके भाग्य मे जितना लिखा है, जिसका जितना ज्ञान का क्षयोपम है, वह तो उतना ही प्राप्त कर सकेगा। आपका पुत्र है और आप उसे प्रतिदिन झिडकी देते हैं कि नालायक, तू कमाता नही है।

आप पचास बार भी कह दे कितनी ही ताडनाएँ और तर्जनाएँ देवें। परन्तु उसके तो भाग्य मे जितना लिखा है, उसे उतना ही मिलेगा। मनुष्य का कर्त्तव्य उद्यम करने का है। किन्तु भाग्य का परिवर्तन कर देना किसी के भी हाथ मे नही है। अरे निश्चय तो निश्चय ही है। परन्तु व्यवहार मे अपने को गति करनी है। फिर श्रावकपना भी तो कम नही है। बतलाइये, तीर्थ कितने हैं ? चार हैं तीर्थ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। अब कोई पूछे कि इनमे छोटा और बडा कौन है ? यद्यपि अपेक्षा से वे छोटे और बडे है। परन्तु मैं आपसे पूछूँ एक मकान की चार दीवारें हैं। उनमे छोटी कौन और बडी कौन है ? यदि उनमे से कोई एक भी दीवार गिर जाय तो वह खडहर और तीन-चार गिर जायें तो वह मकान ढूढा कहलाता है। इसी प्रकार धर्मरूप तीर्थ के मुनि, आर्या, श्रावक और श्राविका ये चार अग है, वे चारो ही वन्दनीक और पूजनीक हैं। यदि इनमे से एक भी अग नष्ट हो जाय तो तीर्थ विकलाङ्ग कहा जायगा। अत चारो ही अगो की भक्ति करे, उनका सन्मान करे। परन्तु अपमान तो किसी भी अग का नही करना चाहिए साधु सबसे बडा तीर्थ है, या तीर्थ का सबसे बडा अग है। अत उसके लिए भी कहा गया है कि हे साधो, यदि कोई श्रावक आपसे ज्ञान में, विवेक मे और आयु मे बडा है तो उसकी ओर भी पीठ देकर के मत बैठो। क्योकि वह भी तीर्थ का ही अग है, चार तीर्थो मे से एक तीर्थ है। जो केवल आयु मे ही बडा हो, उसका भी समुचित ध्यान रखना चाहिए। जो व्यक्ति सरल होते हैं, वे दूसरो पर अपनी जमातें नही और दूसरो की बात को उडाते नही हैं। वे तो यही कहते हैं कि सब अच्छे हैं और गुणवान हैं। जिसमे जो गुण मिले, वह ले लेना चाहिए। किसी में क्षमा का गुण है, किसी मे सन्तोष का, किसी मे ज्ञान का, किसी मे तपस्या का और किसी मे सेवा करने का गुण है। गुण तो अनेक है और सब का ही यथास्थान महत्त्व है। अत जिसमे जो गुण हो और जिसे जिस गुण से प्रेम हो, वह उससे ले लेना चाहिये। परन्तु अपने गुण को बडा बताकर दूसरे के गुण को नीचे गिराना ठीक नही है। कहा है—

> आप थापो परनिंद की जिनमे तेरा दोख।
> प्रश्नव्याकरण देख लो कदेन जावे मोख ॥१॥

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे पाच सवर और पाँच आश्रव द्वार है। उनमे कहा है कि जो अपनी ही बात को थापे और कहे कि मैं ही हू, दूसरा कुछ नही है। तथा पराई निन्दा करे, इत्यादि जिनमे तेरह दोष है, उन्हे भूल-चूक

कर भी मोक्ष नही मिलेगा। वैसा कहने वाला धर्मपाल नही, किन्तु पिण्डपाल है। वह तो अपना पेट पाल रहा है और अपनी दुकान की पैठ जमा रहा है। तथा दूसरो के दुकानो की पैठ उडा रहा है। इसलिए वह धर्मपाल नही कहा जा सकता। वह तो पिण्डपाल ही कहा जायगा। यदि धर्मपाल नही बन सकते हो तो नियमपाल तो बनो, घरपाल, मोहल्लापाल, ग्रामपाल, नगरपाल और देशपाल इनमे से कोई तो बनो। जिसकी जैसी शक्ति हो, वैसी पालने की बुद्धि तो रखो। परन्तु दूसरो को मारने की, गिराने की और अपमानित करने की बुद्धि तो मत रखो। यह विषमता कल्याण करने वाली नही है। इससे धर्म, समाज और देश का बहुत अहित होता है।

कपटाई के साथ आप किसी को रकम दो और कहो कि भाईजी, इसे जमा कर लीजिए। वह कहे कि मुझे रकम की आवश्यकता नही है। फिर भी आप उसकी खुशामद करके कहते है कि रकम तो जमा कर ही लीजिए और व्याज जो आपको जचे दे देना। भाई, व्यापारियो को लोभ भी होता है, अत उसने आपके आग्रह करने पर रकम जमा करली। अव रकम जमा करा के आप सारे शहर मे डु डी पीटते फिरे कि अमुक व्यक्ति पराई रकमे बहुत खीच रहा है। लोगो के पूछने पर कहता है कि मेरी खीची है साहब। मैं पूछता हू कि इस प्रकार आपने अपनी रकम उसके यहाँ उसे नीचा दिखाने के लिए और वदनाम करने के लिए क्यो जमा कराई ? वह तो आपके यहा आया नही था, उसने अपनी कोई आवश्यकता भी बताई नही थी। तू ही खुशामद करके जवरन उसके यहा जमा करा आया। और अव उसकी बुराई करता फिरता है ? कितने ही लोगो की ऐसी कुटिल प्रकृति पडी हुई है कि वे दूसरो को सदा नीचा दिखाने का अवसर ही ढूढा करते है। आप धनी व्यक्ति हैं। किसी को इधर-उधर भूखा फिरते, या आते-जाते देखकर आपने पहिले तो उसकी खूब मनुहार की कि मेरे घर पर ही प्रतिदिन जीमा करे। फिर पीछे इधर-उधर कहते फिरे कि क्या करें साहब, वह जब घर मे आ ही गया, तब जिमाना पडता है। अब आप ही बतावे कि यह कार्य आपने मान बढाने का किया, या मान घटाने का किया ? ऐसा काम करने से तो नही करना ही अच्छा है। किसी की इज्जत-आबरू को बिगाडना क्या भले आदमी का काम है ? अच्छे भावो से यदि थोडा सा भी धर्म कार्य या दानादिक किया जाय, तो यह उत्तम है। किन्तु विषय भाव से अधिक भी दिया हुआ दानादिक अच्छा नही है। भाई, लाभदायक तो सरलपना ही है। जो सरल स्वभावी होता है, उसे बहुत लाभ होता है और कुटिलभाव से जो कार्य करता है, वह गाढ कर्मों का बन्ध करता है। कहा भी है—

कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर न वसै ।
सरल स्वभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा ॥

भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी और पिता नाभिराय पूर्व भव मे भी पति-पत्नी थे । उनकी दिसावर मे बहुत दुकानें थी । श्रावक धर्म के पालन मे दोनो ही बढे-चढे थे और व्रतो के बढाने मे सदा प्रयत्नशील रहा करते थे । पति के गुणो से पत्नी और पत्नी के गुणो से पति दोनो सदा प्रसन्न रहा करते थे । दोनो मे सासारिक स्नेह और धार्मिक प्रेम भी बहुत अच्छा था । इस प्रकार उनका समय सुख से बीत रहा था । सुख में मग्न रहने से वे दिसावरो की दुकानो को सभालने के लिए नही जा सके । वहा से मुनीमो के पत्र आने लगे और वे देख-रेख न होने पर असन्तोष प्रकट करने लगे । उन्होने लिखा कि इस अवधि तक यदि आप यहा पधार जावेंगे तो हम लोग काम करेंगे, अन्यथा काम से अलग हो जावेंगे । फिर यदि दुकान मे नुकसान होगा तो हम लोग उसके जिम्मेवार नही है । मुनीमो के इन पत्रो को पढकर सेठ ने सोचा कि उन लोगो का लिखना ठीक है । यहा की दुकान का गौरव भी तो दिसावर की दुकानो के पीछे ही है । अत मुझे दिसावर जाकर उनकी सार-सभाल करना चाहिए । उन्होने घर आकर अपनी पत्नी से कहा कि अव हमे दिसावर जाना पडेगा । पत्नी ने कहा कि आप पधारें और मैं भी साथ चलूगी । सेठ ने कहा—तुम्हारा दिसावर चलना ठीक नही है । यहा का कारोवार विगड जायगा और घर का गौरव गिर जायगा । घर भी खुला रहना चाहिए । तुम पतिव्रता नारी हो, जिसमे घर का गौरव रहे और मेरा मान वना रहे, वही काम करना चाहिए । फिर तुम्हारे साथ चलने से दुकानो की निगरानी मे भी वाधा पहुचेगी । अत तुम्हे घर पर ही रहना चाहिए । यह सुनकर पत्नी ने "जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर घर पर ही रहना स्वीकार कर लिया ।

इसी नगर मे सेठ का एक अभिन्न हृदय वाला मित्र था । उसके साथ उसकी अत्यन्त गाढ मित्रता थी । सेठ ने उसे बुलाकर कहा कि भाई, अत्यावश्यक कार्य से मैं दिसावर जा रहा हू, अत तुम घर की और दुकान की सभाल रखना । घर का तो इतना ही काम है कि जब कभी किसी काम को तुम्हारी भोजाईजी कहें वह काम कर देना और दुकान की पूरी निगरानी रखना । मित्र ने कहा—देखो भाई साहव, यदि आप को मित्रता नही रखनी है तो आज ही छुट्टी कर दो । किन्तु यह काम सौंप करके पीछे यदि कोई उलाहना दो, या कुछ कहो, तो यह ठीक नही होगा । सेठ ने कहा—

भाई, तू मेरा परम मित्र है, मेरा तेरे पर पूर्ण विश्वास है, तभी यह काम तुझे सौंप रहा हू। तू मन मे किसी भी प्रकार का विकल्प मत कर। इस प्रकार घर और दुकान की देख-रेख का काम मित्र को सौंपकर सेठ दिसावर को चला गया। सेठ के जाने के पीछे मित्र ने दुकान की देख-रेख इस प्रकार से रखी और काम-काज को इस प्रकार से सभाला कि सभी मुनीम और कारिन्दो पर उसकी धाक जम गई। रोकडिये से रोकड का जमा-खर्च रोजाना पूछने लगा और सारे कारोबार को इस प्रकार सभाला कि सेठ के सामने से भी अब दुकान की आमदनी दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढने लगी और सारे शहर के व्यापारियो पर उसकी अमिट छाप जम गई। मित्र ने अपने घर के काम को नुकसान उठाकर भी सेठ की दुकान को सभाला और अपने उत्तर दायित्व का निर्वाह किया। इधर सेठानी भी बडी चतुर और गृह-कार्य मे निपुण थी। सेठ के सामने घर से जो दान-पुण्य होता था, उसे उसने और भी अधिक बढा दिया। दीन-दुखियो को और भी अधिक सहायता पहुचाने लगी। त्यागी,सयमी महात्माओ को दानादि देने मे सावधानी रखने लगी। परम्परागत धार्मिक कार्यों मे, लोक-व्यवहार के कामो मे और राज्य के काम मे किसी प्रकार की कमी नही आने दी। बल्कि सेठ के सामने से भी अधिक सभी लौकिक और धार्मिक कार्यों को करने लगी। इससे सेठजी की हवेली की प्रशसा चारो ओर फैल गई और सभी सेठानी की तथा मित्र की प्रशसा करने लगे कि मित्र हो तो ऐसा, और पत्नी हो तो ऐसी, कि सेठ जी के यहा नही होते हुए भी सब काम ठीक ढग से चल रहे हैं। पर भाइयो, आप लोग जानते ही हैं कि इन कर्मों की गति बडी विचित्र है। इनके द्वारा नहीं होने वाली बात भी हो जाती है और नही घटने के योग्य घटना भी घट जाती है।

एक दिन किसी आवश्यक कार्य से वह मित्र हवेली के ऊपर गया। पहिले तो सेठ की मौजूदगी मे वह आवाज देकर हवेली के भीतर जाता था। किन्तु उस दिन सेठानीजी नीचे के खंड मे नही थी, वे ऊपर बैठी हुई शास्त्र-स्वाध्याय कर रही थी। सो यह मित्र बिना आवाज दिये ऊपर चला गया। और खुले मुख सेठानी को देख लिया। यद्यपि मित्र सीधा, सच्चा और अच्छे घराने का था और किसी दुर्भाव से वह नही आया था। परन्तु होनहार की बात और कर्मगति की विचित्रता का संयोग कि वह सेठानी के खुले मुख को देखकर कामातुर हो गया और अपने खानदान को,नीति को एवं अपने गौरव को भूल गया। वह विचारने लगा कि ऐसी सुन्दर स्त्री का अपने

अधिकार मे होते हुए भी यदि मैं आनन्द नही उठा सका तो मेरे से अधिक मूर्ख कौन होगा ? इन्ही विचारो मे डूबा हुआ वह विना आवाज दिये ही सेठानी के कमरे मे जा पहुचा। उसकी प्रतिच्छाया पडते ही सेठानी एकदम सकुचित हो गई और उससे कहा कि आज आप अचानक कैसे पधारे ? मित्र वोला कि आवश्यक कार्य के वारे मे सलाह लेने को आया हू। सेठानी ने उस की वात सुनकर और उचित सलाह देकर कहा कि अव आप पधारिये। यहा अधिक ठहरना उचित नही है, क्योकि मैं अकेली हू, इस समय कोई दासी आदि समीप नही है। यदि कोई देख लेगा तो दोनो की वदनामी फैल जायगी। सेठानी उसकी आखें देखकर उसके मनोगत दुर्भाव को ताड गई। अत उसने मित्र को जल्दी वापिस जाने के लिए कहा। किन्तु भाई कहा है कि—

विषयासक्तचित्ताना गुण को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्य न सत्यवाक्॥

जिन मनुष्यो का चित्त स्त्री के विपय मे आसक्त हो जाता है, उनका कौनसा गुण नष्ट नही हो जाता है ? अर्थात् सभी गुण नष्ट हो जाते है। फिर न उनमे विद्वत्ता रहती है, न मनुष्यता रहती है, न कुलीनता रहती है और न सत्यवादिता ही रहती है। उनके सभी गुण काफूर हो जाते हैं। सो इस मित्र का भी यही हाल हुआ। वह सव कुछ भूल गया और सेठानी के सामने अपने मनोगत भाव को प्रकट कर ही दिया। उसके ऐसे निन्द्य घृणित दुर्भाव भरे वचनो को सुनकर सेठानी ने कहा—"सेठसाहव,आपको काम सौप करके गये है, मुझे सौंप कर नही गये हैं। अत आप अपने काम की देखरेख कीजिए और इस पाप के प्रपच मे मत पडिये। अव आज से आगे हवेली के भीतर आने की आवश्यकता नही है। यदि आप समझदार हैं, तो वस, इतना ही कहना वहुत है। आपको अपनी इज्जत का, सेठजी और मेरी मान-मर्यादा का कुछ भी ख्याल नही रहा ? ऐसी घृणित और लोक निन्द्य, महापाप की वात करते हुए आपको शर्म भी नही आई और अव भी खडे मेरी ओर वुरी नजर से घूर रहे है। जाइये और आगे कभी भूलकर भी इधर न आइये।" सेठानी की यह कडी फटकार सुनकर मित्र नही, उस कुमित्र ने सोचा कि अव यहा पर मेरे मन की मुराद पूरी नही होगी। यह भोली नही है कि मेरे चगुल मे फँस जाय ? अत मन मसोसकर नीचे उतर गया। घर जाने के वाद उसने और भी अनेक प्रकार के जाल सेठानी को अपने कावू मे करने के लिए विछाये। मगर सेठानी इतनी कुशल और होशियार थी कि उसके सभी उपायो को वेकार कर दिया। उसकी एक भी युक्ति काम मे नही आई। जव

वह मित्र सर्व प्रकार से निराश हो गया, तब उसने सेठ को पत्र लिखा कि भाई साहब, आप जल्दी वापिस आइये। मैं दुकानदारी की जोखम तो सभाल सकता हू, परन्तु घर की जोखम नही सभाल सकता हू, क्योकि बात अब मेरे हाथ मे नही रही है। समझदार के लिए तो इतना लिखना ही पर्याप्त है। जैसे ही यह पत्र सेठ को मिला और पढा कि घर की जोखम अब मेरे हाथ मे नही है, तो उसका माथा ठनका और विचारा कि कुछ न कुछ दाल मे काला है ? मित्र तो मेरा अभिन्न हृदय वाला है, उस पर मुझे पूरा भरोसा है। यह ऐसी झूठी बात नही लिख सकता है। अत सेठ ने दिसावर का काम-काज जल्दी से निपटाया और देश मे आ गया। वह घर नही आकर सीधा दुकान पर पहुचा। और दुकान का काम-काज देखा तो सब ठीक पाया। कही भी गडबडी नही मिली। प्रत्युत बढे हुए कारोबार को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

अब दुकान से उठकर सेठ मित्र के यहा पहुचा। मित्र ने सेठ का स्वागत किया, कुशल-क्षेम पूछी और कहा कि भाई साहब आप आ गये, यह बहुत अच्छा किया। सेठ ने कहा कि तुम्हारा पत्र पाने पर मैं तुरन्त कैसे नही आता ? परन्तु यह बताओ कि यह पत्र कैसे दिया ? मित्र बोला—क्या कहू भाईसाहब, घर मे जाना तो मेरा अब धर्म नही रहा। इस घर की कीर्ति पताका लहराती थी और जो यशोगाथा सारे शहर मे गायी जाती थी, वह अब नही है। मैं और अधिक क्या कहु ? बस, इतने मे ही सब कुछ समझ लीजिए। सेठ मित्र की बात सुनकर मन ही मन अति दुखित एव चिन्तित होते हुए दुकान पर आए और बडे मुनीम से पूछा कि भाईजी का व्यवहार आप लोगो के साथ कैसा था ? उसने कहा सेठसाहब, मैं उनकी क्या प्रशसा करूँ उन्होने आपसे भी अधिक देख-रेख दुकान की रखी और समय-समय पर हम लोगो को ठीक आदेश निदेश और प्रेरणा देते रहे। तत्पश्चात् सेठने मुनीमजी से पूछा कि हवेली का क्या रग-ढग है ? वह बोला कि हवेली तो दिव्य देवपुरी हो रही है और सारे शहर मे सेठानीजी का यश फैल रहा है। यह सुनकर सेठ सोचने लगा कि ये दो परस्पर विरुद्ध बाते कैसी ? भाईजी तो सेठानी जी के विषय मे कह रहे हैं और कुछ और मुनीम जी कुछ और ही कह रहे है ? तब सेठ जी ने दुकान से उठकर अपने सम्पर्क मे आने वालो से भी हवेली के हाल चाल के बारे मे पूछा। सभी ने सेठानी जी के व्यवहार-कुशलता की भर पूर प्रशसा की। किसी के मुख से सेठानीजी की बदनामी नही सुनी। सबकी सुनकर सेठजी घर न जाकर सीधे अपने बगीचे मे चले गए और एकान्त मे बैठकर सोचने लगे कि सत्य क्या है ?

मित्र की वात मानना चाहिए, अथवा इन सवकी मानना चाहिए, इसी उधेड़ बुन मे दोपहर निकल गए। इधर सेठानीजी को खवर मिली कि सेठ साव पधार गये है, तो वे सोचने लगी कि उन्हे तो सवसे पहिले हवेली आना चाहिए था। किन्तु वे यहाँ न आकर दुकान पर क्यो गये ? और इतनी देर हो जाने पर एव दोपहरी वीत जाने पर भी वे अभी तक घर क्यो नही आये ? रसोई भी ठण्डी हो रही है। ऐसा विचार कर सेठानी ने वुलाने के लिए आदमी को भेजा। वह दुकान पर गया, तो पता चला कि सेठ साव तो वगीचे गए हुए हैं। वह वहा पहुचा। उसने सेठ साव से निवेदन किया कि भोजन करले के लिए हवेली पधारिए, रसोई ठण्डी हो रही है और सेठानी साव आपकी प्रतीक्षा कर रही है। सेठ ने कहा—भोजन यही ले आओ। नौकर ने हवेली जाकर सेठानीजी से कहा कि सेठ साव ने भोजन वगीचे मे ही मगाया है। यह सुनते ही सेठानीजी का माथा ठनका और वह समझ गई कि सेठ साव के घर पर नही आने मे मित्रजी की करामात काम कर रही है। उसने कटोरदान मे सव भोजन जमा करके नौकर के हाथ वगीचे मे भिजवा दिया। सेठानी सोचने लगी कि मित्र सेठ जी के कान कितने ही क्यो न भर दें, परन्तु जव मैं अपने आप मे पक्की हू, अपने पातिव्रत्य धर्म पर दृढ हू और अपने कर्तव्य का वरावर पालन कर रही हू, तव मुझे क्या गर्ज है कि मैं वगीचे मे जाकर उनसे पूछू कि आप घर क्यो नही पधारे। जव भी उन्हे यथार्थ वात ज्ञात होगी, तव वे अपनी भूल को अनुभव करेंगे और घर पर आवेंगे। उधर सेठजी ने सायकाल तक सेठानी जी के वगीचे मे आने की राह देखी और सोचते रहे कि मैं घर नही गया, तो वह अवश्य ही यहाँ पर आयगी। फिर उसके आने पर सारा रग-ढग देख लू गा। जव सन्ध्या तक भी सेठानी नही आई तो सेठ के हृदय मे मित्र की वात और मजवूत हो गई। सेठ भी कई दिनो तक घर नही गया और प्रतिदिन कभी दुकान पर कभी वगीचे मे भोजन मगाने लगा। परन्तु घर पर नही गया। इधर सेठानी ने विचार किया और सूक्ष्म दृष्टि से अपने व्यावहारिक कार्यों का सिहावलोकन किया तो देखा कि मैं घर की निगरानी वरावर रख रही हू, चाल चलन भी मेरा शुद्ध है, मैंने किसी प्रकार की कोई भूल नही की है। उस दिन के वाद मित्र का आना जाना भी वन्द है। फिर भी सेठजी घर नही आ रहे है, तो न आवें, इसमे मेरा तो कोई दोष नही है। जव उनकी इच्छा हो, तव आवें। मैं तो अपने कर्तव्य का विधिवत् पूर्व के समान पालन कर रही हू।

अव इधर सेठ जी भी ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं, तपस्या भी खूब

कर रहे हैं। कभी वेला, कभी तेला और कभी पाँच-पाँच और आठ आठ उपवास कर रहे हैं। इधर सेठानी भी इसी प्रकार का धार्मिक जीवन यापन कर रही है। इस प्रकार दोनो को तपस्या करते और ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हुए साठ हजार वर्ष वीत गये। यह महाविदेह क्षेत्र की वात है। उन दोनो की आयु चौरासी लाख पूर्व की थी। एक वार ऐसा अवसर आया कि उस नगर मे कोई विशिष्ट ज्ञानी गुरु महाराज पधारे। वैसे साधारण साधु लोग तो वहुत आये और चले गये थे। पर कोई भी कार्य अवसर के विना नही होता है। अजना सती को एकाकी जीवन विताते हुए कितने ही वर्ष निकल गये, परन्तु पवनजय से मिलना नही हुआ। समझाने वालो की वात वेकार गई। जव मिलने का अवसर आया तव चौडे और छाने ही उनका सहज मे ही मिलाप हो गया। सेठने इन गुरु महाराज से पूछा कि हे गुरुदेव, मेरे मन मे एक शका है कृपया उसे दूर कीजिए। वह यह कि मेरा मित्र सच्चा है, या मेरी स्त्री सच्ची है। गुरुदेव ने कहा—तेरी स्त्री सच्ची है ? पर यह नही कहा कि तेरा मित्र झूठा है। गुरु के मुख से यह अन्तर सुनकर सेठ वोला—हे भगवन् ! तव तो मैंने अपनी स्त्री के साथ वहुत वडा अन्याय किया है, सेठानी को कष्ट पहुचा कर और उसे सच्ची न समझकर मैंने वडा भारी अपराध किया है। मैं वडा पापी हूं, मुझे अपने इन खोटे कारनामो की आलोचना करनी चाहिए। अन्यथा मैं विराधक हो जाऊँगा। मुनिराज के व्याख्यान मे भाग्यवश सेठानी आई हुई थी। व्याख्यान समाप्त होने पर सेठ जी दुकान गये और सेठानी जी हवेली चली गई। अव सेठ ने मित्र को वुलाया और पूछा कि भाई जी, आपने मेरी सेठानी के सम्वन्ध मे वात लिखी और कही थी, सो वह सच कहा था, या झूठ कहा था। इतना लम्वा समय वीत जाने पर उसकी दुर्भावना भी शान्त हो चुकी थी और अपनी भूल को भी अनुभव करने लगा था। अत वह वोला—भाई साहव, सेठानी सच्ची है और मैं झूठा हू। मैंने वह वात झूठी लिखी थी और आपके दिसावर से लौटने पर आपसे झूठी ही कही थी।

सेठ ने पूछा कि तुझे उससे ऐसा क्या वैर था ?

मित्र वोला—मैंने उसके सामने अपनी काम-वासना को पूर्ण करने का अनुचित प्रस्ताव किया था, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया और मुझे धिक्कारा। जव किसी भी प्रकार से मेरा स्वार्थ सिद्ध नही हुआ, तव मैंने यह षड्यन्त्र रचा था।

भाइयो, देखो—उस व्यक्ति ने कितनी सरलता से अपना अपराध स्वीकार

कर लिया। पर आप लोगो को तो व्याख्यान सुनते-सुनते कितने ही वर्ष वीत गये, पर क्या आप मे ऐसी सरलता आई ? अरे, भूलें तो सभी से होती हैं। किसी की रिश्तेदारो के साथ, किसी की पडौसी के साथ, किसी की आसामी के साथ, और किसी की पिता, पुत्र या स्त्री के साथ भूल हो जाती है,मन-मुटाव हो जाता है और द्वेप भाव वढ जाता है। किंतु क्या आप लोगो मे सरलता आई, या नही ? आप लोग धर्म ध्यान और शुक्लध्यान की वातें सुनते ही चले जाते हैं, परन्तु अभी तक वैसी सरलता नही आई और कभी किसी ने इतनी सरलता से अपनी भूल, अपराध या दोप को स्वीकार नही किया। सरलता आना सरल वात नही है, वडी कठिन वात है। यदि आप लोगो मे ऐसी सरलता आजाय तो आप लोगो का उद्धार भी जल्दी हो जाय।

हा, तो सेठने मित्र से कहा कि ठीक है भाई। भूल मभी से हो जाती है। भूल मनुष्य से होना स्वाभाविक है, क्योकि वह भूलो के कारण अज्ञान आदि से भरा हुआ है। इतना कह कर सेठ चुप हो गया। परन्तु मित्र को किसी भी प्रकार का उपालम्भ नही दिया। मित्र को विदा करके सेठ जी हवेली मे पहुचे। अपने पति को आया हुआ देखकर सेठानी तत्काल उनके स्वागत के लिए खडी हो गई, परन्तु हाथ नही जोडे। भाई हाथ जोडने की वात ही क्या थी ? पहिले तो वह निर्दोप थी, फिर पति-पत्नी दोनो का स्थान समान है, और वे परस्पर मे मित्र है। यदि मित्र पर भरोसा हो और वह सच्चा हो, तव तो वह मित्र है, अन्यथा कौन किसका मित्र है ? सेठ स्वय ही वोला—सेठानी जी, मैं आपका अपराधी हू, दोपी हूं कि मुझे आपके चरित्र पर शका हो गई। अपनी इस भूल के लिए मैं आपसे शुद्ध हृदय से क्षमा मागता हू।

सेठानी ने कहा—स्वामिन्, मनुष्य छद्मस्थ है, जव तक उसके ऊपर से राग-द्वेप दूर नही हो जाते और अज्ञान का आवरण नही हट जाता है, तव तक उससे भूल होना स्वाभाविक ही है। परन्तु मैं इसे आपकी भूल नही मानती हू। मैं तो इसे अपने कर्मोदय का ही फल मानती हू। अव यदि आपको अपनी भूल दृष्टिगत हुई है तो मैं भी इसे अपने कर्मोदय-जनित मानती हू अत मैं भी आपसे क्षमा चाहती हू। यद्यपि मैंने कोई भूल नही की तथापि मेरे निमित्त से आपकी आत्मा को जो दुःख पहुचा है, उसके लिए मैं भी अपराधिनी हू और इसलिए क्षमा मागती हू।

भाइयो, पूर्व काल के लोगो मे कितनी सरलता थी कि कभी किसी का किसी के साथ यदि मन-मुटाव हो जाता था, तो वे दूसरो की भूल न

देखकर अपनी ही भूल देखा करते थे। किसी वडे सन्त ने वहुत ही ठीक कहा है कि—

अन्यदीयमिवात्मीय - मपि दोष प्रपश्यत. ।
क समः खलु मुक्तोऽयं युक्तःकायेन चेदपि ॥

यदि मनुष्य अन्य के दोष को देखने के समान अपने भी दोष को देखने लगे और अपनी भूल का अनुभव करे, तो वह इस काया से युक्त होने पर भी मुक्त है, अर्थात् सिद्ध जीवो के समान है।

हा, तो सेठानी ने सेठ से कहा कि अभी तक मेरे मन मे वह शल्य चुभ रही थी कि आप दिसावर से लौटने के वाद हवेली क्यो नही पधारे ? पर आज यह मेरी शल्य निकल गई है। अव मेरे मन मे कोई शल्य नही रही है। अव तो केवल एक प्रार्थना है कि आप मुझे अव गृह-त्याग की आज्ञा दे देवे। अव मैं अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहती हू। यह सुनते ही सेठ स्तम्भित सा रह गया और वोला—अरे, यह क्या कह रही हो ? सेठानी बोली—बस, अव इसी मे आनन्द है। मैं साठ हजार वर्ष व्यर्थ मे न गवाती। परन्तु अभी तक आपसे आज्ञा लेने का अवसर ही नही आया। अठारह कारणो से साधुपना भी प्राप्त नही होता है। पहिले मनुष्य उन कारणो को टालते थे और उन्हे टालकर ही दीक्षा लेते थे और गुरु भी ऐसे ही व्यक्ति को अपना शिष्य बनाते थे। तव वे गुरु और शिष्य जिन शासन को दिपाते थे, उसकी ससार मे प्रभावना करते थे। आज तो कैसा ही व्यक्ति आ जाय, उसे उन अठारह कारणो पर विचार किये विना ही झट मूड लेते है और उसे शिष्य बना लेते है। भले ही वह कल तक स्थानक मे बुहारी निकालता रहा हो, या कैसा भी क्यो न रहा हो ? परन्तु उसने कहा नही कि मैं साधु बनना चाहता हू, तो आज अनेक गुरु झट कह देते हैं कि आजा। मेरे साधर्मी सन्तो, हर प्रकार से पहिचान कर—उसकी परीक्षा करके ही किसी मनुष्य को साधु बनाना चाहिए। विना परीक्षा किये किसी को दी गई दीक्षा भविष्य मे दोनो के लिए ही दुख-दायक हो जाती है।

हा, तो आज सेठानी आज्ञा माग रही हैं। सेठ ने उन्हे वहुत समझाया और हर प्रकार से उन्हे रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु सेठानी अपने निश्चय पर दृढ रही और कहा कि स्वामिन्, अब तो मैं दीक्षा ही लूगी। कृपा करके मुझे इसके लिए आज्ञा प्रदान करें। आखिर सेठजी से स्वीकृति प्राप्त कर सेठानी जी ने साधुपना ले लिया और जीवन भर घोर तपस्या करती रही। कालान्तर मे वे ही मरुदेवी माता के रूप मे अवतरित हुई। आप पूछेगे कि

इतनी घोर तपस्या करने पर भी उनका स्त्री लिंग क्यो नही छिदा और अभी तक वे मोक्ष क्यो नही पहुची ? इसका उत्तर यह है कि जब पुण्यवानी अधिक बढ जाती है, तब मोक्ष नही मिलता है। इसी प्रकार जब पाप भी किसी के अधिक बढ जाता है, तब भी उसे मुक्ति नही मिलती है। किन्तु पुण्य और पाप जब पूर्णतया क्षय होते हैं, तभी मोक्ष मिलता है। स्त्री लिंग न छिद सकने से और प्रबल पुण्यवानी से वे नाभिराजा की पत्नी और भगवान् ऋषभदेव की जननी बनी। पुण्यवानी के कारण एक करोड पूर्व वर्षों तक खूब सुख-साता भोगी, उनको एक कोटि पूर्व वर्ष का दीर्घ आयुष्य प्राप्त हुआ और इतने लम्बे काल मे भी उन्हे कभी दु ख देखने का अवसर नही आया। कभी माथा दुखने और सू ठ काली मिर्च लेने का काम नही पडा। सारे जीवन भर सुख ही सुख देखा। केवल अन्तिम दिनो मे उन्हे इतना सा ही दु ख अनुभव करना पडा कि उनके जीते जी ऋषभदेव दीक्षा लेकर वन मे चले गये और एक हजार वर्ष तक घर की ओर नही आये। और फिर भी सोलह श्रृ गार से सजी हुई, हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे ही केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष मे चली गई ? उन्हे तपस्या करने का कष्ट भी नही उठाना पडा।

सरलता से मुक्ति

अब कोई विचार करे कि जब मरुदेवी माता मोक्ष मे चली गई, तो हम भी जावें ? अरे भाई, आपको रोकता कौन है ? परन्तु जाने के पहिले अपना घर भी तो सभाल लो कि पोते इतना माल है क्या ? यदि आपके पोते माल है तो आपको रोकने वाला कोई नही है। अन्यथा मन के लड्डू भले ही खा लो, पर मोक्ष नही पहुच सकोगे। माई मरुदेवी माता ने भावे साधुपना लिया। यद्यपि द्रव्यरूप से उनके साधुपना नही था, तथापि भाव उनके बहुत ऊचे थे और बहुत सरल परिणाम थे। उन्होने भगवान् ऋषभदेव को भी उपालम्भ दिया कि अरे ऋषभ, तू मुझे छोडकर चला गया, तूने एक बार भी कोई पत्र नही दिया, अपने कुशल-समाचार नही भेजे ! मैं तेरे बिना कितनी दुखी रही, इसका भी तुझे कुछ पता है ? और अब भी आया, तो इतना अभिमान कि तू मुझसे मिलने को भी नही आया। पर यह तो बता कि इतने दिनो तक तू आनन्द मे तो रहा ? कोई कष्ट तो नही उठाना पडा ? परन्तु भगवान् ऋषभदेव ने तो उनकी ओर देखा भी नही। उन्होंने सोचा कि यदि मैं बोलू गा तो इन्हे केवलज्ञान नही होगा। अपना पुत्र-धर्म इसी मे है कि हजार वर्ष तप करके जो पू जी सचित की है, वह माता के चरणो मे समर्पित कर दी

जाय । माता तो भोली जैसी बाते कर रही हैं । इन्हे कैसे समझाया जा सकता है ? जब तक भगवान् ऋषभदेव अयोध्या की ओर नही आये थे, तब वे भरत से कहा करती थी कि जा, और ऋषभ को बुला कर ला । उत्तर मे भरत कहते रहते थे कि मैं क्या करू वे तो इधर आने की हाँ भी नही भरते हैं । तब माता कहा करती कि यदि वह नही आता है तो उनके खाने के लिए भोजन का गाडा भर कर लेजा, जिससे कि मेरा बेटा भूख-प्यास का कष्ट न पावे । भरत भोजन लेकर गये और भगवान् से कहा कि आप भी भोजन करे और अन्य साधुओ को भी भोजन करावें । पर भगवान् ने भरत से कहा कि ऐसा भोजन लेना हमे कल्पता नही है । भरत ने कहा—कि भगवन ! आपकी माताने भिजवाया है । स्वीकारकीजिए । परन्तु भगवान् ने वही उत्तर दिया कि किसी ने भी भिजवाया हो, पर ऐसा आहार हमारे काम मे नही आता है । तब भरत ने पूछा—भगवन्, मैं इस भोजन का क्या करू ? भगवान् ने कहा—जैसे साता उपजे वैसा करो । चक्रवर्ती विचारने लगे—मैं भोजन तो ले आया, अब वापिस कैसे ले जाऊँ ? तब भगवान् ने कहा—स्वामि-वत्सलो को—स्वधर्मियो को खिला दो । भरत ने वहाँ उपस्थित सभी साधर्मी भाइयो से भोजन करने के लिए कहा । उस समय वे चक्रवर्ती नही हुए थे, किन्तु महामाण्डलिक राजा थे । जब सब लोग जीमने को बैठे, तब उन लोगो ने कहा कि आपको भी भोजन करने के लिए बैठना चाहिए । भरत ने कहा—मै आप लोगो से बडा नही हू, आपके ही बराबर हू, जाजम मे भी और धर्म मे भी समान ही हू । कोई एक सामायिक करे वह भी व्रती है । व्रतीपने की अपेक्षा दोनो समान हैं । हाँ, फल प्राप्ति मे अन्तर हो सकता है । परन्तू धर्म-साधन करने की दृष्टि से सब बराबर हैं । यदि कोई करोड-पति है तो उसको रखवाली अधिक करनी पडती है और साधारण धनिक को कम करनी पडती है । इसी प्रकार जो जैसा हीनाधिक व्रतादिक करता है, उसे तदनुसार हीनाधिक लाभ मिलता है । जिसका जैसा हीनाधिक अन्तराय कर्म दूर होगा, उसे वैसा ही कम या अधिक लाभ मिलेगा । इस प्रकार यह स्वामिवात्सल्य भरतजी ने चलाया । जो सरल चित्त और धार्मिक वृत्ति वाले होते है, वे ही एसी प्रेममय प्रवृत्तिया चलाते हैं । विषम भाववालो से ऐसे काम नही हो सकते है । आज के श्रीमन्त लोग कहते है कि हम औरो को जिमाते तो है, परन्तु जीमते नही है । तो भाई, क्या यह सरलता है ? इसी प्रकार कोई सोचे कि मैं औरो के यहा जीमूँगा तो, परन्तु किसी को जिमाऊगा नही । तो ये दोनो ही बाते खराब हैं । जीमना और जिमाना यही साधर्मीवात्सल्य कहलाता है ।

एक अनूठा आदर्श

दिल्ली मे लाला सुगनचन्दजी हो गए हैं। उन्होने धर्मपुरा का जैन मदिर बनवाने के वाद पचकल्याण प्रतिष्ठा की। उसके सम्पन्न होने पर उन्होंने सारी समाज मे गिन्दोडा (सवा सेर का लाडू) बटवाया। समाज के सभी व्यक्तियो ने ले लिया। किन्तु एक गरीब जैनी भाई ने लेने से इनकार कर दिया। उससे जब नही लेने का कारण पूछा गया,तो उसने कहा कि "मैं जिन्हें खिला नही सकता उनकी कोई वस्तु खाता भी नही हू।" जब गिन्दोडा बाटने वाले वापिस आये तो लालाजी ने पूछा कि सबके यहा दे आये। उन लोगो ने बताया कि और तो सब लोगो ने ले लिए हैं। परन्तु एक भाई ने यह कहकर लेने से इनकार कर दिया कि मैं जिन्हें खिला नही सकता, उनकी कोई वस्तु खाता भी नही हू। लालाजी ने पूछा - वह कौन व्यक्ति है और क्या काम करता है। लोगो ने बताया और कहा कि वह खोमचा लगाता है। यह सुनते ही लालाजी उठे और तुरत गिन्दौडा लिवा करके आदमी के साथ उसके यहाँ पहुचे। उस समय वह घर का ताला लगा करके सिर पर खोमचा रखकर वेचने को जाने ही वाला था कि लालाजी ने उससे सस्नेह जयजिनेन्द्र कहा और कुशल-क्षेम पूछी। तथा उसके माथे पर रखे खोमचे मे हाथ डाल कर एक मुट्ठी चना उठाए और वही खडे-खडे खाकर बोले—भाई पानी और पिलाओ। उसने ताला खोलकर पानी पिलाया। तत्पश्चात् लालाजी बोले—भाई, अवतो मैंने तुम्हारे यहां खा-पीलिया। अब तो इस गिन्दोडे को लो। वह उनका यह बडप्पन देखकर स्तम्भित रह गया, उनका आभार माना और गिन्दोडा ले लिया। भाई, साधर्मीवात्सल्य इसका नाम है। लोक-व्यवहार मे जीमना और जिमाना यही शोभा देता है। दो व्यक्ति कही पर साथ गए और साथ मे भोजन करने को बैठें। एक के पास बढिया मिठाइया और पकवान हैं और दूसरे के पास भुने हुए केवल चने हैं। अब माल वाले का कर्तव्य यही है कि उसे साथ मे भेले बैठाकर उसको अपना माल खिलाए और उसके चनो को भी स्वय खावे। तभी जाति और समाज मे प्रेम भाव बढता है। यदि आप लोग अहकार का भाव त्याग कर ऐसे काम करने लगें तो समाज का सुधार होने मे देर नही लगेगी। अन्यथा कोई भी सम्मेलन करो—चाहे वह जैन सम्मेलन हो, या ओसवाल सम्मेलन हो, अथवा भारत जैन महामन्डल का सम्मेलन हो, तो उनसे क्या होने वाला है। रग मच पर खडे होकर लम्बे चौडे लच्छेदार भाषण दे दो, परस्पर मे शिष्टाचार भरी मीठी बात कर लो और सुधार के प्रस्ताव भी पास कर

लो, परन्तु उनसे कुछ भी होने वाला नही है, सब ऐसे ही रखे रह जाते हैं। उन पर अमल नही होता है, क्योकि आप लोगो के परिणाम शुद्ध नही है। और परिणाम शुद्ध हुए बिना कोई सुधार नही हो सकता है। यदि परिणाम शुद्ध हो तो घडी भर मे सुधार हो जाय। यदि आप लोगो की भावना वास्तव मे सुधार की है तो कहो कि सारी जाति हमारी है और हम सारी जाति के है। हमारी जाति मे जो कुरीतिया और बेढगी वाते आ गई हैं, उनसे हमारे पडौसी और आगे की पीढी दु ख पायेगी। अत हमारा कर्तव्य हैं कि हम एकत्रित होकर और सबसे पूछकर करें कि इस कार्य से लाभ होगा, या नही ? यदि इस प्रकार सबके साथ मिलकर स्नेह से कार्य किया जायगा, तो सुधार होने मे देर नही लगेगी। नही तो प्रस्ताव तो पास कर लेते हो। पीछे परस्पर मे गालिया निकालते हो और एक दूसरे पर छीटाकशी करते हो, तो उससे क्या लाभ हो सकता है ? कभी नही। ऐसे कामो से तो लाभ के वदले हानि अधिक होती है। आज छोटी-छोटी जातिया भी आगे बढ रही हैं और अनेक प्रकार के बन्धारण कर रही हैं। आप लोग तो पहिले से ही उन लोगो से आगे हो, आपको दौडने की आवश्यकता नही है केवल थोडी सी ताकत लगाते ही उत्थान हो सकता है। सरलभाव से ही आप लोग आगे बढ सकते है, अन्यथा नही।

आहुवे मे सिरहमल जी मूथा कामदार थे। आहुवे के ठाकुर भी कडे स्वभाव के थे। उनके यहा परदा प्रथा भी कडी ही होती है। अब धणी जैसे मुसद्दी और मुसद्दी जैसी पब्लिक होती है। आहुवे के चौके मे काण-मुकाण जावे तो उनको घूघरी और गुड देते थे। उनके अनेक बडे गाव लगते थे और दिसावर के लोग भी वहा रहते थे। सभी चौके मे जाना चाहते थे। इस प्रकार वढते-वढते ग्यारह मन गुड और घूघरी उठना शुरू हो गया। लोग सोचते कि यह काण है। इतने खर्च मे तो मोसर हो सकता है। यह बात छोटे लोगो को कुछ अटपटी लगी। परन्तु बडे लोग इसकी परवाह नही करते थे। धीरे-धीरे यह वात सब मे चली कि यह प्रथा उठा देना चाहिए। भाई, सभी जगह कुछ न कुछ विरोधी भी मिलते है, वे कहने लगे कि यह बडेरो की चलाई रीति है, इसे कैसे उठाया जा सकता है। उस समय सिरहमल जी मूथा राज्य के कर्त्ता-धर्ता थे। वे आहुवे मे जो करना चाहे, वही होता था। उनकी मा साहब का स्वर्गवास हो गया। उनके चौकसे मे सत्ताईस गाव थे। सब जगह चिट्ठिया लिख दी गई कि सब सरदार एक साथ अमुक मिती को पधारें। लोगो ने सोचा कि सबको एक साथ

बुलाया है, तो शायद बावनी करेंगे। इसलिए बाहर के गाव वाले सब लोग निश्चित मिती पर इकट्ठे हो गये। साथ ही साथ सारे गाव वाले भी आ गये। जब मूथा जी उठे और पचो की पगरखिया जो खुली हुई रखी थी, उनको हाथ मे लेने लगे। यह देख लोगो ने कहा—मूथा साहब, यह आप क्या कर रहे हैं? उन्हाने कहा—सरदारो, मेरी प्रार्थना है और वह यह है कि मेरी घूघरी और गुड देने की शक्ति नही है, इसलिए मुझे माफी दिलाई जावे। लोगो ने कहा—मूथा साहब, आप यह उल्टी बात कैसी कर रहे हैं। आप तो बावनी करने की सामर्थ्य रखते हैं। मूथा जी बोले—आप चाहे जैसा समझ ले। परन्तु मेरी सामर्थ्य नही है। लोगो ने कहा—जब आपकी सामर्थ्य नही है, तब दूसरो की कैसे हो सकती है! भाई, उसी दिन से यह कुरीति उठा दी गई। इस प्रकार जो इसके पक्षपाती थे, उनके भी मन की होई और जो विरोधी थे, उनके भी मन की हो गई। यद्यपि मूथा जी की सामर्थ्य घूघरी गुड बाटने की या बावनी करने की थी। तथापि सब लोगो की भलाई के लिए उन्होने वैसा कहना उचित समझा और सब की बुराई अपने सिर पर लेली। भलाई की दृष्टि मे जो भी काम आप लोग करना चाहे, वह किया जा सकता है। जिनके पाच-पच्चीस की हटडी और बीटी आ गई है और वे यदि पचो मे कह देवें कि हम न तो लेगे और नही देंगे, तो इस लेन-देन की प्रथा को बन्द होते क्या देर लग सकती है? जो लोग सर्वशक्तिसम्पन्न है, वे यदि अपने परिणामो को सरल बनावे और स्वय त्याग करें, तो सुधार होने मे देर नही है। यदि ये कुरीतिया बन्द हो जावें, तो शेष कार्यों के करने का अवसर मिलता है। अन्यथा इस गोरख धन्धे मे ऐसे फसे हुए हो कि कोई तो चालू रिवाजो को खुशी से करता है और कोई लाज-शर्म से विवश होकर करता है कि कोई लाछन न लगावे। अपने लाभ के लिए बहुतो को हानि पहुचाना यह आपका काम नही है।

सज्जनो, अब पर्युषण पर्व आने वाले है, लोगो का मेला बहुत लगेगा। अतएव ऐसा विचार करें और आपके सघ के जो अध्यक्ष, मत्री और पञ्च हैं, उनके कानो मे यह बात पहुचे कि वे ऐसा कार्यक्रम बनावे कि जिससे जोधपुर का भला हो जाय। इसके पीछे मारवाड का भला हो जायगा। इसलिए अब आप लोग सावचेत हो जावे और मनुष्यता प्रकट करे, जिससे कि यश का सेहरा शिर पर बधे, सात पीढी तक लोग आपके गुणो का गान करें। आज न्यात के नोहरे मे जाते हैं तो जिन्होंने उसके बनवाने मे भाग

लिया है, उन लोगो को आप याद करते है या नही ? तथा जो लोग अच्छे काम मे काटे विछा रहे है तो लोग उनको भी याद करते हैं, या नही ? भाई, ससार दो प्रकार से याद करता है - भलाई करने से, भले काम करने से और बुराई या बुरा काम करने से। पर्युषण पर्व मे होने वाला कार्य दो-चार व्यक्तियो का ही नही है, अपितु सभी लोगो का है। और यहा कोई सन्तो का लगाव भी नही है। न्यात के नियम तो न्यात ही बनायेगी, और जाति का वन्धान तो जाति ही करेगी। यदि अपने कर्तव्यपालन मे आप लोगो ने जरा-सी भी गफलत रखी और आखे नही खोली तो मुझे ऐसा वचन नही कहना चाहिए, क्योकि ओसवाल का रक्त मेरे भी शरीर मे भरा हुआ है—तो ओसवालो का नाम भले ही रह जाय, परन्तु आपका गौरव नही रहेगा। इसलिए उन्नत हृदय बनाओ। अभी आगे तो गिनती के ही लोग आवेगे, परन्तु पीछे वहुत आयेंगे और दूसरे लोग भी आवेगे। वे लोग जोधपुर मे जो सुधार का बढिया काम देखेंगे, उसे अपने-अपने गावो और नगरो मे भी प्रचार करेंगे। आपके आदर्श कार्यों का वे भी अनुकरण करेंगे। इससे आप लोगो का भी गौरव बढेगा और समाज का सुधार होगा।

कुछ समय के वाद भगवान् महावीर की पच्चीस सौवी जयन्ती भी आ रही है। इसलिए इस समय ऐसे-ऐसे उत्तम कार्यों के करने का बीडा उठावें कि उस समय तक समाज मे एक कुप्रथा नही रहे और ऐसे आदर्श कार्य करें कि जैन धर्म की प्रभावना बढे और भगवान् महावीर की वाणी की दिव्य गगा सर्वत्र प्रवाहित हो और लोग उसमे अवगाहन कर अपने को धन्य मानने लगें।

३
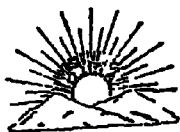
मानवता की सौरभ

घणघाईकम्ममहणा तिहुवणवर - भव्वकमलमत्तडा ।
अरिहा अणतणाणे अणुवमसोक्खा जयतु जए ॥

सज्जनो, एक फूल ऐसा है कि जिसके भीतर भी सौरभ है और वह बाहर भी सौरभ फेंकता है। एक फूल ऐसा है कि जिसके भीतर तो सौरभ नही है, पर वह बाहर सौरभ फेंकता है और दूर से ही उसकी महक आती है। एक फूल ऐसा है, जिसके भीतर तो सुगन्ध रहती है, पर बाहर नही आती है। और एक फूल ऐसा कि जिसके भीतर भी सुगन्ध नही है और बाहर भी सुगन्ध नही आती है।

जिस प्रकार ससार मे ये चार प्रकार के फूल होते हैं, उसी प्रकार से मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं। एक मनुष्य तो ऐसा है कि जिसमे मानवता परिपूर्ण रूप से भरी हुई है। उसमे किसी बात की कमी नही है। जब-जब भी देश, जाति और धर्म के ऊपर आपत्ति आती है तो वह अपना कर्त्तव्य समझ कर उसे दूर करता है और उसे सर्व प्रकार से सम्पन्न बना देता है। अत उसमे स्वय भी सौरभ है और दूसरो पर भी अपना सौरभ फेंक कर उन्हें भी सुरभित कर देता है। ऐसा मनुष्य मलयागिरि के चन्दन वृक्ष के समान है, जो स्वय तो सौरभमय है ही, किन्तु अपनी सुगन्धि से आस-पास के वृक्षो को भी सुगन्धित कर देता है और उन्हे अपने जैसा बना लेता है। आजकल बाजार मे प्राय. असली चन्दन से सुरभित हुए अन्य वृक्षो के टुकडे ही चन्दन के नाम पर बिकते हैं।

एक इस जाति का मनुष्य होता है कि जिसमे स्वय तो सौरभ नही है,

विद्या बुद्धि आदि नही है, परन्तु वह बाहिर सौरभ फेकता है। परिस्थिति-वश उसमे मानवता के गुण नही आ सके है, परन्तु वह हर एक को ऊँचा उठने की, आगे बढने की और खूब दिल लगाकर पढने की प्रेरणा देता है और कहता है कि भाई, हमे तो साधन नही मिले, इसलिए हम तो अपना विकास नही कर सके। परन्तु तुम्हे सर्व प्रकार के साधन उपलब्ध हैं, तुम खूब पढो और आगे बढो, तथा अपना विकास करके ससार मे अपना नाम रोशन करो। प्राय आप अपने बच्चो से भी कहा करते है कि हमारा जमाना तो ऐसा ही था कि हम आगे नही पढ सके, पर तुम तो आगे पढो। हम तो अच्छी कमाई नही कर सके, पर तुम खूब कमाओ इस प्रकार दूसरी जाति के लोगो मे मानवी गुणो की कमी होते हुए भी वे दूसरो को मानव बनाने की प्रेरणा देकर उन्हें सुरभित करते है। तीसरी जाति के मनुष्य उस फूल के समान हैं जिसके भीतर सौरभ तो है, मानवता तो है, परन्तु औरो के लिए कुछ नही करता है। वह अपने ही विकास मे लगा रहता है, और अपनी ही आपत्तियो को दूर करता रहता है। दूसरा व्यक्ति यदि उससे दूसरे की भलाई करने की कहता है तो वह उत्तर देता है कि भाई, माफ करो मैं अपने ही मुख की मक्खिया उडा लू, तो यही बहुत है। चौथी जाति के मनुष्य उस फूल के समान हैं, जिसमे न उसके भीतर ही सौरभ है और न बाहर ही उसका सौरभ फैलता है। इस जाति के मनुष्य मे न स्वय मे मानवता है, और न वह दूसरो को ही मानव-गुण-सम्पन्न करने मे सहायक होता है। ऐसे मनुष्य आकडे के फूलो के समान किसी काम के नही हैं।

आज के समय मे उन फूलो की आवश्यकता है, जिसके भीतर स्वय मे सुगन्धि है और जो बाहर भी अपनी सुगन्ध फेंक करके दूसरो को भी सुगन्धित कर सकें। मनुष्य के भीतर जब भरपूर मानवता होगी, तभी वह दूसरो को भी मानव बना सकेगा। जिसमे वह मानवता नही है, प्रत्युत कायरता है, वह क्या करेगा? छोटे से छोटा काम भी उसके सामने लाकर कोई रख देवे और कहे कि आपको यह काम करना है तो कहता है कि साहब, मैं काम को करने के लिए तो तैयार हूं, परन्तु, इसमे यह बाधा आ जाय तो मैं क्या करूगा? दुनिया के लोग कुछ कहने लगे तो क्या होगा? इस प्रकार वह 'तो ही तो' मैं अपने जीवन की इतिश्री कर देता है। परन्तु जो मानव है, जिसमे मानव-सुलभ गुण हैं, वह ऐसा नही कहता। क्योकि मानवता के साथ वीरता का ऐसा अविनाभावी सम्बन्ध है कि वह कायरता

की बात ही नही करेगा। वह अपनी मानवता मे मस्त है। उसको न धन की अभिलाषा है, न तन की चिन्ता है और न सुख की ही इच्छा है। वह न ससार की समस्त वस्तुओ को बटोरना ही चाहता है और न धन-सचय करने की ही भावना है। उसकी तो सदा यही भावना रहती है कि—

नत्वहं कामये राज्य न स्वर्गं न पुनर्भवम् ॥
कामये दु.खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

न मैं राज्य पाने की इच्छा करता हूँ, न स्वर्ग की और न सासारिक भोग और उपभोगो की ही मेरे कामना है। मैं तो दुःखो से सतप्त प्राणियो को उनके दु खो से उन्हें छुडाना चाहता हूँ। बस, यही मेरी एक मात्र इच्छा है, ऐसी भावना ही उसके सदा बनी रहती है।

मानवता का निवास हृदय मे

इस प्रकार की भावना वाला जीव सदा उद्योगशील और पर-हित निरत रहता है। वह तालाव के भरे गन्दे पानी को पीना पसन्द नही करता। किन्तु बहती हुई नदी की निर्मल जल-धारा का ही पानी पीना चाहेगा। कदाचित् नदी की धारा सूख भी जाय तो वह उसी मे बालू रेती को हटा करके उसके भीतर प्रगट होने वाले ताजे पानी को ही पियेगा। परन्तु तालाव के सडे और दुर्गन्धयुक्त पानी को नही पियेगा। ताजा और निर्मल स्वच्छ जल उद्योग के बिना नही मिल सकता है।

कुछ लोग सोचते हैं कि अवस्था बढने के साथ मानवता का विकास होता है, सो यह विचार भी ठीक नही है। एक दस वर्ष के बालक मे भी मानवता मिल सकती है और सौ वर्ष के वृद्ध पुरुष मे भी वह नही मिल सकती है। पच्चीस वर्ष के जवान मे वह मानवता मिल सकती है और ७५ वर्ष के बुड्ढे मे नही मिलती है। आज आप लोग कहे कि महाराज, हम लोग तो मानव ही हैं। तो भाई इसमे कोई सन्देह नही है कि आप लोग शरीर की अपेक्षा मानव हैं। आपका मानव-तन है, इस बात मे दो मत नही हो सकते हैं। परन्तु मानवपन होना और बात है और मानव-तन होना और बात है। फूल का शरीर और वस्तु है और उसमे सौरभ होना और वस्तु है। यदि वह मानव-पन अर्थात् मानवता हमारे भीतर आजाय तो वास्तव मे हम आप मानव ही हैं। यदि वह मानवता हमारे भीतर नही है, तो भाई साहब, मानव कहलाने के हम अधिकारी नही हैं। जो मानवता के

अधिकारी हैं उसके ऊपर कितनी ही बौछारे आजाये, वे पुरुष इधर से उधर चल-विचल नही होते है। किन्तु जिनका शरीर ही केवल मानव का है, उन्हे तो झुकना ही पडेगा।

एक भाई ने कल कहा कि बावजी, उपदेश तो अच्छा देते है, किन्तु कडवा बहुत देते हैं। मैंने उनसे कहा—जितने भी बालक जन्म लेते है, उन्हे तभी से लेकर तीन-चार वर्ष तक माता जो जन्मघूटी देती है, वह खारी होती है, या मीठी ? यदि वह अबोध शिशु मा से कहे कि मा, तेरा स्वभाव बहुत बुरा है, तू हमे कडवी ही घूटी देती है, मीठी क्यो नही देती ? तब मा कहती है कि बेटा, मीठी गोली देकर तेरा जीवन खराब थोडे ही करना है। मुझे तो तेरा जीवन, उन्नत, स्वस्थ और प्रतापशाली बनाना है। दुनिया को मीठी बातें चाहिए। परन्तु मीठी के अवसर पर मीठी बात करना चाहिए। प्रत्येक समय मीठी बात क्या काम की है। सीरा बनाते हो तो मीठा चाहिए। लापसी चूरमा बनाओ तो भी मीठा चाहिए। परन्तु गट्टे-पितोड बनाओ तो उसमे तो खारा ही पडेगा। पूरी-रोटी बनाओ, या बाटी बाफला बनाओ, उसमे तो नमक ही डालना पडेगा, शक्कर नही। सीरा-चूरमा लगातार चार दिन खाओ तो मुह पर आ जावेगा, आगे खाया नही जायगा। परन्तु दाल और रोटी तो प्रतिदिन खाते है, फिर भी यह कभी मुह पर आती है ? इनसे कभी घृणा आई क्या- ? और जिस दिन दाल रोटी से मन हट जायगा तो लोग कहने लगेंगे कि अब तो रामा-सामा है। जिसका अन्न छूटा, उसका घर छूटा। भाई, यह बताओ कि खारी कडवी नमक मिर्ची आदि पड़ती है, वे वस्तुए प्रतिदिन काम मे आती है, अथवा जिनमे मीठा ही मीठा पडे, वे वस्तुए प्रतिदिन काम मे आती है ? फिर कड़वे से आप क्यो घवडाते हैं ? यदि सभी लोग घबडाते होते तो दस पाच व्यक्ति प्रतिदिन छटते-छटते श्रोताओ की सख्या नगण्य रह जाती। फिर व्याख्यान मे इतनी भीड नही दिखाई देती। परन्तु जिन वचनो को आप कडवे कहते है, वे सभी को कडवे नही लगते हैं, किन्तु मीठे लगते हैं। क्योकि कडवे वचनो से जितना लाभ हमे है, उतना मीठे वचनो से नही है। भाई, गुरुजनो से, माता-पिता से एव अन्य गुणी-वृद्धो से जो मीठे शब्द सुनना चाहते हैं, वे मनुष्य नहीं हैं। भले ही वे मानव-तन-धारी हो, पर मानवता उनमे नही है। गुरु और माता-पिता तो कडवे ही बोलेंगे, क्योकि उनकी भावना सदा यही रहती है कि हमारे ये श्रोता, शिष्य और सन्तान आगे बढें और अपनी खूब उन्नति करे। गुरु यदि कडवे शब्द कहते हैं तो तुम्हारे गौरव को बढ़ाने के लिए ही कहते हैं, घटाने

के लिए नही। जब वे तुम्हारी कोई कमी या त्रुटि देखते हैं, तभी तो सुनाते हैं। अन्यथा उन्हे कडवी सुनाने का क्या प्रयोजन है ? क्या वे तुमसे लडने को बैठे है, या तुमसे कोई शत्रुता है, या वैर का बदला लेना है ? कुछ भी नही है। वे तो सदैव तुम्हारे हितैषी हैं और हितबुद्धि से ही कभी कोई कडवी बात कह देते हैं। इसलिए गुरुजनो और माता-पितादि के द्वारा कडवी बात के कहे जाने पर तुम्हे बुरा नही मानना चाहिए।

चौथे आरे के अन्त मे महावीर स्वामी और गौतम गणधर हो गये है। तथा राजा श्रेणिक और रानी चेलना भी हुए है। उनका वृत्तान्त सब जानते हैं, उसे क्या सुनावे ? लोग डाक्टर के पास जाते हैं। तो बीमारी मिटाने के लिए जाते हैं। यदि डाक्टर, वैद्य या हकीम बीमारी का प्रतीकार न करें, तो क्या वह डाक्टर, वैद्य या हकीम कहा जायगा ? इसी प्रकार आप लोग भी यहा पर अपने जीवन की शुद्धि और आत्मोद्धार की भावना से आते हैं। यदि हम आपको कडवी दवा नही देवे और आपकी प्रशसा के पुल बाँधने लगें तो समझलो हममे गुरुपना नही है। यदि आपको अपनी प्रशसा सुनना ही प्रिय है तो, भाई चारण-भाटो की कमी नही है। थोडे से पैसो के बल पर ही वे आपकी प्रशसा के पुल बांध देंगे। परन्तु जो—प्रशसा को सुन-सुन कर ही तो राजा महाराजाओ के हाल बिगड गये। जब तक वे प्रशसा के भूखे नही थे, तब तक वे रात-दिन देश की सेवा मे लगे रहते थे। किन्तु जिस दिन से चारण और भाट उनके पीछे लगे और प्रशंसा के झूठे पुल बांधना शुरू किये तो राजा-महाराजाओ ने भी समझ लिया कि ससार के अन्नदाता, विधाता और देवता हम ही है। इसका नतीजा क्या हुआ सो सब आप लोगो के सामने है। मनुष्य की प्रशसा कहा और किस अवसर पर करना चाहिए, इसमे भी विवेक की आवश्यकता है। अकारण प्रशंसा करना भी मूर्खता है। फिर मनुष्य के हृदय मे प्रशसा पाने की भावना ही क्यो आनी चाहिए ? यदि आपने प्रशसा का कार्य किया है, तो दूसरे प्रशंसा करें, या नही करें, अपने को आत्मसन्तोष तो होता ही है। नीतिकार भी यही कहते हैं कि—

'सर्वकार्याणि कुर्वीत स्वात्मनस्तुष्टि हेतवे।'

मनुष्य को अपने सभी कार्य अपनी आत्मा के सन्तोष के लिए ही करना चाहिए। दूसरो से प्रशसा पाने या दूसरो के दिखावे के लिए नही।

सौरभ तो ससार मे स्वय फैलती ही है। और जिसका यश ससार मे फैल रहा है, वह मर करके भी सदा अमर है। इसीलिए कहा गया है कि—

आस्था सतां यश काये न ह्यस्थायिशरीरके

जो सज्जन पुरुष होते हैं वे ऐसा कोई काम नही करते है कि जिससे ससार मे अपयश हो। वे तो सदा सबके उपकारक कार्य ही करते रहते हैं, उन्ही के द्वारा उनका यश रूपी शरीर ससार मे विद्यमान रहता है। वे इस यश शरीर मे ही आस्था रखते हैं। यद्यपि सज्जन पुरुष यश के भूखे नही होते, तथापि उनके कार्य ही ऐसे होते हैं कि ससार स्वय ही उनका यशोगान करता है। ऐसे ही व्यक्तियो का नाम मानव है। कहा भी है।

जिन्ह की शोभा जगत मे, वाको जीवन धन्न।
जीवत ही मुआ भला, जो सुणे कुशोभा कन्न।"

आज के दिन एक महापुरुप को जन्म तिथि है। कवि कहता है—

धरती धर्म वीर पुरुषो का, काम न आता कायर के।
नदी नीर सभी जन पीते - कौन चहत है सायर के।

आज का दिन हमारे लिए क्या सूचना देता है? हमको क्या उपदेश देता है और क्या वतलाता है? एक तो यह धरती और दूसरा धर्म ये दो वस्तुए वीरो की है, कायरो की नही। कहा भी है—

'धर्मो धार्यते धीरै वीरभोग्या वसुन्धरा।

अर्थात् धर्म को धीर-वीर पुरुप ही धारण करते है और यह वसुन्धरा धरती तो वीर पुरुपो के द्वारा ही भोगी जाती है, कायरो के द्वारा नही। कायरो के तो न धरती रहती है और न धर्म ही रह सकता है। ससार मे नर-नायक, नर शिरोमणि, नर श्रेष्ठ, नर पुगव, नरसिंह और नारायण आदि पदविया उनको ही मिलती हैं जिनमे कि वीरता भरी हुई है। वीर पुरुप ही आन पर मरने वाले होते है। फिर—

"धींग धरणी चाहती है धरती—धींग पुरुष का जग सहारा।
धींग मरण को करे न परवा सकट विकट करे न्यारा॥
धींगामस्ती नहीं करता है—धींग धर्म का है प्यारा।
धर्मग्लानि नहीं सह सकता, धींग मृत्यु को ललकारा॥"

धीग नाम धरती का है। धरती कहती है कि मेरा धणी कैसा होना चाहिए और मैं किस को धणी मानती हूं? जिसमे कि ये गुण हो। धरती के धणी मे वे कौन से गुण होना चाहिए?

दुष्टस्य दण्डो स्वजनस्य पूजा, न्यायेन कोषो च हि संप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातो निज राष्ट्रचिंता, गुणैरमीभिस्तु नृपो विराजते ॥

जिस राजा के भीतर, जिस धरती के धणी मे ये पाच गुण हैं, वही वस्तुत धरती का धणी है । उसे कोई हटा नही सकता है । पहिला गुण बतलाया गया है कि जो दुष्ट स्वभाव का है, खोटी प्रकृति वाला है, धर्म का विध्वसक है, अधर्म का पोपक एव प्रचारक है, सभी को कष्ट देता है और अमन मे खलल पहुचाने वाला है, उसे दड देता हो । राजा दुष्टो का निग्रह करते हुए यह विचार नही करता है कि यहा पर जीव दया पालनी है । भाई, दया तो गरीव, दीन-हीन प्राणी पर की जाती है, अनाथ और असहाय के ऊपर दया करनी चाहिए । परन्तु दुष्ट के ऊपर दया का विधान नही है, ऐसा नीति शास्त्र कहता है । राजा का कर्त्तव्य है कि वह दुष्ट पुरुप को दड दे । और पूजा किसकी करे ? जो न्याय,नीति का पालन करते हो. परोपकारो हो, और धर्म, समाज एव देश के ऊपर प्राण देने वाले हों, उनकी पूजा करता हो । राजा को सदा शिष्ट जनो का-सज्जनो का प्रति पालक होना चाहिए । पूजा का मतलब क्या है ? क्या केशर-चन्दन लगाना और जल से अभिपेक करना, या फूल मालाए चढाना ? नही, इनसे मतलब नही है । पूजा से अभिप्राय उनके मान-सम्मान को बढाने से है ।

एक बार महाराज मानसिंहजी जालोर के किले मे विराजे थे । उस समय खेजडला के ठाकुर किशनसिंहजी थे । वे आठ भाई थे । सात भाई उनसे छोटे थे । दिवाली के दिन पाटवियो के सामने मुजरा करने को जाना पडता था । सात भाई मुजारा करने को गये । आठवें जोधाजी पहुचे और कहा—भाभीजी, मुजरा ! वे ढोलिए से नीचे नही उतरी । तव जोधसिंह जी ने कहा—भाभी साहव, मैं तो मुजरे के लिए आया और आप को अच्छा नही लगा । उन्होने कहा—लालाजी साहव, ऐसा क्या ववावा लेकर पधारे हो कि मैं मुजरा मोद के साथ करू ? अरे, आप रोटिया तो रावले मे आरोगते (खाते) हो ? इतना सुनते ही तो वह रवाने हो गये और कहा कि अबतो नया लेकर ही मुजरा करूगा ।

तेजी सहे न ताजणो—खेत न सहै खन्वार,
सूरां ने मरणो सिरे पिण न सहै तू कार ॥

भाई, जो स्वाभिमानी होते हैं,वे किसी का ताजना सहन नही कर सकते है । वे इस ताने को सुनकर वहाँ से लौटे और पायना मे जा कर, घोड़े पर

जीन कस कर और पाँचो शास्त्र लेकर जाने की तैयारी करने लगे। ठाकुर साहब ने देखा कि आज जोधसिंहजी की आखें बदल गई और जाने की तैयारी कर रहे हैं। तब उन्होने कहा कि जोधसिंहजी, कहा जा रहे हो? वे बोले—भाईजी, जहा मर्जी होगी, वही जाऊँगा। ठाकुर साहब ने कहा कि यह नही हो सकता। जोधाजी बोले—यही होगा और जब तक बधावा लेकर नही आऊँगा, तब तक खेजडले मे पानी नही पीऊँगा। भाई, किसी का भी लडका हो, वह घर मे रहता है तो दिमाग और रहता है और हाथ पकड कर निकाल दे तो जमीन-आसमान एक हो जाते हैं। जोधसिह जी ने विचार किया कि मानसिह जी के पास चले। वे भी दुख मे है और मे भी दुख मे हू। यह विचार कर वे जालौर मे किले के पास पहुंचे। किले का दरवाजा बन्द था। सन्तरी ने पूछा—कौन आया है? इन्होने कहा—मेरा नाम जोधसिह भाटी है और मैं दरबार की सेवा मे जाना चाहता हू। सन्तरी ने भीतर जाकर दरबार मे कहा कि अन्नदाता से मिलने के लिए खेजडला के भाटी आये हैं। उन्होने सुनकर सोचा कि आज मेरे परभारी आगया तो मेरा दिन भी घरें आगया। अब जोधपुर मेरा और मेरे बाप का है। वे जोधसिहजी के सामने आये और आते ही पूछा—भाटी, कैसे आये? खेजडला के धणी तो मजे मे है? तब जोधसिह जी बोले—खेजडला तो किशनसिह जी के पट्टे मे है। मैं तो समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं और इसीलिए अन्नदाता के सामने आया हूं। मानसिहजी ने कहा—जो मिले वह तुम भी खाओ। मैं भी तुम्हारे शामिल हूं। फिर जोधसिहजी भाटी और मानसिहजी ने मिल कर विजय प्राप्त करली। इस प्रसग की चर्चा करने का मतलब यह है कि जोधसिहजी को आया जानकर मानसिहजी झट नीचे आये। वे सज्जनो का मान बढाते थे और न्याय का पक्ष लेते थे।

तथा धरती सन्देश देती है कि सब एक रूप मे रहो, सगठित शक्ति के साथ रहो, बिखरे हुए मत रहो। और जीवन मे पक्षपात का काम नहीं हो। सही बात सामने रख दो। देश-हित की चिन्ता सदा सामने रखो। यह भाव कभी मत रखो कि मैं देश का राजा हूं, शासक हूँ। किन्तु यही भाव रखो कि मे तो देश का एक सेवक हूं, रक्षक सेना का एक सैनिक हूं। मेरे ऊपर देश-रक्षा का जो भार है, उसे निभाना है। धरती कहती है कि जिस व्यक्ति मे ये पाच गुण हो, वही मेरा स्वामी हो सकता है। जो शराब पीते है, मास खाते हैं और परस्त्री का सेवन करते हैं, वे देश के गद्दार है, वे मेरे धनी नही हो सकते है। समय आने पर जो रण-भेरी के बजते ही सामने जाकर खड़े हो

जाते हैं। जैसे यह पचेरिया भाखर उठाये क्या उठता है ? वैसे ही वे युद्ध के मैदान मे पैर जमा कर खडे हो जाते हैं कि हम लडेंगे और शत्रु का सामना करेंगे, परन्तु पीठ नही दिखावेंगे। सत्य की रक्षा के लिए न्याय के ऊपर चाहे उनकी बोटी-बोटी कट जाये, परन्तु वे अन्याय और अत्याचार को स्वीकार नही करेंगे। वे कहते है कि—

अत्याचार मिटाय दो, शिर साटे सेणाय।
मरणा मर्दों एक दिन-इत रहणा है नाय ॥

सृष्टि के भीतर जैसे ही अत्याचार होवे उसे मिटाने का तुरन्त प्रयास करो और जब तक अत्याचार दूर न हो, तब तक सुख की नीद मत सोओ। ऐसे दो महापुरुष भारत वर्ष मे हो गये हैं—एक तो थे कर्मवीर श्री कृष्ण और दूसरे थे धर्मवीर श्री महावीर। कर्त्तव्य-पालन करने वालो मे श्री कृष्ण का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, क्योकि उनके समय पर पृथ्वी के ऊपर जो भार था, उसे उन्होंने दूर किया। आप पूछें कि पृथ्वी के उपर क्या भार था। एक पडित ने पृथ्वी से पूछा कि माता, तेरे ऊपर पर्वत, समुद्र, वनखड, और असख्य प्राणी खडे हैं, तो तुझे क्या इनका भार नही प्रतीत हो रहा है। तब पृथ्वी ने कहा—

"न मे भार न शैलाना-न भारं प्राणिनाधिका"

मेरे ऊपर पर्वतो का और नदी-समुद्रो का कोई भार नही है। परन्तु दो भार हैं जो मुझे सहन नही होते है। और इसीलिए मुझे कभी कभी अपना सिर हिलाना पडता है। पडित ने पूछा—वे दो भार कौन से हैं ? पृथ्वी ने उत्तर दिया—

'कृतघ्नी च महाभारा-भारा विश्वासघातका."

एक तो मेरे ऊपर कृतघ्नी पुरुष का भार है। जो किसी के किये हुए उपकार को न मानें, उल्टा उपकार के बदले मे अपकार करे उसे कृतघ्नी कहते हैं। सो ऐसे भलाई के बदले मे बुराई करने वाले का भार मुझे सह्य नही है। दूसरे विश्वास-घाती का भार मुझमे सहा नही जाता। जो पहिले विश्वास देकर पीछे उसी के साथ दगा करे, उसका गला घोट दे और उसका धन चुरा लेवे उसे विश्वासघाती कहते हैं। अपने घर पर आये हुए मनुष्य को पहिले विश्वास देकर कहे कि यह आपका ही घर है, आप विना किसी-सकोच के आराम से रहिये। पीछे उसके गले पर छुरी फेर दे, उसका धन हडप करले, या और किसी प्रकार का नुकसान कर दे। किसी भाई ने

आकर कहा कि मेरे घर लडकी की शादी है, मुझे आपकी सहायता और सहयोग की आवश्यकता है। तब वह कहता है कि आप को जो भी चाहिए, वह मेरे से ले लेना। जो भी काम आप बतलायेंगे, वह मै आधी रात को करने के लिए तैयार हू। इस प्रकार पहिले तो पक्का विश्वास दे दिया। वह व्यक्ति उसके विश्वास पर कायम रह गया। परन्तु जब काम का ऐन मौका आया और उससे उक्त काम करने को कहा, तो कहता है कि क्या तुम पागल हो गये हो ? क्या यह मेरे करने का काम है ? अपना काम आप स्वय करें, मेरे भरोसे न रहे। अरे भाई, पहिले ही इनकार कर देते, तो वह अपना दूसरा प्रबन्ध कर लेता। ऐसे विश्वासघातियो का भार क्या सहन करने के योग्य है ? कदापि नही!

सादडी से तीन कोस के ऊपर राणकपुर नाम का तीर्थ है। राणकपुर का मेला हीराचन्दजी पोरवाल ने न्योत लिया। मेले मे पचास-साठ हजार तक लोग आते हैं। उनके खाने-पीने की कितने ही दिन पहिले से तैयारी प्रारम्भ कर दी गई। ग्यारह प्रकार की मिठाइया बनवाई गई। बाहिर से अच्छे होशियार हलवाई बुलाये गये। उनके चार आदमी विश्वास पात्र थे। हीराचन्द जी ने सारी खान-पान की व्यवस्था पर उन्हे नियुक्त कर दिया। उनके नीचे अनेक दूसरे आदमी रख दिये गये। यथासमय मेला भर गया। अगले दिन जीमनवार होनी थी। एक पहर रात बीतने पर आदमी ने आकर हीराचन्द जी को नीचे बुलाया। वे आये और पूछा कि क्या बात है ? उसने कहा—बडा अन्याय हो गया है। सारी मिठाइयो मे घासलेट डाल दिया गया है। उन चारो आदमियो ने भारी जुल्म कर दिया है। आप को यदि मेरी बात पर विश्वास हो तो अभी चेत जावें और दूसरा कोई मार्ग निकालें, अन्यथा आपकी शान चली जावेगी। अनेक आदमी उस मिठाई के खाने से मारे जावेंगे और हजारो दु ख उठावेंगे। उसकी यह बात सुनकर हीराचन्द जी के प्राण सूखने लगे। तब उस आदमी ने कहा कि आप पहिले भडार मे चल करके निर्णय कर लेवें। तब भडार पर जाकर हलवाइयो को जगाया और पूछा कि यह क्यो किया। पहिले तो उन लोगो ने टालमटूल की। पर हीराचन्द जी के डाटने पर असली बात उन्होंने बतला दी और कहा कि यह सब काम आपके विश्वासपात्र उन्ही चारो लोगो का है। तब हीराचन्द जी उनको लेकर शहर मे गये। उस समय दुलीचन्द जी भडारी मुखिया थे। उन्होने शेष पचो को भी इकट्ठा किया। उन पंचो के सामने हीराचन्द जी रोने लगे। पचो ने पूछा—भाई बताओ, क्या बात है ? हीराचन्द जी ने सारी बात कह सुनाई। उन लोगो ने कहा—आप बेफिक्र

रहे, हम लोग सब प्रबन्ध करते हैं और कल बारह बजे तक सारे मेले को जिमा देते हैं। एक आदमी भी भूखा नही रहेगा। सो हा, पैसे की चिन्ता नही करे। आपका पैसा नही, हमारा है। यह तो सारे सघ की बात जा रही है। उन पचो ने तुरन्त शहर मे से दो सौ आदमियो को बुलवाया और उनसे कहा कि सारे मेले को खाने का प्रबन्ध सवेरे से पहिले हो जाना चाहिए। भाई, आदमी जब जिस काम मे भिड जाते हैं, तब वे उसे पूरा ही करके छोडते हैं। सवेरा होने से पहिले ही मैदा और शक्कर के थैले आ गये और घी के पीपे भी पहुच गये। उन्होने बडे-बडे कडाहो मे घी-मैदा डालकर सीरा बनाया और बारह बजे तक सारे मेले को जिमा दिया। मिठाई के सारे भडार पर पहरा लगवा दिया। जीमनवार के पश्चात् सारी न्यात इकट्ठी हुई और पूछा कि क्या बात है। जाच-पडताल करने पर ज्ञात हुआ कि हीराचद जी और उन चारो के बीच कुछ द्वेषभाव था। जिसमे उन्होने सारी मिठाई पर घामलेट डलवा दिया है। सारी न्यात ने उन लोगो को धिक्कारा। हीराचन्द जी ने उस सारी मिठाई को जमीन मे गडवा दिया। भाइयो, ऐसा विश्वासघात कितना भयकर है, यदि यह भेद नही खुलता तो हजारो लोगो की जाने चली जातीं। ऐसे विश्वासघाती लोगो के भार को पृथ्वी माता कैसे सहन कर सकती है? इसीलिए वह कहती है कि मेरे लिए विश्वासघाती पुरुष का भार असह्य है।

श्री कृष्णचन्द्र ने पृथ्वी के इन दोनो भारो को समाप्त किया और कृतघ्नी तथा विश्वासघाती लोगो का खात्मा किया। तभी तो उनका नाम कर्मवीर प्रसिद्ध हुआ। कर्मवीर होकर के भी आपने दुनिया का रग-ढग देखा।

काम कर जाते हैं धुन के पक्के, दुश्मनों के छुड़ा देते हे छक्के।

कृष्ण जी काले थे, या गोरे? शरीर मे यद्यपि वे काले थे, तथापि हृदय के गोरे थे। उनका मन अति निर्मल था। तभी तो वे सबके प्यारे कन्हैया लाल कहलाये। आज उसी महापुरुष की जन्म जयन्ती है।

"आज जन्म जयन्ती कृष्ण की, सुन लेना रे सुन लेना।
करना रे देश सुधार सुन लेना रे सुन लेना॥"

सृष्टि के शृङ्गार · श्री कृष्ण

भारतभूमि का बोझ हलका करने वाले श्री कृष्ण की आज जन्म जयन्ती है। यद्यपि उनका जन्म अष्टमी को हुआ था, परन्तु कितने ही

लोगो ने तो कल ही मनाली और कितने ही कहते हैं कि आज जन्म दिन है। भाइयो, बतलाओ कि कृष्ण जी का जन्म एक दिन हुआ, या दो दिन! उनका जन्म तो एक ही दिन हुआ था, और उन्होने जन्म लेकर भारत की पापियो से रक्षा की थी। किन्तु उनके भक्त तो सप्तमी और अष्टमी को जन्म-दिन बतला करके आपस मे लडने लगे। अरे, इस लडाई मे कुछ नही है। उनका जन्म भादवा वदी आठम को रोहिणी नक्षत्र मे हुआ, उस दिन मगलवार था। और अर्धरात्रि का समय था। उनका जन्म बडी विकट स्थिति मे हुआ। उस समय भारतवासी बडे अत्याचारो और सकटो से अत्यन्त दुखी थे। धर्म-कर्म का ह्रास हो रहा था, पाप की घनघोर घटाए सारे भारत पर छा रही थी। तब श्री कृष्ण का जन्म हुआ। कवि ने कहा है—

कैद के मांहि जाया कृष्ण जी बध्या गोकुल ग्रामें।
कस पछाड़ शौरी पुर छोड़ी रह्या द्वार का ठामें॥
जरासिंध मार्‌या है महावका, तीन खण्ड मे आण मनाई दीया जीत डका।
द्वीपायन द्वारका जलवाई। कर्म रेखना टरे करो कोई लाखों चतुराई॥

भाई, यदि भगी, नाई, धोवी और निर्धन पुरुष के घर भी लडके का जन्म होता है, तो कम से कम लोग थाली को ही बजा देते हैं, और दो चार स्त्रिया मिलकर मगल-गीत ही गा लेती है। परन्तु श्री कृष्ण जैसे महापुरुष के जन्म-समय बाजे बजना तो दूर रहा, थाली तक भी नही बज सकी और न मगल-गान ही हो सका, क्योकि देवकी के महल पर शेर, चीता, बघेरो का पहरा था, अठारह देशो की दासियो का और महादैत्यो का पहरा लगा हुआ था। उनको तो जन्मते ही मार देने की योजना बनाई गई थी। उनकी छाती के ऊपर शत्रु का हाथ था। किसकी छाती के ऊपर किसका हाथ रहता है? साहूकार के ऊपर चोर, डाकुओ का, सच बोलने वालो के ऊपर झूठ बोलने वालो का, और न्यायवान् के ऊपर अन्यायी-अत्याचारियो का हाथ था। क्योकि मुनिराज कस की स्त्री से कह गये थे कि जिसका माथा तू गूथ रही है, उसका पुत्र ही तेरे धणी को मारेगा। अपने को बचाने के लिए ही कस ने ये पहरे-चौकिया लगा रखी थी और यह व्यवस्था की गई थी कि देवकी का पुत्र का जन्म होते ही मार दिया जावे। परन्तु जिसके पोते पुण्यवानी होती है और उत्तम प्रारब्ध साथ मे लेकर आया है, उसका कोई क्या कर सकता है? श्री कृष्ण का जन्म नौ मास पूर्ण हो गया। चौकी-पहरेदार सब सोते रह गये, कारागार के ताले अपने आप खुल गये,

और वसुदेव जी श्री कृष्ण को लेकर बाहिर निकल गये। उनके पुण्य से पाच देवता उनका जन्म होते ही हाजिर हो गये। एक वस्त्र लिये आगे चलने लगा, एक ने प्रकाश के लिए मसाल हाथ मे रखी थी। एक सिर पर छत्र धारण किये था और दो देवता दोनो ओर चवर ढोर रहे थे। पहरे पर जो हिंसक जानवर बैठा रखे थे। उनकी दाढें बंध गई, तारे छिप गये और घनघोर मेघघटा रिमझिम पानी बरसाने लगी। जब वसुदेव जी श्री कृष्ण को लेकर किले के द्वार पर पहुंचे, तो देव ने वज्रदण्ड से उसे खोल दिया। ठडी हवा के लगने से श्री कृष्ण को छीक आ गई। तब दरवाजे के ऊपर कैद मे पडे हुए उग्रसेन की नीद खुल गई और पूछा कि कौन है ? वसुदेव ने कहा—यह तुम्हारे बन्धन काटने वाला है। उन्होने बालक को आशीर्वाद दिया कि बालक चिरजीवी हो और कहा कि पधारो। ज्योंहि वसुदेव जी दरवाजे के बाहिर निकले कि बायीं ओर गधा रेंका। वसुदेव जी ने सोचा कि शकुन तो अच्छा हुआ है। तभी से यह कहावत चल पडी कि 'वक्त पडे बाका तो गधे को कहिये काका'। गरज के समय लोग गधे को बाप बना लेते हैं।

हा, तो वसुदेव जी श्री कृष्ण को लिये हुए मथुरा नगरी के बीच मे से जा रहे हैं, चारो ओर सन्नाटा था, सब पहरेदार गहरी नीद मे सो रहे थे। जब वे नगर के पूर्वी द्वार पर पहुंचे, तो वह भी बन्द था, ताले पडे हुए थे। पर श्री कृष्ण के पैर के अगूठे का स्पर्श होते ही सब ताले अपने आप खुल गये और दरवाजा खुल गया। वसुदेव आगे बढे तो देखा कि यमुना जी का पूर आ रहा है, दोनो किनारो के ऊपर से पानी बह रहा है। वसुदेव जी ने सोचा कि यदि एक हाथ मे बालक को लिए और एक हाथ से तैर कर मैं पार उतरूंगा तो इसे ठड लग जायगी ? अब क्या करना चाहिए ? यह सोचते हुए वे खडे थे कि उफनती हुई यमुना का जल श्री कृष्ण के चरण-कमल को स्पर्श कर गया। बस, फिर क्या था ?

"पग लागे गोपल के जमुना भई दो भाग
मअखित निकल गये बारी"

श्री कृष्ण के पग लगते ही यमुनाजी की धारा दो भागो मे विभक्त हो गई, जल कीलित सा रह गया और वसुदेव जी श्री कृष्ण को लिए हुए उसे पार करके गोकुल पहुंचे। परन्तु आप लोग कभी ऐसा सोच कर गुलाब सागर मे मत प्रवेश कर जाना कि हमे भी श्री कृष्ण के समान इसमे मार्ग मिल जायगा और पानी के दो हिस्से हो जावेंगे ? आप लोगो ने पुण्यवानी

ऐसी बाधी हुई नही है, इसलिए पानी से दूर ही रहना। सात वस्तुओ से दूर ही रहना चाहिए। वे कौन सी है ? तो कहा गया है कि—

नारी नागिन नाहरी नरपत नदी निवेड।
नग्न पुरुष साते नना-भलामानस मत छेड ॥

यदि अपना भला चाहो तो इन सात 'न-ना' को कभी मत छेडना। घर की जो अपनी स्त्री है उसे कभी मत छेडना, क्योकि यदि वह अपने से रूठ जाय या विरुद्ध हो जाय तो घर का सत्यानाश कर देती है। और धर्म से भ्रष्ट कर देती है। इसीलिए नीतिकार ने कहा है—

'सा हि मुग्धा विरुद्धा वा धर्माद् भ्रंशयते तराम्।'

यदि अपनी मुग्धा पत्नी अपने से विरुद्ध हो जाय और शत्रुता पर उतारु हो जाय तो धर्म से, धन से और प्राणो से भी भ्रष्ट कर देती है। यदि स्त्री का स्वभाव कुटिल है, तो समभाव रखो और उसके साथ जिस तरह बने, शान्ति के साथ जीवन-यापन करने का प्रयत्न करो। नागिन को भी नहीं छेडना चाहिए, अन्यथा वह काटे विना न रहेगी। इसी प्रकार नाहर, नरपति, अनल (अग्नि) और नग्न पुरुष को भी कभी नही छेडना चाहिए। इन सात नकारो से दूर ही रहना अच्छा है।

हा, तो श्री कृष्ण के चरण-स्पर्श होते ही यमुना जी की धारा के दो भाग हो गये और श्री वसुदेव जी सकुशल गोकुल पहुँचे और नन्द गोप को पालन-पोपण करने के लिए उन्हे सौप दिया। और उसके घर उसी समय जन्मी लडकी को लाकर देवकी को सौप दी। उन की कथा तो विस्तार के साथ पर्युपण के दिनो मे सुनने को मिलेगी। परन्तु आज जिनकी जन्म-जयन्ती हैं, वे श्री कृष्ण चन्द महाराज आप लोगो को क्या सन्देश दे गये है ? वे यह सन्देश दे गये है कि यह देश तुम्हारा है और तुम इस देश के हो। इस देश पर जो भी आपत्तिया आवे, तो तुम साहस के साथ उनको दूर करने का प्रयत्न करना, कभी अन्याय को सहना नही और निष्काम भाव से सदा देश, समाज और धर्म के कार्य मे सलग्न रहना। जो भार सिर पर आ पडे तो उससे घबडाना नही, किन्तु हिम्मत के साथ उसे वहन करना और अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना। आज का दिन हमे यह प्रेरणा देता है और कहता है कि आप लोगो को भी श्री कृष्ण महाराज का अनुकरण करना चाहिए। श्री कृष्ण के समय मे दुष्टो का सिरताज कस था, तो कृष्ण और कस दोनो की एक राशि थी। पर अल्प वय वाले होते हुए भी कृष्ण कस से

दवे नही, प्रत्युत उसको मार कर पृथ्वी का भार हलका किया और लोगो को असख्य यत्रणाओ से बचाया। इसी प्रकार राम और रावण की एक ही राशि थी, पर राम ने रावण का विध्वस किया और उसके आत्याचारो से लोगो को बचाया। आज के समय मे भी गवर्नमेन्ट और गान्धी, जवाहर और जिन्ना इनकी भी एक ही राशि थी, मगर गान्धी जी ने ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से भारत को मुक्त कराया और जवाहर ने जिन्ना को मात दी और भारत को स्वतत्र बनाया। अब अपने ऊपर जो कुप्रथाओ के रूप मे कस छाया हुआ है और लोगो को अपनी लपेट मे लेकर भारत की उत्तम सस्कृति को, उन्नत विचारो को और अच्छी मर्यादाओ को नष्ट कर रहा है और अनीति अत्याचार और भ्रष्टाचार को बढावा दे रहा है, उसे समाप्त करना है, यही सन्देश आज की कृष्ण जयन्ती हमे दे रही है।

आज जो ये भारत की उज्ज्वल मर्यादा और सस्कृति का लोप कर रहे है और भ्रष्टाचार बढा रहे हैं, ये कौन है ? किसके वशज है ? ये सब कस ही के वशज है और उसके ही साथी हैं। जैसे कृष्ण ने कस को मार पछाडा वैसे ही आप लोगो को भी न्याय पर दृढ होकर और अपने पैरो को मजबूत करके इस भ्रष्टाचार का उन्मूलन करना चाहिए और दिन पर दिन बढती हुई कुप्रथाओ का अन्त करने के लिए सकल्प लेकर कटिवद्ध होना चाहिए। आगे बता रहे हैं कि

वसुदेव यदुवशी रे देवकी महारानी,
उत्तमखान दान से प्रगटे थे शार्ङ्गपानी।

यह जयन्ती किस कृष्ण की है ? जो यदुवशी वसुदेव के लडके थे, देवकी के लाडले थे और रुक्मिणी के भर्तार थे, तथा सुभद्रा के भाई थे, जो कि अर्जुन को विवाही गई थी। वे कृष्ण कैसे थे ? अभी मुनि जी ने आपको सुनाया कि एक नकली कृष्ण बना और उस नकली कृष्ण ने भी टेक रख ली और इज्जत रखदी तो जो असली कृष्ण होगे वे क्या आपकी लाज नही रखेंगे ? अवश्य ही रखेगे। परन्तु कहा है कि असली मित्र तो तब मिले जब तू असली होय। भाई, असली मित्र तो वही मिलेगा, जब तू भी असली हो जायगा। जब आपमे असली कृष्ण के गुण आ जायेंगे, तो फिर कृष्ण आपसे दूर नही हैं। वह कृष्ण तो अपने पास ही है। परन्तु वे क्यो नही प्रकट होते ? क्योकि आप लोग उनका सच्चे दिल से ध्यान नही करते। यो ही ढोग से—पाखण्ड से उनका नाम लेते हैं। फिर वे क्यो आवें ?

एक सेठ जी दिसावर गये हुए थे। वहाँ उन्होने पूजी काफी कमा ली।

पुन उन्होने अपनी मातृभूमि पर जाने के विचार से अपना सारा धन इकट्ठा किया और बैलगाडियो मे भरकर ले जाने का निश्चय किया। कुछ बदमाश उठायीगीरे आदमियो ने पूँजी को इकट्ठा करते हुए देख लिया और भाप लिया कि सेठजी अब अपने देश को जाने वाले हैं। सेठजी भी उन बदमाशो की मशा को ताड गये तो उन्होने भी सोचा कि धन को साथ मे लेकर चलना ठीक नही है, अन्यथा ये बदमाश रास्ते मे धाडा डालकर सब छुडा लेंगे। अतएव उन्होने साहूकार के यहा सब रकम जमा करके उससे हुडी लिखा ली। आजकल तो चैक चलते हैं—बैंको के चैक। और लोग चैक के कपडे भी पहिनते है। क्यो भाई, चैक को याद करते हो न ? परन्तु आपके बडेरो के तो हुंडी थी। वह कितनी मजबूत होती थी कि यदि हुंडी खो जाय तो पैठ और पैठ खो जाय तो पर पैठ इस प्रकार पाच बातो से रकम मिलती थी। अब यदि बेंक का चैक फट गया तो क्या पैठ, परपैठ, मेजरनामा और पचनामा होगा ? लोग कहते है कि इसमे क्या है ? उन्हे पुरानी बाते अच्छी नही लगती। और हा भाइयो, आप लोगो को तो नयी बाते ही अच्छी लगती है।

वडका ऐसी चाले चाली धोती फाड़ सिलाई राली,
जूनो टुकडोरी भरली घाली टको एक नहीं लाग्यो।
सिरख - पथरणा नइचाल पनरा को जूतो लाग्यो,
वडका चाल्याचाल पूराणी चिणा और सिकाई धाणी,
कम खर्चे की यही निशानी।

अब तो चावो लाडू फीणिया देवा वारो साज रे,
चल चाल पुराणी जिणसूं होवेला थानं फायदो॥

कहिये, आप लोग अब अधिक होशियार हो, या आपके बडेरे अधिक होशियार थे ? छोटे-छोटे फटे हुए कपडो से पहले स्त्रिया रालियें बनाती थी। यदि धोती कही से फटी हुई होती तो उसके दो पाट करके गादी-तकिये की खोलिया सी लेती थी। परन्तु आज के लाला और बाबू लोग ऐसे शौकीन हैं कि उन्हे सिल्क और मर्सराइज के सुपरफाइन बढिया कपडे चाहिये। शूट-बूट के लिए टेरालीन और नाइलोन की कमीजें चाहिए। भले ही वे किसी भाव मे क्यो न मिलें ? और ये सब कपडे होते है हलके-फुलके। किसी काम के नही। जब सिरक पथरणे बनवाने पडते हैं जिसका खर्चा इस कमरतोड़ मँहगाई मे कितना पडता है सो तो आप नये बाबू ही जानते हैं।

पहिले होली, शीलसप्तमी और दिवाली आदि के त्योहारो पर कढावा बनता था। उस पर क्या करते थे कि खाजे, साकलिए, चरकी और मीठी बनाते थे। उसका नाम था कढावा। होली के बाद दिन बडे आते है तो दोपहरी मे भूख लगने लग जाती थी। तब घर जाकर साकलिया खाते और पानी पी लेते थे। घरो मे चना-फूली आदि भरे हुए रहते थे, वे भी थोडे से खा लेते थे तो पेचिस नही होता था, पेट दुखने का काम नही था। कम खर्चे वाला नशी की कहावत तब चरितार्थ होती थी। थोडे से खर्चे मे सारा घर खाता-पीता था। अब आजकल क्या है ? अधिकतर दुकानदार तो ठेले-खोमचे वालो से लेकर दुकान पर ही नाश्ता और दोपहरी करने लगे और बाबू लोग होटलो केन्टीनो और रैस्ट्राओ मे जाकर खाने-पीने लगे है। उन्हे अब घर के बाल-बच्चो की कोई चिन्ता नही है। जितना खर्चा अपने अकेले के ऊपर वे इन होटलो आदि मे करते हैं, उतने खर्चे मे तो घर के सब लोग ताजा और शुद्ध माल खाते। एक-एक बात कहा तक बतलाई जावे ? पहिले के लोग किफायतसारी से काम लेते थे, इसलिए उनके दिन अच्छी तरह निराकुलता के साथ निकलते थे। अब अधिक खर्चा बढा लिया है तो उसकी पूर्ति के लिए व्यापार मे अवैध उपायो से कमाई करते हैं और जो बाबू लोग आफिसो मे सरकारी नौकरी पर हैं, वे रिश्वतखोर बनकर अपना गुजारा चलाते हैं। आज औरतो का भी कितना खर्चा बढ गया है, जिसकी कोई सीमा ही नही रही हैं। परन्तु आज ये चीजें पसन्द नही आती हैं। परन्तु जो रोग बढाने वाली हैं, वे ही चीजे पसन्द आती है। आज फैशन की जो नयी-नयी चीजें निकली हैं, उनके बिना अब काम नही चलता। सारा समय अब ऐश-आराम और शृ गार मे ही चला जाता है। क्रीम, पाउडर और लिपस्टिक तो अब होना ही चाहिए। इनके बिना तो उनकी गणना असभ्य स्त्रियो मे होने लगी हैं। इस प्रकार न जाने कितने जजाल आज के स्त्री-पुरुषो ने अपने लिए बना लिए हैं। इनही मे उलझे हुए ये मनुष्यभव को कोटि-कोटि रुपयो से भी अति दुर्लभ एक-एक घडी को व्यर्थ खो रहे हैं। हम कहा तक और कौन-कौन सी बात आप लोगो से कहे। मेरा कहने का आशय यही है कि आप लोग अब इस ऊपरी टीप-टाप को छोडकर यथार्थ पर आवे और आत्म-हित की ओर उन्मुख होवे।

हा, तो मैं हुडी के ऊपर कह रहा था कि यह चाल पुरानी है और चैक यह नयी चाल है। साहूकार से हुडी लेकर सेठ ने जेब मे डालनी और अपनी मातृभूमि को रवाना हुए। पहिले आजकल जैसे न रेल मोटरें थी और न

आज जैसे यातायात के मार्ग एव अन्य साधन सुलभ थे। अत वह सेठ जगल के बीच मे होकर के अपने घर को चला। वे बदमास लोग पहिले से ही उसी मार्ग पर आकर के किसी स्थान पर चारो दिशाओ मे छिपकर बैठ गये। सेठ जी हाथ मे छतरी लिए और राह-खर्च के लिए कुछ रुपये अटी मे लगाये हुए निर्भयता पूर्वक जा रहे थे। कुछ दूर जाने पर डूगर-टेकरी और घनी झाडिया आ गई। वे बदमाश यही पर सेठ जी के आने की राह देख रहे थे। जैसे ही एक को सेठ जी आते दिखाई दिये कि उसने आवाज लगाई--कृष्ण, कृष्ण! इसका अभिप्राय था कि अपनी शिकार आ रही है। तब दूसरे ने आवाज दी --दामोदर-दामोदर। इसका अभिप्राय था कि दाम-पूँजी को रखने वाला जा रहा है। तीसरे ने आवाज दी --हरे हर, हरे हर। अर्थात् बैठे क्या देखते हो, उसके ऊपर टूट पडो और उसके पास जो कुछ हो, उसे हर लो-छीन लो। इन तीन आवाजो को सुनकर सेठ उन लोगो के षड्यन्त्र को समझ गया। उसने सोचा कि एक टिप्पा तो मैं भी रख दू? अत उन लोगो के आने के पूर्व ही सेठजी ने भी जोर से आवाज लगाई --नारायण-नारायण। अर्थात् तुम लोग खुशी से आजाओ, यहा पर कुछ भी नही है। अब वे सब चोर आगये और बोले --सेठ जी, जो कुछ पास हो, चुपचाप निकाल करके रख दो। सेठ ने फिर वे ही शब्द दोहराये - नारायण, नारायण। अर्थात् मेरे पास कुछ नही है। वे लोग बोले --तुमने जो सारी पूजी इकट्ठी की थी, वह कहा है? सेठ बोला---मुझे तुम्हारे कृष्ण, हरे हर और दामोदर की मालाओ का पता लग गया था। भाई, जैसे तुम भगवान के भक्त हो, वैसे ही मे भी भगवान का भक्त बन गया हू और इसीलिए नारायण के नाम की माला जपता जा रहा हू।

भाइयो, यदि ऐसे कृष्ण के भक्त बने तो इसमे आत्मवचना के सिवाय और कुछ नही है। बडप्पन तो तभी है, जब उन कृष्णचन्द्रजी जैसे काम करके दिखाओ। कृष्णजी ने क्या-क्या काम किए? सुनो---

करी धर्म दलाली, मनलाई मनमोहन कृष्ण मुरारी ने।
जिन क्षायक समकित को, पाई मनमोहन कृष्ण मुरारी ने।

भाई, उस कृष्ण के आज भी लोग गुण क्यो गाते हैं? क्योकि उन्होने धर्म की दलाली की। और जोरो से की। उनकी दलाली से एक दो नही, अनेको तिरे है। उन्होने कभी सामायिक-सवर नही किया, व्रत-प्रत्याख्यान नही किए। परन्तु धर्म की दलाली ऐसी की कि तीर्थंकर गोत्र कर्म को बाध लिया। अब भविष्यत्-कालीन-चौबीसी मे श्री कृष्णचन्द्र महाराज जगतारक

बारहवें तीर्थंकर बनेंगे। भाई, दलाली करना भी कम बात नही है। आज जन्माष्टमी है तो आप भी धर्म की दलाली करो और दलाली के लिए प्रयत्न करो। कहा है कि—

तप विन सानिध नहीं हुवे-देव महासुखदाय
तप विन लब्धि न उपजे-पाप प्रलय नहीं थाय।

भाइयो, तपस्या का बडा आनन्द है। तपस्या के बिना समाधि उपन्न नही होती हैं और देवता नही आते हैं। आत्मा की ज्योति तप मे ही बढती है। कृष्णचन्द्रजी नवम वासुदेव हुए। वे कैसे हुए ? पूर्वभव मे उन्होने मास खमण की तपस्यायें की, तब वासुदेव बने और नारायण कहलाए। यदि आप भी नर से नारायण बनना चाहते हो तो तपस्या की नवरगी माड दो। आप लोग जोधपुर के सरदार हैं, बडे बाके विहारी हैं। भाई, बाँके विहारी भी कृष्णजी का नाम था। आप लोग भी यदि अपनी पुण्यवानी चाहते हैं, तो इक्यासी व्यक्ति नौ नौ करने वाले हो जावें, तो नवरगी हो जाती है। इस कृष्णाष्टमी से प्रेरणा लेकर आप लोग भी नवरगी की तपस्या के लिए कटिबद्ध हो जावें तो आपको भी नारायण बनते देर नही लगेगी।

४
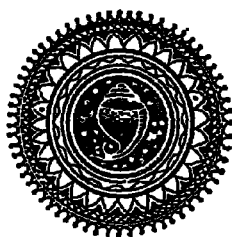
आत्मा और शरीर (भेदविज्ञान)

पंचमहव्वयतुंगा तक्कालिय स-परसमय सुदधारा।
णाणा गुणगण भरिया आयरिया मम पसीदतु॥

भाइयो, भगवान् भोले होते है, अथवा होशियार? यदि भगवान् भोले है, तो उनमे भगवानपना कैसे सम्भव है? फिर तो वे साधारण मनुष्य से भी गये बीते सिद्ध होते है। इसलिए भोले नही, किन्तु होशियार है। आज-कल होशियार शब्द का भी दुरुपयोग होने लगा है और उसका प्रयोग चालाक या दगाबाज के लिए करने लगे हैं। परन्तु वास्तव मे होशियार शब्द का अर्थ है—चतुर, कुशल और सर्ववेत्ता। यत भगवान् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं, अत वे भी सच्चे अर्थ मे पूरे होशियार होते है। किन्तु ससार के प्राणी भोले हैं। भोले शब्द का अर्थ अजानकार या अज्ञानी होता है। संसार के सभी प्राणी अज्ञानी है, अत उन्हे भोले ही कहना चाहिए। जो अपनी वस्तु को छोडकर पर—वस्तु मे आनन्द माने, वह भोला ही है, उसे अज्ञानी के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। किन्तु जो अपनी वस्तु मे आनन्द माने। वह कहलाता है—समझदार, होशियार और ज्ञानवान्। आप लोग स्वय विचारिये कि एक तो अपने घर के कपडे और एक माग कर लाये दूसरो के वस्त्र, एक अपने घर का आभूषण और एक पराया मागा हुआ आभूषण इन दोनो मे से पहिनने का आनन्द किसमे है? एक अपना घर और एक पराया किराये पर लिया हुआ घर, इन दोनो मे से रहने का आनन्द किसमे है? एक लोकोक्ति है कि अपना घर सो हग भर, पराया घर सो थूकने का डर। अपने घर मे मनुष्य कही पर भी टट्टी-पेशाब कर दे, किसी का कुछ भी भय नही है। किन्तु पराये घर मे यदि कही

थूकने का अवसर आ जाय, तो उसका भी डर बना रहता है। एक अपना औरस लडका है और एक गोदी लिया पराया लडका है। बताओ—सच्चे पुत्र का आनन्द किसमे है। आपको मानना पडेगा कि जो आनन्द और सुख-शान्ति अपनी वस्तु मे है, वह पराई वस्तु के उपयोग मे कदापि नही मिल सकती है। घर का कपडा मोटा-ऋाडा चाहे कैसा भी हो, उसके पहिनने मे जो आनन्द है, वह दूसरे के मागकर पहिने हुए वढिया वस्त्र मे भी नही है, क्योंकि उन्हे पहिनते हुए सदा यही भय बना रहेगा कि कही यह विगड न जाय, अन्यथा उपालम्भ मिलेगा ? पर अपने कपडे पहिनने मे किसी का कुछ भी भय नहीं है। क्योकि वह अपना है। यही बात पराये और अपने आभूषण, मकान और लडके के विषय मे भी जान लेनी चाहिए। अरे अधिक क्या कहे—अपनी और परायी स्त्री के विषय मे भी यही बात लागू होती है। परायी स्त्री के सेवन करने वाले व्यक्ति का चित्त सदा धक्-धक् रहा करता है कि कही कोई देख तो नही ले, अन्यथा मेरा माजना बिगाड देगा। पर क्या यह भय अपनी स्त्री को भोगते हुए होता है। इसी बात को लक्ष्य करके एक कवि ने कहा है कि—

सदा सुहागिन है सखे, निज रोटी निज दार।
दाम लगें दुख ऊपजे, पूरी अरु परनार॥

यहां पर दार शब्द श्लेषात्मक है। सस्कृत मे दार शब्द स्त्री का वाचक है। और व्यवहार मे दार शब्द दाल का वाचक है। कविता मे र और ल का व्यत्यय होता है, अर्थात् 'र' के स्थान पर 'ल' का और 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग ठीक माना जाता है। कवि कहता है कि हे सखे, हे मित्र, अपने घर की दाल-रोटी और अपनी दार (स्त्री) सदा ही सौभाग्यवती है। उसमे जो आनन्द है, वह पराये घर की या बाजार की पूडियाँ-कचौड़ियाँ खाने मे नही है, क्योकि उनके खाने पर पहिले तो दाम खर्च होते हैं फिर शरीर मे उदर-शूल, पेचिस आदि का कष्ट भी उत्पन्न होता है। इसी प्रकार परायी स्त्री के सेवन का हाल है। उसमे भर-पूर पैसा भी देना पडेगा, शरीर मे भी गर्मी-सुजाख की बीमारी लग जायगी और धर्म भी जायगा। और यदि कही भेद खुल गया तो सारा महाजना ही चला जायगा। इसीलिये कहा गया है कि—

पर-नारी पैनी छुरी, पाँच ठोड से खाय।
धन छीजे यौवन हरे, पत पंचो मे जाय।
जीवत चूटे कालजो मूंआ नरक ले जाय॥

परायी स्त्री के सेवन मे इतने नुकसान हैं। यदि जानबूझ कर दुख मोल नही लेना है तो भूलकर भी परायी स्त्री के ऊपर हाथ मत डालना। भाई, परायी सभी वस्तुए बुरी ही होती हैं। पराये वस्त्र और आभूषण पहिनना दीन-हीनता के सूचक एव सदा भयजनक है। पराया पुत्र गोद लेकर यदि कोई बाप बनना चाहे तो कहा सम्भव है। उसमे आपके खानदान के सस्कार प्रयत्न करने पर भी नही आयेंगे।

हा, तो जो विषय प्रारम्भ किया है, उसका भाव यही है कि लौकिक दृष्टि से जैसे पराये वस्त्र, आभूषण, मकान, स्त्री, और पुत्रादि मे आनन्द नही है, वैसे ही पारमार्थिक दृष्टि से एक अपने शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप आत्मा के सिवाय इन सभी बाहिरी सासारिक वस्तुओ मे भी आनन्द नही है, क्योंकि यथार्थ मे वे पर हैं। पर वस्तु की प्राप्ति प्रथम तो सहज मे नही होती है, किन्तु भाग्योदय से होती है और भाग्य का उदय कर्माधीन है। यदि पूर्वजन्म मे शुभ कर्म किये हैं तो ये धन—सम्पदादि बाहरी वस्तुए प्राप्त होगी, अन्यथा नही। दूसरे इनकी भाग्योदय से कदाचित् प्राप्ति भी हो जाय,तो वे वस्तुए सदा पास मे रहने वाली नही हैं। एक न एक दिन उनका वियोग अवश्यम्भावी है, जब अपनी सुन्दरता और जवानी भी सदा नही बनी रह सकती है, तब अपने से सर्वथा भिन्न धन-सम्पत्ति और पुत्र-स्त्री आदिक अपने पास कैसे बने रहेगे ? नही रह सकते है। अतः ससार के सभी पदार्थ और उनकी प्राप्ति से होनेवाला सुख भी सान्त है, स्थायी नही है। फिर ये सासारिक सुख सदा एकरूप मे नही बने रहते हैं। जैसे धूप के पीछे छाया और दिन के पीछे अन्धकार चला करता है उसी प्रकार सुखके पीछे दुःख भी सदा लगा रहता है।

ससार मे सर्व-सुखी कोई नही मिलेगा। सभी को किसी न किसी प्रकार का दुख लगा ही रहेगा। इतने सबके बाद भी परवस्तु मे आनन्द मानना कर्म का बीज है, नवीन कर्म-सचय का मूल कारण है। इसीलिए जो ज्ञानी और होशियार होते हैं, वे इन पर वस्तुओ मे आनन्द न मान करके अपनी वस्तु मे—आत्मस्वरूप की उपलब्धि मे ही आनन्द मानते हैं। इसी बात को ध्यान मे रखकर भगवान की स्तुति करते हुए प० दौलतराम जी कहते हैं कि—

> सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रस लीन।
> सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि-रज-रहस-विहीन॥

हे भगवन्, यद्यपि आप ससार के सर्व ज्ञेय पदार्थों के ज्ञायक हैं, उनको

प्रत्यक्ष देखते और जानते हैं, तथापि उनमे नही रम करके आप अपने आत्मिक आनन्द-रस मे लीन हैं, आत्मीय अक्षय, अव्यावाध और अनन्त सुखामृत पान करने मे निमग्न हैं, सर्व पर वस्तुओ के ज्ञाता होने पर भी कभी उनके पाने की इच्छा नही की। क्योकि आप जानते हैं कि उनसे कभी स्थायी सुख नही मिलता है।

यह निजानन्द रस कव प्राप्त होता है ? जबकि यह मोहरूपी अरि, ज्ञानावरण-दर्शनाचरण रूपी रज और अन्तराय रूप रहस्य से विहीन हो जाता है, अर्थात् चार घन-घातिया कर्मो का क्षय कर देता है, तभी उसे अनन्त ज्ञान, आनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य की प्राप्ति होती है, तभी वे अरहन्त परमात्मा और जिनेन्द्र कहलाते हैं। ऐसे जिनेन्द्र देव सदा जयवन्त रहे।

आत्मा ही परमात्मा

आप पूछेंगे कि ऐसा परमात्मा कौन बनता है। इसका उत्तर यह है कि 'जो अप्पा सो परमप्पा' यह जो हमारी आत्मा है, वही परमात्मा बनती है। वह कव बनती है ? जबकि वह परम भाव मे स्थित हो, परम शैलेशी अवस्था को धारण करे और भीतर मे शुक्लध्यान को प्रकट करके घनघाती कर्मो का नाश करदे, तव यही आत्मा परमात्मा वन जाती है। यह शुक्ल ध्यान किसके और कव प्रकट होता है ? जब यह जीव आर्त्त और रौद्रध्यानो का सर्वथा परित्याग कर देता है, मन में किसी भी प्रकार का राग द्वेपरूप काला दाग नही रहता है, वचनो मे निर्मलता आ जाती है और काया अतिपवित्र हो जाती है, तीनो की चचलता मिटकर स्थिरता आ जाती है, सज्जनता, सरलता और सहनशीलता आ जाती है, तव शुद्ध समाधिरूप शुक्ल ध्यान प्रकट होता है। जो शुद्ध समाधि मे मग्न हैं, उनका ध्यान पर-पदार्थों की ओर क्यो जायेगा ? उन्हे आत्मस्वरूप के सिवाय सभी पर वस्तुए आकुलतामय एव दु खदायक ही प्रतीत होती हैं। इसलिए वे अपने मन को अन्यत्र जाने नही देते हैं। जिसका मन अपनी वस्तु को हीन मानता है, उसका ही मन अन्य वस्तु पर जाता है। जो यह समझता है कि मेरी वस्तु सर्वोपरि है, उसे पर-वस्तु को देखने की इच्छा ही क्यो होगी ? मनुष्य अपने घरका राजा होता है। उसका जो मूल्य या महत्त्व निजके घर मे है, वह पर के घर मे कहा सभव है ? आजकल तो राजाओ के राज्य समाप्त हो गये हैं। किन्तु जब शासन की वागडोर उनके हाथ मे थी, उस समय जोधपुर के महाराजा का महत्त्व एव मान-सम्मान जोधपुर रियासत मे था, वह अन्यत्र नही था। जिस मनस्वी व्यक्ति का जहाँ पर मान-सम्मान होता है, वह वही रहता है और

जहाँ नही होता, वह वहा नही जाता-आता है। तो परमात्मा वही बनता है जो कि अपनी आत्मा मे ही विचरता है। आत्मा का आत्म-स्वभाव मे स्थिर होना ही परम ध्यान है। जैसा कि आगम मे कहा है—

'अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाण।'

इस परम ध्यान का ही दूसरा नाम शुक्ल ध्यान है। हम आजतक अपने स्वरूप मे स्थिर हुए ही नही और पर पदार्थों मे—पराये घरो मे फिरते हुए हमने अनन्तकाल व्यतीत कर दिया और अनेक नामो को धारण करते भ्रमते रहे। अध्यात्मकवि प० दौलतराम जी कहते हैं—

हम तो कबहुँ न निज घर आये।
पर-घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये। टेक।
पर-पद निज-पद मानि मगन ह्वै, पर-परणति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख-कन्द मनोहर, चेतन-भाव न भाये॥
नर पशु देव नरक निज जान्यो, पर्ययबुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम-गुण नहिं गाये॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
दौलत तजो अजहू विषयनिको, सतगुरु वचन सुनाये॥

पर घर फिरते हुए बहुत दिन बीत गये, हमने अनेक नामो को धारण किया, पर-पद को ही निजपद मानकरके हम उसी मे मगन रहे और पर-वस्तु की परिणति से ही लिपटते रहे। किन्तु हमारा जो शुद्ध, बुद्ध और मनोहर सुखो का स्कन्ध यह चेतन भाव है, उसकी कभी भावना नही की। पर्याय बुद्धि बनकर पशु पर्याय मे अपने को पशु माना, मनुष्य पर्याय पाने पर अपने को मनुष्य माना, और देव-नरक भव पाने पर अपने को देव और नारक माना। किन्तु हमारी आत्मा के जो निर्मल, अखण्ड, अनुपम अविनाशी गुण हैं, उनका ज्ञान कभी नही किया। इस प्रकार हे चेतनराम, आजतक हमारी भारी भूले हुई है। अब उनका पश्चात्ताप करने से क्या काम बनेगा। सद्‌गुरु पुकार-पुकार के तेरे को सुना रहे है कि अब भी तू इन इन्द्रियो के विषयो को तज और आत्मगुणो को भज, तो तेरा ससार से उद्धार हो जायगा।

शरीर का आभ्यंतर रूप

अरे, वर्तमान मे तू जिस शरीर रूपी मकान मे निवास कर रहा है, जरा उसके भीतरी स्वरूप की ओर भी तो दृष्टिपात कर और देख कि

उसके भीतर क्या-क्या भरा है ? इसके भीतर तो रक्त, राध, मास, मज्जा और मल-मूत्रादि ऐसी-ऐसी वस्तुए भरी है कि जिनके नाम लेने मात्र से घृणा पैदा होती है, फिर उनको देखना तो बहुत दूर है। फिर भी यह अज्ञानी प्राणी उसी देह पर रीझ रहा है। प० दौलतराम जी भव्य जीवो को सम्बोधित करते हुए कहते है—

मत कीज्यो जी यारी,
घिन गेह देह जड जान के मत कीज्यो जी यारी ॥टेक॥
मात तात रज वीरज सो यह उपजी मल फुलवारी।
अस्थि माल पल नसाजाल की, लाल लाल जल क्यारी ॥ मत० ॥
कर्म कुरग थली पुतली यह, मूत्र-पुरीष भडारी।
चर्म मढी रिपुकर्म घडी धन-धर्म चुरावन हारी ॥ मत० ॥
जे जे पावन वस्तु जगत मे, ते इन सर्व विगारी।
स्वेद मेद कफ क्लेदमयी वहु, मद गद व्याल पिटारी ॥ मत० ॥
जा सयोग रोग भव तौलो जा वियोग शिवकारी।
बुध तासो न ममत्व करें यह, मूढ मतिन को प्यारी ॥ मत० ॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यान कर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥ मत० ॥
सुर-धनु शरद-जलद जल-बुद्‌बुद, त्यो झट विनशन हारी।
यातें भिन्न जान निज चेतन, दौल होहु शम धारी ॥ मत० ॥

कवि कहते हैं कि हे भाइयो, इस शरीर को जड़ और घिनावनी वस्तुओ का घर जान करके इससे प्रीति मत करो। पहिले तो यह माता-पिता के रज-वीर्य के सयोग से उपजी है। फिर मल की फुलवाडी है, हड्डी मास, नसा-जाल आदि से वनी है, लाल रक्त रूपी जल की क्यारी है। कर्मरूप कुरग की थली है और ऊपर से पुतली सी दिखने पर भी यही काया मल-मूत्र की भडार है। ऊपर से चाम से मढी है, धर्मरूपी धन को चुराने वाली है। ससार मे केशर, चन्दन, आदि जितनी भी पवित्र वस्तुए हैं, उन सबको विगाड करके अपवित्र करने वाली है। इसके भीतर स्वेद (पसीना) मेद, कफ आदि से युक्त है, रोग रूपी सर्पो की पिटारी है। इस शरीर का जब तक आत्मा के साथ सयोग रहेगा, तब तक यह भव रोग बना रहेगा। जब इसका वियोग होगा तभी शिवपद मिल सकेगा। इसी कारण ज्ञानी जन इसमे ममत्व भाव नही रखते हैं। किन्तु मूढमतियो को तो यह अति प्यारी लगती है। जिन जीवो ने इस शरीर का पोषण किया, वे सदोषी रहे और

उन्होने इसके निमित्त से भारी दुःख पाये। किन्तु जिन पुरुषो ने तप ठान करके ध्यान रूपी अग्नि से इसे सुखाया, उन्ही पुरुषो ने मुक्ति-रमणी को परणा-विवाहा। यह देह इन्द्र धनुष, शारद के बादल और जल के बबूलो के समान झट विनशनेवाली है। इसलिए दौलतराम जी कहते है कि हे चेतन—आत्माराम, तू अपने को इस देह से भिन्न जानकर राग-द्वेष छोडके शमभाव का धारक बन।

ज्ञानी पुरुष अपने आपको सम्बोधन करते हुए कहता है कि हे आत्मन्, इस मल-मूत्र भरे शरीर मे रहते हुए भी तेरा तो स्वरूप स्वच्छ और सुन्दर है, तेरा निज का घर तो पवित्र है। तेरे लिए जैसा निवासस्थान चाहिए, वह तुझे प्राप्त है। फिर क्यो उस अजर, अमर, सत्, चित् और आनन्द को छोड करके इस जरा, मरण, जन्म, रोगमय अशुद्ध, अचेतन और दुःखमय शरीर को अपना निवास मान रहा है? आदि सम्राट् भरत महाराज सोलह शृगार करके अपने आदर्श-भवन (शीशमहल) मे गये। उस दर्पण-मय भवन मे जाते ही उनके हाथ की अन्तिम अगुली से हीरा की मुद्रिका निकल कर भूमि पर गिर पडी। उन्होने दर्पण मे देखा कि अगुली श्री हीन-खराब-लगने लगी है तो झट उठाकर पहिन ली और दर्पण मे देखा तो वह पहिले के समान ही शोभा युक्त दिखने लगी। उनके वैराग्य का यह निमित्त बन गया। भरत नरेश प्रति दिन इस शीशमहल मे आते थे, वह ज्यों का त्यो ही है, और भरत नरेश भी वे ही वे है। परन्तु अभी तक निमित्त नही बना था। किन्तु आज अवसर आगया तो अगुली मे मुद्रिका गिर गई। यद्यपि उन्होने उसे वापिस पहिन ली, तथापि उनके मन मे दूसरी ही धारा बहने लगी और विचार करने लगे कि यह अगुली का रूप-सौन्दर्य नही है, बल्कि मुद्रिका का है। यह शरीर-सौन्दर्य भी मेरा नही है। किन्तु इन पहिने हुए आभूषणो का है और इन्हे पहिन कर मैं अपना रूप-सौन्दर्य संसार को दिखला रहा हू। पर यह मेरा कहा है? यह तो पर-पुद्गलो का है। उन्होने मुद्रिका निकाल दी और फिर एक-एक करके सारे आभूषण उतार दिये। जो चमक-दमक शरीर मे पहिले थी, वह अब नही रही। तभी उनके हृदय मे यह भाव जागृत हुआ कि अरे मेरा-मेरे आत्मा का तो रूप दूसरा ही है, यह शारीरिक रूप मेरा नही है। अब उन्होने जो वस्त्र पहिन रखे थे, उन्हें भी उतार दिया और दर्पण मे अपना नग्न रूप देखने लगे। पुन यह भाव प्रकट हुआ कि यह रूप भी मेरा नहीं है, यह तो शरीर का रूप है। तेरा रूप तो निराला ही है। तू उसे देख कि तेरा असली रूप क्या है? अब वे उसे देखने के लिए उद्यत

हुए। बैठे बैठे ही भगवान का वेग बढा और भाव ऊचे चढ़े। जैसे मूसलाधार वर्षा वरसे और तालाव मे नहीं समाये तो फिर वह वाहर निकलता है, उसी प्रकार भरत-नरेश के चिन्तन का वेग वढा, ध्यान का प्रवाह हृदय मे हिलोरें ले-लेकर वाहर उछलने लगा। इस अवस्था का वर्णन करते हुए कविवर प० बनारसीदास जी कहते हैं कि—

ज्ञान उदय जिनके घट अन्तर ज्योति जगी मति होत न मैली,
बाहिर दृष्टि मिटी जिनके हिय आतम ध्यान कला विधि फैली।
जे जड़ चेतन भिन्न लखें सो विवेक लिए परखे गुण थैली,
ते जग मे परमारथ जानि गहे रुचि मानि अध्यातम शैली॥

उनके घट में यह भेद-विज्ञान प्रकट हुआ कि हे आत्मन्, तेरा असली रूप क्या है और तू कैसा है, यह मुझे देखना है। यह विचार आते ही उनके हृदय में एकदम आत्मज्योति प्रकट हो गई। जिसके वह आत्मज्योति जग जाती है, उसके अभी तक जो वाहिर की ओर के भाव थे कि मैं इन बहुमूल्य वस्त्रो को पहिनू, इन सुन्दर आभूषणो को धारण करू, ये सब भाव मिट जाते हैं। तब आत्मा के ज्ञान की कला बढती हैं और आत्म-स्वरूप के आनन्द का अनुभव करने की ओर उसका ध्यान वढता है। भरत महाराज की भी ज्ञानकला उत्तरोत्तर वढने लगी और अब उन्होने जड शरीर और अपने चैतन्य स्वरूप को भिन्न-भिन्न समझ लिया। जैसे दही का विलोवण करने वाला व्यक्ति दही मे मथानी डाल करके दही का मन्थन करता है और ज्यो-ज्यो मन्थन का वेग वढता है, त्यो त्यो उसके भीतर छिपा हुआ मक्खन ऊपर आने लगता है। पुन वह गरम पानी उसमे डाल करके और भी झटके दे-देकर दही को विलोता है और मन्थन का वेग और भी तेज करता है तो दही मे का सारा मक्खन ऊपर आ जाता है और वह हाथ डाल कर फिर मन्थन करता है और शेप रहा मक्खन ऊपर आता है और वह बाहर निकाल लेता है। इस प्रकार दो-तीन वार मे दही के भीतर छिपे हुए सारे मक्खन को वाहिर निकाल लेता है। इस प्रक्रिया से दही का मक्खन अलग निकल आता है और छाछ अलग हो जाती है। इसी प्रकार भरत महाराज के ज्ञानकला का उद्योत होते ही उनके विचारो का मन्थन वढा और उन्होंने अनादि काल से मिले चले आ रहे जड और चेतन को अलग-अलग कर दिया। अभी तक जो पर रूप पर दृष्टि थी, वह आत्मस्वरूप की ओर गई। पुन जैसे मक्खन निकालने वाला सोचता है कि इस निकले हुए मक्खन मे भी कुछ जल का अश शेप है, तो उसे भी दूर करने के लिए वह जैसे अग्नि

पर रखकर उसे तपाता है, अग्नि के तेज से उसमे शेष रहा सारा जल जल जाता है और शुद्ध घी रह जाता है। उसी प्रकार जड से चेतन को अलग करने के पश्चात् भरत महाराज ने उसे प्रज्वलित ध्यान रूपी अग्नि पर चढाया और कर्म-जनित जो राग-द्वेषादि रूप विभाव उस चेतन मे लग रहे थे उन्हे भी उन्होने अपनी ध्यानाग्नि से भस्म कर दिया। अब उनको अपने शुद्ध आत्म स्वरूप के दर्शन होने लगे। जिन व्यक्तियो मे ऐसी दशा जब प्रकट हो जाती है, तब वे भी भरत के समान आत्म स्वरूप का साक्षात्कार करने लगते है। भाई, ऐसी दशा मे जिस दिन आत्मा पहुँचती है, उस दिन अपने स्वरूप की पहिचान हो जाती है कि मेरा शुद्ध स्वरूप यह है। कहा भी है कि—

"निर्दोष आनन्द निर्दोष सुख लोग मे त्याथी मलें,
जे दिव्य शक्तिमान जेथी-जजरेथी नीकले।"

वह निर्दोप आनन्द और सुख जहाँ से मिले, वही से लेलो, यह विचार नही करना चाहिये कि यह व्यक्ति कैसा है और मैं इससे कैसे लू ? नहीं, वह आत्म स्वरूप मे अवस्थित है, उससे यह गुण ले ही लेना चाहिए। भाई, कीचड मे या अशुचि स्थान पर पडे हुए सोने को कौन नही उठता है ? इसीलिए नीतिकार कहते है कि—

उत्तम विद्या लीजिए, यदपि नीच पै होय।
पड्यो अपावन ठौर पै, कंचन तजै न कोय॥

भाइयो, जिस प्रकार दही का विलोवन वाला अपने दोनो पैरो पर विना किसी सहारे के खडा होता है, हाथ मे नेतरा पकडता है और मन्थानी से दही का मन्थन करता है, तो मन्थन करते-करते उसके सारे शरीर से पसीना छूटने लगता है, तब दही से मक्खन निकलता है। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप के अन्वेपक को अपने सहारे स्थित होकर के विचार-मन्थन रूप ध्यान के द्वारा आत्म-मन्थन करना पडता है और शरीर का पसीना बहाते हुए शरीर शोपण करना पडता है, तब कही जाकर मक्खन घृतरूप शुद्ध आत्म-स्वरूप हस्तगत होता है।

भरत-नरेश को यह आत्म-स्वरूप हस्तगत होते ही उन्होंने पहिले अपने वस्त्राभूपण उतारे। फिर उनका ध्यान अपने शरीर पर गया तो विचारने लगे—

विपै चाम चादर मढ़ी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत मे और नहीं घिन-गेह॥

भाइयो, यह इतने मलिन पदार्थों से बना और भरा हुआ शरीर किससे अच्छा लगता है ? इस चमडी रूपी ऊपरी चादर से सुन्दर दिखाई देता है। फिर यह हाडो का पीजरा है। इसमे ससार भर की सभी घृणित वस्तुएँ भरी हुई हैं। अरे, आप भगी को गन्दा और नीचा मानते हैं। परन्तु जो घृणित वस्तुए अपने शरीर मे भरी हुई हैं, भगी के भी घर मे नही मिलेंगी। फिर उसे आप नीच, अछूत और घृणित कैसे मान रहे हैं ? इतनी घृणित वस्तुओ को धारण करने वाले अपने आपको तो आप ऊचा मानें और उन घृणित वस्तुओं को दूर कर स्वच्छता करने वाले को नीचा मानें यह कहा का न्याय है। कैसा ज्ञान है ? यह तो महान् अज्ञान और अन्याय है। इस प्रकार शरीर के स्वरूप का चिन्तन करते हुए भरत महाराज और भी गहराई मे गये और विचारने लगे कि अहो, मेरा जो रूप है, उसे दुनिया के लोग देख नही सकते। और जिसे वे देखते है, वह मेरा स्वरूप नही है। तथा मुझे स्वय जो ये शरीरादि रूपी पदार्थ दिखाई देते हैं, वे तो जड होने से जानते नही है, और जो जानता है, वह इन चर्म चक्षुओ से दिखाई नही देता है। अत मैं किससे बोलू और किससे राग-द्वेष करू ?

भरत महाराज विचारते हैं कि न मुझ मे रूप है, न रस है, न गन्ध है और न स्पर्श है, न सघनन है और सस्थान हैं। ये तो सव इस जड पुद्गल के रूप हैं—

तलासे कहां,उसे ढू ढें,वह तो सवसे निराला है ॥ टेक ॥
फूलो के बीच वोही है कि खुसबू बीच वोही है।
नही खुशबो नहीं फूलो वो तो सवसे निराला है।

अरे, तू कैसा पागल है जो यह मान रहा है कि भगवान मन्दिर मे हैं, मठ मे है, मस्जिद मे हैं, गिरजाघर मे हैं और अमुक स्थान पर हैं। तू क्यो उसकी खोज मे इधर-उधर भटक रहा है। वह इधर-उधर किसी स्थान पर या किसी मूर्ति-पत्थर मे जाकर के नही वसा है। वह न फूलो मे है और न उसकी सुगन्ध मे है। दूरदर्शक या सूक्ष्मदर्शक यत्र भी लेजा करके यदि तू उसे ढूढे तो भी वह कही नही दिखाई देगा। वह न हाट मे है न बाजार मे है, न दुकान मे है और न माल मे है, न बच्चे मे है और न बूढे मे है, न रोगी मे है और न निरोगी मे है। न योग मे है, न भोग मे है। वह तुझसे मिलता नही और तू उससे मिलता नही। तेरा उससे कोई सम्वन्ध नही है। वस, तू इस तेरे-मेरे के पचडे को छोड दे।

परबा पानी में पच रहा जे नर मत बतहीन ।
ज्ञानवन्त निरपक्ष रहै सकल मत पर चीन ।।

अरे, यह मेरी बात सच्ची, मेरा धर्म सच्चा, यह मेरा तत्त्व सच्चा और तेरा तत्त्व झूठा है, ऐसा जो पक्षपात है, वह मतो का ताला लग रहा है। जिससे जैसा पकडा दिया, उसको ही तू पकड बैठा है। और 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' जो बाबा ने कहा है, वह सत्य है, प्रमाणभूत है, ऐसा मान लिया है। यह पहिले विचारना चाहिए कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। जिस वस्तु को पाने के उद्देश्य से मैं जा रहा हू, वह वस्तु मुझे मिली नही है, वह मुझे ढूँढनी है। ज्ञानवन्त पुरुष तो सदा निष्पक्ष रहता है। वह सभी मतमतान्तरो को देखता है, उनके ग्रन्थो को पढता है, परन्तु सत्यान्वेषी रहता हुआ भी वह निष्पक्ष ही रहता है। वह अपने मत के समान सर्व मतो को जानता है और किस मत मे किस बात को महत्त्व दिया गया है, इस बात को समझता है, फिर भी उसकी किसी मत विशेष के लिए पक्षपात या आग्रह विशेष नही होता है। इस दृष्टि से वह मुसलमान भी है, ईसाई भी है, जैन भी है, अजैन भी है, सबमे है और किसी मे भी नही है। तुम कहो उसमे भी है और न कहो उसमे भी है। परन्तु—

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।
सेवे सत्-गुरु के चरण, सो पावे साक्षात् ।।

ओहो, वह अपना निज रूप, अपना निज घर बिना आखो के पाता नही है। परन्तु जो तुम्हारी आखे हैं, यदि उनसे देखना चाहो तो नही मिलेगा। तो भाई, क्या बात है, जरा बतला तो दो। अरे, वह ऐसे नही बताई जाती है। पहिले अपने मान को हटाओ, और मैं ही सब कुछ हूं, इस दुर्भाव को दूर करो। फिर सद्गुरु के चरणो की शरण मे आओ, तब तुमको साक्षात् यह स्वरूप मिलेगा। अब पूछो कि गुरुजी को वह रूप मिला, या नही ? भाई, इस अज्ञानता को छोडो। गुरुजी की पहिले परीक्षाकर के पीछे गुरु बनाया, या बिना परीक्षा किये ही बना लिया। यदि गुणो को देखकर गुरु बनाया है, तो उनके चरणो मे बैठने से तुम्हारी वह अभीष्ट वस्तु तुम्हे मिल जायगी। यदि तुमने बिना विचारे अन्धे होकर गुरु बनाया है, तो चरणो मे बैठने से वह वस्तु तुझे मिल जायगी क्या ? कभी नही मिलेगी। कभी-कभी स्त्रियाँ विवाह मे जाती है तो पुरुषो के जूतो की जात दिला देती हैं। फिर जूतो की जात दिलाने वाली उनको ही पूजने लगती है। विवाह के या उसके बाद जमाई जब जीमने को आता है, वे स्त्रिया भोजन मे कोई ऐसी वस्तु डाल

देती है, जो कि नही खाना चाहिए । जो होशियार होता है और बुद्धि से काम लेता है तो वह थाली मे परोसी हुई सभी वस्तुओ की जांच-पडताल करता है, जो वस्तु खाने योग्य दिखती है, उसे तो वह खा लेता है । किन्तु जिसमे कुछ भी सन्देह ज्ञात होता है, उसे वह नही खाता है । किन्तु मूर्ख व्यक्ति तो खाने मे ही लगा रहता है । यही कारण है कि उसे कभी कभी ऊट की लीद भी खाने मे आ जाती है । चेलना सती का सवाद सुना, या नही ? बौद्ध साधु की जूतियो के टुकडे करके रायते मे डाल कर उन्ही को खिला दी । फिर भी कहता है कि मुझे बहुत ज्ञान है । गुरु के साथ सदा विनम्र और विनयशील ही रहना चाहिए । उनको यदि यथार्थ रूप मे हृदय मे धारण करोगे, उनके चरणारविन्दो मे भक्तिपूर्वक रहोगे और जो गुरु आज्ञा देवें, उसका पालन करोगे, तो अवश्य ही तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि होगी । यदि गुरु के विषय मे किसी प्रकार की शका है और उसकी प्रत्येक बात पर 'ननु-नच' करना पडे तो फिर ऐसे व्यक्ति को गुरु हो नही बनाना चाहिए । अन्यथा गुरुजी आज्ञा करें उसे सत्य मानकर शिरोधार्य करना चाहिए । आपके सामने एक तो गुरु है और एक गुड है । अब यदि गुड को गुरु मान लोगे, तब मीठा-पन तो मिलेगा, परन्तु गुरुपना नही मिलेगा । यदि गुरुपना देखना है तो कई बातो का आपको त्याग करना पडेगा । परन्तु यथार्थ वस्तु तो सही ठिकाने ही मिलेगी और वहा रस-कलश अपने हाथ आ जायगा ।

हा, तो भरत महाराज देख रहे हैं कि मेरा रूप कहा है ? तो उनके लिए वह मुद्रिका ही उनकी गुरु बन गई । अन्यत्र सुनने मे आता है कि अमुक व्यक्ति अमुक महात्मा के पास गया, उनका उपदेश सुना और उसकी आत्मा पवित्र बन गई । परन्तु यहा भरत-नरेश के तो बीटी (अगूठी) का ही निमित्त है । उसे गिरा हुआ देखने के बाद मन में भावना आई तो ऐसी आई कि जिसका कोई आर-पार ही नही रहा । उसे आप आखो से देखना चाहे, चश्मा लगाकर देखना चाहे और दूर-दर्शक यन्त्र से देखने का प्रयत्न करें, तो भी वह भावना, भरत महाराज की बढती हुई विचारधारा आपको नही दिखेगी । वह तो उनको ही अनुभव मे आ रही है । अब वे उस भावना के प्रवाह से ओत-प्रोत हो गये । वे परिणामों की ऊची श्रेणी पर चढ गये, जहा से नीचे उतरने का काम ही नही है ।

भाइयो, जब आप लोग माल खरीदते हैं और तेजी ही तेजी आ रही है, तो लाभ हो जाता है । और यदि अकस्मात् बीच मे मदी आ जाती है, तो नुकसान भी उठाना पडता है । परन्तु क्षपक-श्रेणी पर चढते हुए जो शुक्ल

ध्यान प्रकट होता है, उसमे तो उत्तरोत्तर तेजी ही आती है, उसमे मन्दी का काम ही नही है। सो क्षपक श्रेणी पर चढते ही उनके कर्मों के दलिक (प्रदेश) तडातड झडना शुरू हो गये, कर्म-दलिक आत्मा से विलग हो-हो करके नीचे गिरने लगे। नव मे गुण स्थान मे उन्होने मोह कर्म की एक मात्र सूक्ष्म लोभ कषाय को छोडकर शेष सर्व कर्म प्रकृतियो का क्षय कर दिया। तुरन्त दसवे गुणस्थान मे चढकर उसका भी क्षय कर वीतराग बन गये और एक दम छलांग मारकर बारहवे गुणास्थान पर चढ करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनो घनघातियो की सर्व प्रकृतियो का क्षय करके सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गये। उन्हे केवलज्ञान और केवल दर्शन प्रकट हो गया। इस समय उन्हे अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो गया और वे अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य के धनी हो गये। अपने रूप का साक्षात्कार करते ही उन्होंने सारे ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कर लिया। उसमे अवस्थित कोई भी चर-अचर पदार्थ उनसे छिपा न रहा।

इधर आरीसा (शीश) महल के बाहर सन्तरी लोग प्रतीक्षा कर रहे है कि चक्रवर्ती अब बाहिर पधारे, अब पधारें, बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् भी जब भरत महाराज बाहिर नही निकले तो उन्होने दरवाजा खोला और भीतर झाक कर देखा तो वहाँ पर कुछ और ही देखकर वे आश्चर्य चकित रह गये। उन्होने देखा कि वे अब षट्खण्ड के चक्रवर्ती नही रहे, किन्तु वे तो सार्वभौम चक्रवर्ती बन गये है, सारे ससार के सम्राट और तीनो लोको के नाथ बन गए है। पहिले तो उनकी आज्ञा केवल भारतवर्ष मे ही चलती थी परतु अब तो उनकी आज्ञा सारे विश्व पर व्याप्त हो रही है। इस प्रकार भरत महाराज का वीतरागी रूप देखकर वे सभी सन्तरी स्तम्भित रह गए और आपस मे कहने लगे कि यह क्या हुआ ? कुछ ही क्षणो मे यह बात सारी अयोध्या नगरी मे फैल गई। लोग भागे-भागे आये और भरत महाराज की वीतराग-मुद्रा को देखकर जय-जयकार करने लगे। उपस्थित जनता ने कहा - भगवन्, यह क्या ? उत्तर मे उनकी जो दिव्य देशना प्रकट हुई, उसे सुनकर सारे लोग आनन्द से गद्-गद हो गये। भरत महाराज ने अपने जिस दिव्य अनुपम स्वरूप का साक्षात्कार किया, वह उनकी वाणी से प्रवाहित होने लगा। उसे श्रवण कर वहाँ पर उपस्थित दस हजार राजाओ को भी अपने स्वरूप का भान हुआ और वे भी वीतराग-मुद्रा के धारक हो गए। अब वे उनके रूप को और वें उनके रूप को देख रहे हैं, किन्तु परस्पर मे किसी को किसी मे पूछने की आवश्यकता नही रही। जैसे चारो दिशाओ

मे चार काच लगे हो, वहा पर वे परस्पर मे एक दूसरे को देख रहे हैं। परन्तु क्या कोई किसी से पूछता है कि तेरा रूप कैसा है ? इसी प्रकार वे दस हजार राजा लोग भी वीतराग-मुद्रा धारण कर अपने-अपने स्वरूप के ज्ञाता और अनुभोक्ता बनकर आत्मस्वरूप मे स्थिर हो गए। आत्म रूप मे इस प्रकार स्थिर होने का नाम ही परम ज्योति भेद-विज्ञान के बिना हर एक को प्राप्त नही होती है। किन्तु जो उद्योग करे पुरुषार्थ करे और अपने पराक्रम को फोडे, उसे ही प्राप्त होती है। भले ही वह किसी भी जाति, कुल या देश का क्यो न हो ? जो भी व्यक्ति उक्त श्रेणी पर चढ़ेगा, उसे वह दिव्य ज्योति अवश्य प्रकट होगी। उसके लिए किसी जाति का कोई नियम नही, कोई ठेका या कन्ट्राक्ट नही है। अपने रूप मे आने के लिए मनुष्य को भेद विज्ञान की आवश्यकता है। भेद विज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को आत्मसिद्धि प्राप्त होती है। आध्यात्मिक सन्त अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है कि—

भेद विज्ञानतो सिद्धा सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥

आज तक जो कोई भी सिद्ध हुए है—कर्म बन्धन से मुक्त हुए है, वे सब भेद विज्ञान से-स्व-पर विवेक से-ही सिद्ध हुए हैं और जो भी आज ससार मे कर्म बन्धनो से बधे हुए दिखाई दे रहे हैं, वे सब उस भेद विज्ञान के अभाव से ही बँधे हुए है। स्व-पर की पहिचान करके पर को छोडने की और अपने स्वरूप को ग्रहण करने की बुद्धि के प्रकट होने का नाम ही भेद विज्ञान है।

एक बार राजा भोज अपने भवन से नीचे उतर रहे थे और इधर नीचे से जल-भरा सुवर्णघट लिए कोई नवयुवती स्त्री ऊपर चढ रही थी। ऊपर से राजा को आता हुआ देखकर स्त्री घबडा गई और घबडाहट मे उसके हाथ से वह सोने का घडा छूट गया। वह सीढियो पर लुढकता और ट ट टटट शब्द करता हुआ नीचे जा पहुँचा। राजा भोज इस ट ट शब्द को सुनते हुए सीधे राजसभा मे पधारे। वहा पर सारे विद्वान् लोग और मत्री-सदस्य गण उपस्थित थे। राजा के दिमाग मे वह ट ट शब्द घूम रहा था। अतः उसने विद्वानो से कहा कि आप लोग टट टट ट टटटं टटटं' इस समस्या की पूर्त्ति कीजिए। पडित लोग इस अद्भुत समस्या को सुनकर स्तम्भित रह गये। किसी से भी उस की पूर्ति नही हो सकी। तब कालिदास ने राजा के भाव को ताड लिया और तुरन्त समस्या पूर्ति करते हुए बोले—

राज्याभिषेके मदविह्वलाया हस्ताच्च्युतो हेमघटो युवत्या ।
सोपान मार्गेषु करोति शब्दं टटं टट ट टटट टटटम् ॥

राज्याभिषेक के समय मद से विह्वल युवती के हाथ से गिरा हुआ सुवर्ण घट राजमहल की सीढियो पर से गिरता हुआ 'टट टट ट टटट टटट' शब्द करता है।

राजा भोज ने समस्या पूर्ति सुनकर प्रसन्न होते हुए कालिदास से पूछा—क्या आप उस समय वही पर खडे थे ? उन्होने उत्तर दिया—महाराज, आपने तो यह सब प्रत्यक्ष अपनी चर्म-चक्षुओ से देखा है और मैंने आपके मन मे स्थित इस दृश्य को अपनी ज्ञान—चक्षुओ से प्रत्यक्ष देख लिया है। क्या इसमे कुछ असत्य है ? यदि है, तो आप बतलाइए। राजा भोजने कहा—आपका कहना सत्य है। यथार्थ घटना ऐसी ही है।

भाइयो, यह कहानी सुनाने का आशय यही है कि मनुष्य जब अपने आप मे स्थित होता है और अपने स्वरूप मे रमण करता है, तब उसे पर-पदार्थों का साक्षात्कार स्वय हो जाता है। इस आत्मस्वरूप के साक्षात्कार के लिए मनुष्य को हिंसा छोडनी होगी, असत्य बोलने का त्याग करना पडेगा, चोरी की निवृत्ति करनी होगी, ब्रह्मचर्य धारण करना पडेगा और सर्वपरिग्रह से मुख मोड़ना पड़ेगा। क्योकि ये सब पर पदार्थ हैं, पर रूप है। इस प्रकार आत्मलक्षी होने पर ही मनुष्य धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को प्राप्त होता है और फिर कर्मों का क्षय करके जीवात्मा से परमात्मा बन जाता है।

५
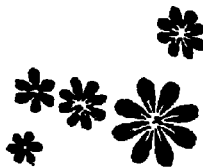
आत्मदर्शन का मार्ग : ध्यान

अण्णाणघोरतिमिरे दुरततीरम्हि हिंडमाणाण।
भवियाणुज्जोययरा उवज्झाया वरमदिं देंतु॥

बुद्धिमान् सद्-गृहस्थो! यह अवसर विचार-प्रमार्जन का है। विचारो मे विशुद्धि लाना, उनको पवित्र बनाना इसका नाम ध्यान है। आपके सामने कल शुक्लध्यान की बात आई थी। यह भी दो प्रकार का होता है—शुक्ल ध्यान और परम शुक्लध्यान। एक तो शुक्ल है, उज्ज्वल है और दूसरा परम शुक्ल है, उससे भी अधिक श्वेत है, अधिक उज्ज्वल है। आप जो यह कपडा पहिने हुए हैं, यह सफेद है और इसे धोबी ने धोकर दिया वह भी सफेद है और इसी कपडे का दुकान मे जो थान रखा है वह भी सफेद। ये तीनो ही वस्त्र सफेद हैं, परन्तु उनके भीतर भी परस्पर मे तारतम्य है। पहिला श्वेत है, दूसरा श्वेततर है और तीसरा श्वेततम है। देखो—श्वेत-श्वेत मे भी कितना अन्तर है। दुकान मे जो थान है, वह श्वेततम है, उसमे कोई भी खराबी नही है, कही पर मैल का नाम-निशान भी नही है, एकदम स्वच्छ उज्ज्वल और श्वेत है। धोबी जिसे धोकर लाया है, उस पर इस्त्री की हुई है, तरकीब से घडी की हुई है, परन्तु थान जैसी चमक-दमक उस पर नही है। कैसा भी होशियार धोबी क्यो न हो और कैसा भी मसाला धोने मे काम लावे, फिर भी थान जैसी शान वह नही ला सकता है। धोबी के धुले या नये सिले हुए कपडे को कितना ही होशियार आदमी क्यो न हो, और दिनभर धूल-धब्बो से बचाता क्यो न रहे, परन्तु फिर भी सवेरे के पहिने हुए

कपडे की अपेक्षा शाम को वही कपडा कुछ न कुछ मैला अवश्य दिखेगा। उसमे सवेरे जैसी स्वच्छता या सफेदी नही रहेगी, कुछ न कुछ अन्तर अवश्य प्रतीत होगा। और दूसरे दिन और भी अधिक अन्तर नजर आयेगा।

भाइयो, ध्यान-ध्यान मे भी बहुत अन्तर होता है। धर्म ध्यान की अपेक्षा शुक्ल ध्यान अधिक उज्ज्वल है, शुक्ल ध्यान के समय होने वाले परिणाम बहुत निर्मल है। फिर ज्यो ज्यो श्रेणी पर जीव चढता जाता है, उसके परिणाम प्रति समय अनन्त गुणी विशुद्धि से वर्धमान रहते हैं। उसके भावो और विचारो मे उत्तरोत्तर स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता और विशुद्धि बढती ही जाती है। इस चरम सीमा पर पहुँची हुई विशुद्धि का नाम ही परम शुक्ल ध्यान है। यह शुक्ल और परम शुक्ल ध्यान तो सर्व सग-विनिमुक्त, निर्ग्रन्थ, समाधिलीन साधुओ के ही होता है, क्योकि श्रावक दशा मे आरम्भ समारम्भादि के निमित्त बने रहने से उतनी ऊँचे दरजे की विशुद्धि सभव नही है। परन्तु श्रावको के भी उनके पद के योग्य तर-तम भाव को लिए हुए धर्म-ध्यान रूप विशुद्धि होती है।

तीन मनोरथ

श्रावक तीन मनोरथो का चिन्तवन करता है। पहिला मनोरथ क्या है कि 'आरम्भ परिग्रह तजकरी' यह पहिला मनोरथ है। वह सर्व प्रथम विचार करता है कि अरे, मैं अपने लिए और अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण करने के लिए इतना जो आरम्भ-समारम्भ करता हू और उसमे मेरे द्वारा जो छह कायिक जीवो की हिंसा होती है, उनकी विराधना होती है और उन्हे जो कष्ट पहुँचता है, यह मैं बडा अपराध कर रहा हू। हे प्रभो, ऐसा अवसर कब आयगा, जबकि मैं इस आरम्भ-परिग्रह से अलग होऊँगा। इनसे अलग होने पर भले ही मुझे कितने ही शारीरिक कष्ट उठाने पडे, पर मुझे उसमे शान्ति है और आनन्द है। परन्तु यह परिग्रह और आरम्भ मैं कर रहा हू इसमे शान्ति और आनन्द नही है, बल्कि आकुलता और अशान्ति है। ऐसे जिनके विचार सुन्दर और स्वच्छ हैं, वे ही व्यक्ति आगे बढकर और पुरुषार्थ जागृत कर पहिले पाचो पापो का त्याग कर पच अणुव्रतो को धारण करते है और फिर भी भावना करते हैं कि मेरे वह दिन कब आयगा जबकि मैं पच महाव्रतो को धारण कर साधु बनूँगा। प० दौलतरामजी ऐसी भावना को बडे सुन्दर शब्दो मे व्यक्त करते हुए कहते हैं—

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी ॥ टेक ॥
तन अति कपन अशन विन वन में निवसौ नासा दृष्टि धरी ॥ मेरे ॥

पुण्य पाप परसो कब विरचो, परचो निज निधि चिर विसरी ।
तज उपाधि, सजि सहज समाधि, सहो घाम हिम मेघ झरी ॥ मेरे ॥
कब थिर योग धरो ऐसो मोहि उपल जानि मृग खाज हरी ।
ध्यान कमान तान अनुभव-शर, छेदो किहि दिन मोह अरी ॥ मेरे ॥
कब तृण कचन एक गिनो अरु, मणि जडितालय शैल-दरी ।
दौलत सतगुरु - चरन सेवजो, पुर वौ आस यह हमरी ॥ मेरे ॥

सच्चे श्रावक के हृदय मे तो ये ही भावनाए उठा करती हैं कि कब मैं ऐसे आदर्श साधु जीवन को धारण करू और सारे अठारह पापो को दूर करू ? कब मैं कुटुम्ब की विडम्बना से दूर होकर और स्वावलम्बी बनकर ध्यान करू और मोह रूप प्रबल शत्रु को ध्यान-कमान पर आत्म अनुभवरूप वाण को रखकर कब मारू । वे दिन मेरे कब आवें, वह सुघडी मेरे कब आवे जब मैं तृण और कचन को, मणिजडित महल और वन की कन्दरा को समान दृष्टि से देखू ? और तीनो ऋतुओ के गर्मी, सर्दी और वर्षा की झडियो को सहन करते हुए आत्म ध्यान मे अवस्थित रहूँ और सहज समाधि को प्राप्त करू ? इस प्रकार की भावना करते हुए व्रतो को निरतिचार निर्दोष पालन करता है और अवसर आने पर महाव्रतो को भी धारण कर लेता है । इस प्रकार उसका यह दूसरा मनोरथपूर्ण हो जाता है । तत्पश्चात् जीवन के अन्त मे सन्यास या समाधिमरण की वेला में अन्तिम आलोचना करने की भावना करता है । उस समय वह कहता है कि हे भगवन् ! मैंने जाने-अनजाने मे जो भी छोटे या बडे पाप किये हो, दूसरो के दिल दुखाये हो. पराया धन, चुराया हो, दुराचार और व्यभिचार किये हो, अन्यायपूर्वक धन का सग्रह किया हो, तो मैं इस समय उन सबकी आलोचना करता हूँ । अपने कषाय भाव की आलोचना करता हू, अपने अज्ञान, राग और द्वेष भाव की निन्दा करता हूँ और व्रतो की शुद्धि करके पडित मरण को प्राप्त होऊ ? इस प्रकार तीसरे मनोरथ को करता है । इस प्रकार श्रावक अपने तीनो मनोरथो मे उत्तरोत्तर ऊपर चढता ही जाता है और उसके शुद्ध विचार भी उत्तरोत्तर बढते ही जाते हैं तभी उसके ऊची भूमिका मे पहुँचने पर शुक्ल ध्यान होता है । और परम शुक्ल ध्यान कैसा होता है, इसका एक उदाहरण ले लो कि एक सेर भर मिश्री को लेकर एक सेर पानी मे डालो और फिर उसे अग्नि पर औटाना शुरू किया । औटाते औटाते जब तीन पाव पानी जल जाय, तब उसे उतार कर स्वाद लीजिए, कितना अधिक मिठास प्रतीत होगा । यद्यपि सेर भर मिश्री को सेरभर पानी मे गलने पर भी मिठास था, परन्तु

ओटाते-ओटाते पाव भर पानी रहने मे जो मिठास आता है, वह सेर भर पानी मिलाने के समय नही था। तो प्रारम्भ का मिठास जैसा तो शुक्ल ध्यान है और अन्तिम मिठास जैसा परम शुक्ल ध्यान है। इस शुक्ल ध्यान के आनन्द का वर्णन करते हुए प० दौलतरामजी कहते हैं—

> यो चिन्त निजमे थिर भये तिन अकथ जो आनंद लह्यो,
> सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।
> तब ही शुकल ध्यानाग्नि कर चउघाति विधिकानन दह्यो,
> सब लख्यो केवल ज्ञानकरि, भवि जीवको शिव मग कह्यो॥

जब साधक ध्यानावस्था मे आत्म स्वरूप का चिन्तन करता हुआ अपने आप मे स्थिर हो जाता है, उस समय वह जिस अकथनीय-अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है, वह आनन्द इन्द्र, नाग, नरेन्द्र और अहमिन्द्र तक को भी नसीब नही है। उस समाधि-दशा मे प्राप्त होने वाले आनन्द के सामने ससार के उक्त बडे से बडे पदवीधारी चक्रवर्ती इन्द्र और अहमिन्द्र तक को भी प्राप्त नही होता है। इसी परम समाधि की दशा मे साधक शुक्ल ध्यान के द्वारा चारो घन घातिया कर्मो के जगल को जलाकर भस्मसात् कर देता है और केवलज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश द्वारा सारे विश्व को प्रत्यक्ष देखता है और अपनी दिव्य देशना द्वारा भव्य जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश देता है। यह शुक्ल ध्यान और परम शुक्ल ध्यान का उदाहरण है।

आर्त्तध्यान

अब आर्त्तध्यान और महाआर्त्तध्यान का उदाहरण सुनिये। एक सेर सखिया को सेर पानी मे डालकर उसका स्वाद लीजिए—कडुवा प्रतीत होगा। अब उसे अग्नि पर चढा करके ओटाइये। ओटाते-ओटाते जब पाव भर पानी रह जावे, तब उसका स्वाद लीजिए—अत्यन्त कडुआ लगेगा। इसी प्रकार आर्त्तध्यान मे कडुए मलिन परिणाम होते हैं, जिन्हे कापोत और नील लेश्या जैसे कह सकते हैं। परन्तु परम या महान् आर्त्तध्यान के समय तो जो भाव होते है, वे परम कृष्ण लेश्या के महापापो के उपार्जन करने वाले और सातवें नरक ले जाने वाले होते हैं। उन भावो को हालाहल विषकी उपमा दी गई है। व्यवहार मे भी आप कहते हैं कि ये हमारे मित्र हैं और ये परम मित्र हैं। यद्यपि दोनो से मित्रता है, तथापि उनमे तरतम भाव का अन्तर तो है ही। जो मित्र है, वह सज्जन है, उसका व्यवहार दुर्जनता-रहित और प्रेम युक्त है। परन्तु जो परम मित्र है, उसके साथ तो अपना हृदय एक जैसा हो रहा है। इसीलिए लोग कहते हैं कि हम दोनो तो अभिन्न हृदय है। हमारे दोनो

के शरीर ही भिन्न-भिन्न हैं, पर मन भिन्न-भिन्न नही हैं, किन्तु एक हैं। और दुनिया भी उनको इसी रूप मे कहने लगती है कि इन दोनो का शरीर ही भिन्न है, पर हृदय एक है। इस प्रकार मित्र से परम मित्र का स्थान ऊचा है। परम शब्द असीमता का द्योतक है। जैसे कहाँ कृष्ण और कहाँ दीन-हीन ब्राह्मण सुदामा। पर जैसे कृष्ण के यहाँ पहुँचे तो वे अपने आसन से उठकर और सामने जाकर उसको गले लगाकर मिले। इसी प्रकार कहाँ श्री कृष्ण और कहा अर्जुन ? परन्तु महाभारत के युद्ध मे श्री कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी बने। तो ये हैं परम मित्रता के उदाहरण।

जोधपुर महाराजा सरदारसिंह जी के मित्र थें चादेलाव ठाकुर—उमेदसिंह जी। सुरपुरा के पास एक मेढी गाव है। वहा उमेदसिंह जी परणने को गये। तो महाराजा सरदारसिंह जी ने उनके घोडे की लगाम पकड ली। यह बात सारे सरदारो को अखरी कि महाराज यह अनहोनी बात कैसे कर रहे हैं। एक सरदार ने कह ही दिया कि महाराज, आपको इनके घोडे की लगाम नही पकडना चाहिए। तब महाराजा ने कहा कि मित्रता के आखें नही होती हैं और शत्रु के भी आखें नही होती हैं। मित्र को कुछ भी करना चाहे, कर सकता है और शत्रु भी जो चाहे, कर सकता है। इसमे विचार करने की कोई बात नही है।

भाई, देखो—कहा तो जोधपुर के धनी और कहा एक गाँव का ठाकुर! परन्तु उनमे परम मित्रता थी, इसलिए मित्र के प्रेम वश उन्होंने शादी के समय घोडे की लगाम पकड ली। इसका नाम परम मित्रता है। नीति भी कहती है—

> ते पुत्रा ये पितुर्भक्ता, स पिता यस्तु पोषक।
> तं मित्र यत्र विश्वास भार्याच अनुगामिनी॥

पिता कौन ? जो पुत्र का पालन-पोषण करे। नीतिकारो ने पिता भी पाच बतलाये हैं और माता भी पाच बतलाई हैं। यथा—

> अन्नद प्राणदश्चैव स्यामद भयरक्षकः।
> ज्ञानद जनकश्चैव पञ्चैते पितर· स्मृता॥

जो हमारा पेट भरे, दुख की घडियो मे हमारी सहायता करे, वह व्यक्ति भी पिता के समान है। जन्म देने वाला जनक भी पिता है। जो निराश्रय को आश्रय दे, निराधार का आधार बने और कहे कि भाई, इधर-उधर मत भटक। यह घर भी तेरा ही है इसमे बिना किसी सकोच के रह और घबड़ा

मत । ऐसा कहने वाला और आश्रयदाता व्यक्ति भी पिता के ही समान है। और जहाँ कोई सबल पुरुष किसी निर्बल को तलवार लेकर मौत के घाट उतार रहा हो, उस समय आकर बीच मे कूद कर जो प्राणो की रक्षा करे और आक्रामक व्यक्ति से कहे कि क्या तूने इसे अकेला और असहाय समझ रखा है ? ठहर जा, पहिले मेरे से निवटले पीछे, इसके प्राण लेना । इस प्रकार सकट के समय प्राणो की रक्षा करने वाला पुरुष भी पिता ही है। जो ज्ञान रूपी नेत्र देने वाला है, वह भी पिता के तुल्य है । इस प्रकार ये पाच पिता कहे गये हैं। इसका आदर और सन्मान एक समान ही करना चाहिए।

इसी प्रकार पाच माताएँ कही गई हैं। यथा—

राजपत्नी गुरो पत्नी-मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पचैते मातर स्मृता ॥

ये पाच माताएँ हैं। जिसके राज्य मे हम रहते है और जो हमारी रक्षा करता है, उस शासक राजा की पत्नी माता के समान है। गुरु जो हमे ज्ञान देता है, विद्या पढा करके विद्वान् बनाता है, ऐसे गुरु की पत्नी भी माता कही गई है। अपने मित्र की पत्नी भी माता के समान है। अपनी स्त्री की माता अर्थात् अपनी सासु भी माता के समान है और अपने को जन्म देने वाली जननी भी माता है ही।

इस सब विवेचन का अर्थ यह है कि पिता वही है जो हमारा पालन पोपण करता है और पुत्र वही है जो कि अपने पालन-पोपण करने वाले की सेवा और भक्ति करता है। पिता ने तो अपना कर्त्तव्य कर दिया, परन्तु पुत्र उसकी सेवा नही करे, आदर-सम्मान और भक्ति नही करे, तो उस पुत्र से क्या मतलब है ? उसने तो अठारह वर्ष तक माता-पिता के कपडे ही खराब किये और हजारो रुपयो को वर्वाद किया। जब कमाने के योग्य हुआ, तब कह दिया कि न तुम हमारे और न हम तुम्हारे। ऐसे कहने वाले को बेटा कहना, या कि पूर्व भव का काटा कहना ? उसमें पुत्रपना नही है। जो वृद्धावस्था में सर्व प्रकार से समर्थ होने पर भी अपने माता-पिता की सेवा नही करता है, उल्टे उन्हें नाना प्रकार से दु ख देता है, वह पुत्र नही है बल्कि कुल-कलंक है, कुलाङ्गार है। ऐसे पुत्र से तो अपुत्रपना ही भला है। इस प्रसग मे मैं चार बातें बता रहा हूं कि—

एक हाथे ताली न बाजे, भावे कोई बजाय देखो,
एक जना की प्रीति न लागे भावे कोइ लगाय देखो।

जीम्या पाछे धान न भावे भावे कोइ खाय देखो
बिन बोलाये आदर नाही भावे कोइ जाय देखो
ये चारो मे झूठ नहीं है भावे कोइ अजमाय देखो ।।

भाई, एक हाथ से ताली नही बज सकती है। चतुर से भी चतुर मनुष्य नही बजा सकता है। एक तो प्रेम करे स्नेह करे और दूसरा व्यक्ति लाल आँखें दिखावे और सख्त वचन बोले, तो उन दोनो के प्रीति नही हो सकती है। आप आमन्त्रित होकर कही सभा-सोसायटी मे जायें और सामने वाला कहे कि पधारिये, तो जाने पर आदर होता है। यदि कोई विना बुलाये जाय और निकम्मा होकर बैठ जाय तो लोग कहते हैं कि यह क्यो आकर बैठ गया ? कहा है कि —

विना कार्येषु ये मूढा गच्छति परमंदिरे।
अवश्यं लघुतां यान्ति-रविबिंबे यथा शशी ।।

जो विना बुलाये किसी के द्वार पर जाता है, वह लघुता को प्राप्त होता है। अरे, आपकी तो बात ही क्या है, ये चन्द्र और सूर्य तो जीते-जागते देव हैं और ससार की रात-दिन बहुत सेवा कर रहे हैं। तो भी दिन मे आप कभी चन्द्रमा को देखते हैं, तो वह भला नही लगता है और लोग उसका कोई आदर-सम्मान नही करते हैं। वही जब रात्रि मे उदय होता है तो कितना सुहावना लगता है और आप उसे देख कर प्रसन्न होते हैं। इसका यही अर्थ है कि दिन को उसकी आपको आवश्यकता नही है और रात्रि मे आपको उसकी आवश्यकता है, अत प्रसन्न होते हैं और उसकी ओर कृतज्ञता की दृष्टि से देखते हैं। विना प्रयोजन के चन्द्रमा भी हमारे सामने आता है तो उसकी भी कोई कीमत नही है। इसी प्रकार यदि मनुष्य का प्रयोजन नही रहता है तो वह पिता को पिता कहने के लिए भी तैयार नही है उल्टा उससे कहता है कि तू मेरा बाप नही, वैरी है। अरे भले आदमी, यदि वह वैरी होता तो क्या तेरा पालन-पोषण करके तुझे बडा करता और तेरे पीछे हजारो रुपये खर्च करता क्या ? परन्तु मा-बाप तो यही सोचते हैं कि यह मेरा बच्चा है, इसलिए वे भूखे रह जाते हैं, किन्तु सन्तान को भूखा नही रखते। स्वय फटे पुराने कपडे पहिन लेते हैं, परन्तु बच्चो को अच्छे कपडे पहिनाते हैं। यदि सासुके पास आभूषण हैं तो वह स्वय न पहिन कर अपनी बीदणी (पुत्र-वधू) को पहिनाती है। घर मे कोई अच्छी खाने-पीने की वस्तु आयेगी तो मा-बाप पहिले बच्चो को खिलाने का भाव रखते हैं। जिन बच्चो को माता-पिता ने इतना लाड-प्यार किया, वे ही यदि अवसर आने पर

अपने मा-बाप की भक्ति न करे, सेवा-सुश्रूषा न करे और उनके कहने के अनुसार न चले, तो वे पुत्र है क्या ? भाई, उनको तो पुत्र ही नही कहना चाहिए।

इसी प्रकार मित्र किसे कहना चाहिए ? जिसके कि ऊपर हमारा पूरा विश्वास हो। जिनकी कही गई बातें कभी भी उनके मुख से बाहिर न निकालें। जो सुनी हुई बात को पानी के समान पी जाये, उनको ही मित्र कहना चाहिए। जो आपकी बात को सुनकर सारे गाव मे उसका ढिंढोरा पीटते फिरें, वे मित्र नही, परम शत्रु हैं। जो काम बिगडता नही हो, वह जिसे कहने से बिगड जाय, उसे मित्र नही मानना चाहिए। जिस व्यक्ति पर आपको विश्वास नही हो, उसे भी मित्र मत मानो। यदि व्यवहार के नाते मित्र मानना भी पड़े तो अपने हृदय की गूढ बात उससे मत कहो।

स्त्री या पत्नी किसे कहा जाय ? जो अपने कुल की मर्यादा से चले, जो पति के आँख के इशारे पर चले और सदा पति के सुख-दुःख का ध्यान रखे, उसका नाम पत्नी या गृहिणी है। इस सब कथन का सार यह है कि जो सन्तान को विधिवत् पाले वह पिता है। जो कुल को पवित्र करे वह पुत्र है और जो पति के सुख-दुःख मे सदा साथ रहे और कर्तव्य का पालन करे वह पत्नी है। तो ये व्यवहार मे उत्तम माने जाते है। इसी प्रकार जो शुक्लध्यान और परम शुक्लध्यान है, उनमे दुर्भाव का लेश भी नही है। उनके ऊपर कोई कैसा भी भयकर उपद्रव करे, उपसर्ग करे, तो भी शुक्ल ध्यानी व्यक्ति के हृदय मे उसका कोई विकल्प भी नही उत्पन्न होता है। वह जानता है कि यह तो कर्म-सयोगज है। जो भी हो गया, वह हो गया। उसका भी क्या विचार करना। और जो रहा है वह हो रहा, उसका भी क्यो विचार करना चाहिए। तथा जो आगे होने वाला है, उसकी भी क्यो चिन्ता करू ? इस प्रकार विचार कर शुक्लध्यान निर्विकल्प रहता है। ऐसे ही व्यक्तियो को लक्ष्य मे रखकर कहा गया है कि—

पूरब भोग न चिन्तवे, आगम बांछा नांहि।
वर्तमान वरतें सदा, ते ज्ञाता जगमांहि॥

ज्ञाता कौन ?

ऐसे ज्ञानी पुरुष सदा स्वरूपस्थ रहते है। वे तो किसी भी कुप्रसग के आने पर या किसी बात के बिगडने पर यह विचार करते है कि 'बिगडन-हारी वस्तु को कहो सुधारे कौन' ? भाई, जो बिगड़ने वाली वस्तु है, वह

क्या बिना बिगड़े रह सकती है ? कभी नहीं रहेगी । वह तो बिगड करके ही रहेगी । कल्पना कीजिए कि आपके मन मे आया कि आज तो रबडी खानी है । आपने स्त्री से कहा और उसने भी बडे प्रेम से बनाकर तैयार की और चूल्हे पर से कढाई उतार करके नीचे रखी । उसमे मिश्री मिलाना था । पिसी मिश्री और पिसे नमक के डिब्बे पास-पास रखे थे । उसका ध्यान चूक गया और नमक के डिब्बे मे से एक धोवा भर कर कढाई मे डाल दिया । बताओ क्या उसकी इच्छा नमक डालने की थी ? नही थी । परन्तु वह चीज बिगडने वाली थी । इसलिए उससे नमक गिर गया । अब खाते समय आपका ध्यान चल-विचल नहीं होना चाहिए । किन्तु यही सोचना चाहिए कि आज यह ऐसा ही होने वाला था, सो सयोग वैसे ही मिल गए । ज्ञानी कह गए हैं कि—

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे ।
अनहोनी कबहुँ नहिं होनी काहे होत अधीरा रे ।।

अपनी विचार-धारा को निरतर पवित्र रखो, उसमें कोई विकार नही आने दो । क्योकि निर्मल विचार-धारा मे यदि कोई पर वस्तु आकर के मिलेगी तो उसमे अवश्य ही खराबी आयेगी । यदि भर पेट खाने के बाद सामने वाले की मनुहार से आप और भी पेट मे डालेंगे तो खराबी पैदा होगी ही । भगवान् का जो समवसरण है, उसमे तो सही वस्तु ही आयेगी गलत वस्तु नही आयेगी । क्योकि एक म्यान मे दो तलवारें नही रहती हैं । जहाँ सत्य का प्रचार है वहाँ झूठ का प्रचार ठहर नही सकता और जहाँ झूठ का प्रचार है वहाँ पर सत्यधर्म ठहर नहीं सकता । एक स्थान पर सत्य या असत्य इन दो मे से कोई एक ही रहेगा । जिनके शुक्ल और परम शुक्ल-ध्यान हैं और जिन्हे परम गति प्राप्त करनी है, उन परम पुरुषो के दुर्विचार या आर्त्त-रौद्रध्यान आ ही नही सकते हैं । यदि आते हैं, तो समझो उनके शुक्लध्यान नही है । वे उससे गिर गए हैं । परन्तु परम शुक्लध्यान वाला कभी गिरता नही है वह अप्रतिपतमान चारित्र और वर्धमान विशुद्धिवाला होता है और अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही घन-घाती कर्मों का क्षय करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा बन जाता है । हमसे वह परमात्मदशा अभी दूर है, क्योकि अभी हमारे राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विद्यमान हैं । इनके रहते हुए शुक्लध्यान का होना सभव नही है । शुक्लध्यान तभी प्राप्त होगा, जबकि अन्तरंग मे से अनन्तानुबन्धी कषाय अप्रत्याख्यानावरण कषाय और प्रत्याख्यानवरण कषाय दूर हो जावेंगी और एक मात्र सज्वलन कषाय शेष

रहेगी। उसके भी जब तीव्र उदय नही होगा, किन्तु अतिमन्द उदय होगा और वह भी जब क्षय होने के अभिमुख होगी, तब शुक्लध्यान होगा। उस अवस्था की प्राप्ति के लिए हृदय कमल की एक-एक पाखुरी का कोमल हो जाना आवश्यक है। उसके लिए अभी मुनि जी ने आपके सामने धर्म के दस लक्षण बताए हैं। उनका पहिला लक्षण उत्तम क्षमा धर्म बतलाया है। जहा उत्तम क्षमा है,वहा हृदय की कोमलता है। वहा कठोरता नहीं है। यदि हृदय के भीतर यह क्षमा भाव आ जाय, कोमलता आ जाए और कठोरता निकल जाय तो उसके सामने कितने ही निन्दा करने वाले आ जायें, कितने ही विरोध करने वाले खडे हो जाये, किन्तु वह अपने मुख की मधुर मुस्कराहट को मन्द नही करेगा और वह अपने पैरो को पीछे नही रखेगा। इसीलिए कहा गया है कि—

उत्तम क्षमा जहां मन होई, अन्तर बाहिर शत्रु न कोई।

जिसके हृदय मे उत्तम क्षमा का निवास है, उसको ससार मे न कोई अन्तरग मे शत्रु है और न कोई बाहिर मे ही शत्रु है। उसके लिए तो ससार के समस्त प्राणी मित्र बन जाते हैं। उसके सम्मुख यदि कोई विरोध करने वाला आता है, तो वह उसे विरोध न मान कर विनोद मानता है और अन्तरग मे प्रसन्न होता कि चलो इस विरोधी व्यक्ति के द्वारा सत्ता मे पडे हुए मेरे पाप कर्म दूर हो रहे हैं और मैं कर्म-भार से हल्का हो रहा हूँ। ऐसे व्यक्ति का हृदय इतना कोमल हो जाता है कि दुखी पुरुष के दुख को सुनते ही वह करुणा से द्रवित हो जाता है,उसकी आखो से आसू निकलने लगते हैं और वह विचारने लगता है कि हे प्रभो, इस व्यक्ति ने कितना अधिक पापोपार्जन किया है कि यह इतनी अधिक यातनाएं भोग रहा है। तभी भगवान् ने फरमाया है कि ये सब गुण सब पुरुषो मे नही आते हैं। कहा है कि—

विरला जाने पर गुण ' ... ..

विरला जानंति परगुणा, विरला परकज्जकेरा।
विरला निरधननेहा पर दुक्खिये दुक्खिया विरला॥

परगुणो पर प्रसन्नता

ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे मे भगवान् अपने श्री मुख से फरमा रहे हैं दूसरो के गुणो को चुन-चुन करके लेने वाले लाखो नही, हजारो भी नही और सैकडो की भी सख्या मे नही मिलेंगे। किन्तु वे तो अगुलियो पर ही गिनने के योग्य मिलेंगे। सिद्धान्त कहता है कि पराये गुणो के ज्ञाता और

ग्राहक विरले ही मिलेंगे। और अपने कार्य का नुकसान करके पराये कार्य को सुधारने वाले भी विरले ही मिलेंगे। मानव वही कहलाता है जो देखता है कि यह मेरे पास-सहायता के लिए आया है तो मेरा प्रथम कर्त्तव्य है कि मैं अपने सब कार्यों को छोडकर इसका कार्य सम्पन्न करू। वह आने वाले से कहता है कि भाईसाहब, आओ और फरमाओ कि मैं आपकी क्या सेवा करू ? यह सेवक सर्व प्रकार से आपकी सेवा करने के लिए तैयार है। इसके विपरीत यदि कोई आने वाले से यह कहे कि आपको दिखता नही, कि मैं निकम्मा हू ? मेरे पास कितना काम है ? मैं आपका काम अभी नही कर सकता हूँ। तो उसके हृदय को कितना धक्का लगता है। वह जान लेता है कि यहां पर मनुष्यता नही है। किन्तु जो अपने कार्य को छोडकर दूसरे का कार्य करने को उद्यत होते हैं, उन्हें ही परोपकारी कहते हैं। जो परोपकारी मनुष्य होते हैं, वे त्याग करते हैं। आप लोगो ने यह मुह पत्ती किसलिए बाधी है ? इसीलिए कि हमारे द्वारा वायुकायिक जीवो की विराधना न हो, किन्तु उन्हें आराम पहुँचे। नगे पैर क्यो चलते हैं ? जिससे कि कोई छोटा जानवर पैर से दब न जाय, उसको कष्ट न पहुँचे। आप यहा इतने ब्राह्मण, महाजन, अग्रवाल आदि मौजूद हैं, यह बताइये कि हमारे बडेरे जूतो मे क्या खुर, नाले लगवाते थे ? क्या उनको पहिले साधु कहते थे, या महाजन ? परन्तु आज आप लोगो के बूटो मे खुर, नाले लगे हुए हैं सो जहा पर भी पैर रखते हैं, वही पर जीवो की हिंसा होती है। इसके सिवाय आज के बाबू लोग और अपने को बडा समझने वाले व्यक्ति क्रूम लैदर के बूट पहिनते हैं। परन्तु यह क्रूम लैदर कैसे बनता है, इसका भी कभी आपने विचार किया है ? कसाई लोग जो बडे-बडे कसाईखाने चलाते हैं वे बाजार से गाय, भैस, बकरी आदि दीन और मासूम जानवरो को खरीदकर ले जाते है। पहिले उनको धूप मे जोर से दौडाते है। फिर उन्हे खूँटो से बाध दिया जाता है और उन पर खूब गर्म पानी डालते है और उन्हे बडी निर्दयता के साथ पीटते है। फिर उन पर खूब गर्म पानी डालते हैं जिससे कि उनके शरीर के रोम जल कर झड जाते हैं। उनकी मारसे बेचारे उन जानवरो का खून मास एकमेक होकर चमडे मे भिद जाता है और उनकी खाल फूल जाती है। कसाई लोग उन जानवरो के जीते हुए भी उनकी चमडी उतार लेते है और वे जानवर तडप-तडप कर अपने प्राण छोडते है। ऐसी नृशंसता और निर्दयतापूर्वक जो चमडी उतारी जाती है, उससे यह क्रूम लैदर तैयार होता है, उसमे ये बूट बनते है जिन्हे कि सभ्य कहे जाने वाले लोग बडी शान से और बडे गौरव के साथ पहिनते हैं। क्या यह हिंसा का काम नहीं है ? किन्तु

जो दयावान् है, जिन्हे धर्म का कुछ भी विचार है, वे ऐसे जिन्दा जानवरो से तैयार होने वाले बूट आदि किसी भी वस्तु को काम मे नही लाते हैं। वे अहिंसक और रवर आदि से बने हुए ही जूते पहिनते है। और फिर भी यदि चलते समय उनके पैरो के नीचे कोई जरेंदार रेत आ जावे, या अनाज आ जावे और उसकी चर्मराहट कानो मे आ जावे तो उनके रोम-रोम खड़े हो जाते है। क्या दयावान् व्यक्ति कीलदार बूट पहिनते है ? और क्या चमड़े के पट्टे वाले विस्तर-बन्द, सूटकेस आदि को काम मे लेते है ? नही लेते है। इन्हे वे ही लोग काम मे लेते है, जिन्हे कि दया का विलकुल भी विचार नही है। यदि आपको जीव हिंसा से वचने का जरा-सा भी विचार है तो पैरो की ममता है तो आज ऐसे अनेक प्रकार के अहिंसक जूते तैयार होने लगे है जिनको कि काम मे लेकर आप क्रूम लैंदर के निमित्त होने वाली भारी हिंसा से वच सकते है। परन्तु जरा-सी शान-शौकत और मजा-मौज के लिए आप लोग क्यो धर्म से नीचे गिर रहे हो ? क्यो जाति की मर्यादा गिरा रहे हो ? हृदय मे जरा कोमलता और करुणा भाव लाकर ऐसे काम करो जिससे कि आप हिंसा के महापाप से वच सके। पहिले मन मे उन हिंसक वस्तुओ के प्रति ग्लानि लाओ और फिर उनका परित्याग करो। जिनके हृदय मे दया है, वे क्रूम लैंदर की इस उत्पत्ति को सुनकर तत्काल उसके उपयोग का परित्याग कर देगे। किन्तु जिनके भाव इतना सुनने के बाद भी परित्याग के नही होते है, उनको हम क्या कहें ? यह वे ही स्वय विचारें।

पांच सौ हाथी और एक भैंसा

एक वार एक राजा ने स्वप्न मे देखा कि पाच सौ हाथी आ रहे हैं और उनके आगे एक काला भैंसा (पाडा) चला आ रहा है। स्वप्न को देखते ही राजा की नीद खुल गई। वह विचारने लगा कि हाथियो का देखना तो ठीक है। परन्तु यह सोने के थाल मे लोहे की मेख के समान भैंसा कैसा ? राजा के दिमाग मे यह बात घूमती रही कि इस स्वप्न का क्या फल होगा ? प्रात. काल राजा राजसभा मे पहुँचा तो समाचार मिले कि एक आचार्य पाच सौ मुनियो के साथ उद्यान मे पधारे है। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ और अपने परिवार के साथ उनके दर्शनार्थ गया। सब साधुओ को वन्दन-नमस्कार करने के बाद उसने व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुनते समय उसके विचार आया कि स्वप्न मे जो मैंने पाच सौ हाथियो को आते हुए देखा, सो ये साधु आ गये है। अत स्वप्न का यह भाग तो सत्य है। किन्तु उनके आगे आगे जो पाडे को चलते हुए देखा है सो वह कौनसा व्यक्ति इनमे है। इस बात

की परीक्षा करनी चाहिए। ज्ञात तो ऐसा होता है कि सबके आगे चलने के कारण आचार्य ही पाडा प्रतीत होते है। किन्तु बिना निर्णय किये यह कैसे निश्चित रूप से कहा जा सकता है ? अत. राजा ने उनकी परीक्षा करने के लिए अपने नौकरो से कहा—उद्यान के पीछे जो भूमि नीची है वहा पर पहिले कोयले की चूरी बिछाकर ऊपर से बालू रेत डाल देना। परन्तु इसका पता किसी साधू को नही लगना चाहिए। नौकरो ने राजा के आदेशानुसार वैसा ही कर दिया। सायकाल के समय राजा बाग मे पहुँचा और उस स्थल के समीप किसी ओट वाले स्थान पर कुर्सी लगाकर बैठ गया। तदनन्तर साधुओ ने आचार्य से प्रतिक्रमण की आज्ञा ली और प्रतिक्रमण किया। पुन साधुओ को लघुशका की बाधा हुई तो वे भाजन लेकर बाहिर परिठने को निकले। भूमि पर उनके पैर पडते ही 'चर्र-चर्र' आवाज आई। वे लोग उस मार्ग को छोडकर दूसरी ओर से निकलने को उद्यत हुए कि वहा पर भी वही चर्र-चर्र की आवाज आई। वे लोग पीछे लौटे और बाग के दूसरे द्वार से वाहिर निकल कर परिठना किया। वापिस आने पर उन आचार्य ने कहा—अरे तुम लोग कितने मूर्ख हो जो परिठवन के योग्य भूमि के समीप होते हुए भी इतना चक्कर खाया ? इस प्रकार सभी साधु परिठवने को गये, पर उस मार्ग से जाने पर 'चर्र-चर्र' का शब्द सुनकर वापिस लौटे और दूसरे चक्कर दार मार्ग से वाहिर जाकर और परिठवना करके अपने स्थान पर आये। आचार्य के पूछने पर सभी ने कहा—गुरुदेव ! हमे इस मार्ग से जाने पर रेती के नीचे चर्र-चर्र शब्द के होने से जीवो के होने की शका हुई और इसलिए हम लोग चक्कर वाले मार्ग से वाहिर परिठवना करके आये हैं। उन लोगो का उत्तर सुनकर आचार्य ने कहा—मूर्ख कही के ? सवेरे तो वहाँ पर कुछ नही था, अभी क्या हो गया ? और यह कहकर भाजन लेकर उस रेतीपर से धमाधम चले गए और परठकर वापिस उसी मार्ग से लौट आए। आते ही सब साधुओ से बोले—वहा कहा हैं जीव ? यह दृश्य देखकर राजा को आठ आना तो विश्वास हो गया कि ये आचार्य ही पाडा हैं और शेष सब सन्त हाथी है। यद्यपि ये आचार्य तपस्वी हैं किन्तु इनके हृदय मे जीव-दया का अभाव है। किन्तु जब तक मैं अन्य स्रोतो से इस बात का पूरा निर्णय नही करलू, तब तक उन्हे पाडा कैसे माना जा सकता है ? कुछ समय के बाद सब सन्त वहाँ से विहार करके अन्यत्र चले गए। कुछ दिनो के बाद वहा पर एक विशिष्ट ज्ञान के धारक साधु पधारे। राजा उनके दर्शन-वन्दन के लिए गया। राजा ने अपने उक्त स्वप्न का हाल उनसे कहा और पूछा कि महाराज कृपा करके बतलाइए कि वे पाँचसौ हाथी कौन हैं और उनके

आगे जो भैसा चल रहा था, वह कौन है ? उन ज्ञानी मुनिराज ने कहा— राजन्, तेरा स्वप्न बिलकुल सत्य है। उस सघ के पाँचसौ मुनि तो भव्य है और अल्पससारी हैं। किन्तु उनके जो आचार्य हैं, वे अभव्य है और अनन्त ससारी है। उनका ससार कभी भी समाप्त नही होगा। अब देख लो कि राजा बुद्धिमान था तो स्वप्न आते ही उसने उसका निर्णय किया और उसका पता भी पा लिया। इसी प्रकार जिनके जीवन मे धर्म घुल गया है और जो धर्म मे रम गये हैं,उनको कितनी ही ऋद्धि-सिद्धि और कुटुम्ब-परिवार आदि का वैभव क्यो न मिल जाय, किन्तु उनके हृदय से मानवता निकल नही सकती है। जिनके हृदय मे मानवता नही है, वे जरा सा भी वैभव प्राप्त होने पर आपे से बाहिर हो जाते हैं।

वि० स० १६६१ की बात है जब यहाँ श्री पन्नालाल जी स्वामी को चौमासा करवाना था। मैं पन्नालाल जी स्वामी को लेने के लिए अजमेर की ओर गया। हम दोना कौल साहब के बँगले मे ठहरे हुए थे। उस समय आनासागर मे मछलिया मारना शुरू हो गया। आर्य समाज के मत्री जियालालजी से यह सहन नही हुआ। उन्होने आन्दोलनकर मछलिया मारने का जोरदार विरोध किया। जब आन्दोलन से मारना बन्द नही हुआ, तब वे आगे बढे और अदालत की शरण ली। और अदालत मे कहा कि वर्षों से यहा मछलिया नही पकडी जाती है। यह केस कमिश्नर साहब के पास-चल रहा था। जियालाल जी दोपहर के समय हमारे पास आये। उस समय स्वामीजी और हम दोनो बैठे हुए थे। उन्होने आते ही कहा– स्वामीजी, यह काम तो आपका है और उसे मैं कर रहा हू। यहा आनासागर मे मछलिया मारी जा रही है। यह हत्या का काम रोकना जैनधर्म वालो का हैं। परन्तु आपके श्रावक नीद मे सो रहे हैं और तब यह काम हम लोगो को करना पड रहा है। मैंने कहा—मत्री जी, यह काम हमारा ही नही, आपका भी है। क्योकि जिसके दिल मे दया है, वही यह काम कर सकता है। आप तो यह बताइये कि हमसे आप क्या चाहते हैं ? हम लोग बधे हुए है और जितना प्रचार कलपता है, उतना ही कर सकते हैं। हम लोग साधु की मर्यादा के बाहिर कदम नही रख सकते। उन्होने कहा—महाराज, हमारा इतना ही निवेदन है कि कमिश्नर साहब के पास आखिरी फैसला है। यदि किसी प्रकार आपका जरा सा भी इशारा हो जाय, तो इस काम मे बहुत जल्दी सफलता मिल सकती है। हमने कहा—मत्री जी, हमे इस बात मे कोई ऐतराज नही है। हम मर्यादा से प्रेरणा कर सकते हैं। यह तो दया

का काम है। डॉ० सूरजनारायण जी, जो आज भी मौजूद हैं, वे भले आदमी है। हर एक साधु-सन्त की सेवा करते हैं। जो कोई भी उनके पास जाता है तो गरीबो से पैसा नही लेते हैं। उस समय वे विक्टोरिया अस्पताल मे डाक्टर थे। वे हम लोगो के पास आते जाते थे। हमने उनको बुलवाया। वे आये और बोले— महाराज, क्या सेवा है? मैं ने कहा—डाक्टर साहब, आपके जो बहनोई जी हैं वे कमिश्नर साहब के सेक्रेटरी हैं। यदि उनको याद दिला दिया जाय तो वे कमिश्नर साहब से इस मर्यादा का पालन करा सकते हैं। जाति के वे भी पचोली और वे भी पचोली थे। उन्होने कहा कि मैं उन्हे लाकर कल हाजिर कर दूंगा। यह कहकर वे चले गये। दूसरे दिन हम पचमी को गये। कमिश्नर साहब की कोठी की ओर दूर चले गये। मैंने पन्नालाल जी स्वामी से कहा कि कमिश्नर साहब की यही कोठी है। यदि हम लोग चलें और उन्हे दो शब्द कह देवें तो क्या हर्ज है। उन्होने भी हा भरी और हम दोनो वहाँ गये। वहाँ पर गोरे सिपाही पहरा लगा रहे थे। ब्रिटिश शासन काल मे गोरे लोग ही कर्ता-धर्ता थे। सन्तरी से कहा कि हम लोग कमिश्नर साहब से मिलने आये हैं। उसने कहा—मैं कोठी के अन्दर जाता हू। यदि इजाजत मिल गई, तो आप लोगो को ले जाऊगा। उसने कोठी के भीतर जाकर कहा—हुजूर, जैनियो के पादरी आये हैं। कमिश्नर साहब ने अन्दर ले आने की इजाजत दे दी। हम लोग जब भीतर पहुँचे तो वह गोरा अंग्रेज कमिश्नर भी उठकर सामने आया। उसने अंग्रेजी मे पूछा कि आप लोग कैसे आये हैं। वहाँ दुभाषिया एक मुसलमान था। उसने हमारी बात कमिश्नर साहब को समझाई कि ये जैनियो के साधु हैं। आनासागर मे जो मछलिया पहिले नही मारी जाती थी और अब मारी जा रही हैं। यह बात पूर्व की मर्यादा के विरुद्ध है। ये लोग उसी के लिए कह रहे हैं कि मछलियाँ नही मारी जानी चाहिए। आप इस कमिश्नरी के मालिक हैं। यदि आपके द्वारा उन मूक पशुओ का सरक्षण हो जाय, तो बहुत अच्छा हो। उस मुसलमान ने भी अच्छी रीति से समझाया कि साहब, ये जैन के साधु स्त्री और पैसा नही रखते हैं और सदा ही नगे पैर चलते हैं, कभी किसी सवारी का उपयोग नही करते हैं, आदि। यह बात कमिश्नर साहब के हृदय मे जम गई। कमिश्नर साहब ने अपने दुभाषिये से कहा—बाबा को कह दो, कि यह काम हो जायगा। मेरा जो क्लर्क है वह मेरे सामने पहिले फाइल रख देगा तो मैं यह काम कर दूंगा। जब हम लोग कमिश्नर साहब की कोठी मे कौल साहब

के बगले की ओर आ रहे थे, तब स्वामीजी ने कहा—उनका क्लर्क ओसवाल है, चलो उसे भी कह दें। मैंने कहा— अच्छी बात है चलिए कह देवें। हम लोग उनकी हवेली पर गए और कमरे मे ज्यो ही पैर रखा तो देखा कि कवर साहब आराम कुर्सी पर पैरो पर पैर रखे हुए अखबार पढ रहे हैं। वे हमे देखकर उठकर खडे भी नही हुए, तो फिर नमस्कार करने की तो बात ही क्या थी। तब हम दो चार मिनट ठहरे, क्योकि हम तो कार्य के लिए गए थे। मैंने कहा—स्वामीजी, क्यो समय बिगाड रहे हो क्या कहेंगे इससे। जब हम लोग पीछे लौटने लगे, तब वह बैठे-बैठे ही कहता है कि कहिए महाराज क्या बात हैं? आप कैसे आये? भाई, मेरी प्रकृति तो आप लोग जानते ही है कि खराब है। मैंने झट से कहा कि भाई, आज ओसवालों के भीतर कैसे कुपात्र पैदा हो गये है, उनका नाम अपनी लिस्ट मे लिखने के लिए आये है। यह सुनते ही वह उठकर खडा हुआ और कहने लगा—महाराज, मैंने पहिचाना नही था। मैंने कहा—हमको क्या पहिचानोगे? परन्तु इस चपरासी को पहिचाना, या नही? कोई भी व्यक्ति यदि अपने घर मे आ जाय, तो उसका मान रखना चाहिए। अरे, तेरी आंखे ही नही खुली? और तू खडा भी नही हुआ। तुझे क्या मिलता है? केवल सौ सवा सौ रुपए। और कमिश्नर साहब को क्या मिलता है? परन्तु उनमे नर्माई और भलमनसाहत कितनी कि उठकर वह हमारे सामने आया? और तू घर का आदमी। तेरा बाप प्रतिदिन व्याख्यान सुनता था और सामने आकर बैठता था परन्तु तेरे मे तो विनयपना रत्तीभर भी नही है। तेरे मे तो धर्म-वात्सल्य ही नही है, फिर धार्मिक भावना कहाँ से उत्पन्न होगी? अब यदि उससे कहे कि दया पालो तो वह क्या दया पालेगा? जिसके हृदय मे विनय और नम्रता नही, प्रत्युत कठोरता है, वह दया नही पाल सकता है। यदि समझाने वाला मिल जाय और सामने वाले मे पात्रता हो तो उसका हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। यही धर्मध्यान और शुक्लध्यान का एक मार्ग है। उस मार्ग पर आना ही धर्म का रास्ता है।

धर्म-प्रेमी बन्धुओ, अब यह धर्मध्यान का अवसर आ रहा है। भरिया भादरवा और उसमे पर्युषणपर्व आने वाला है। बस, दो दिन रहे हैं। आप लोगो को भी धर्मध्यान के लिए तैयारी करना जरूरी है। परन्तु जो लोग अभी तक अधिक धर्मध्यान नही करते हैं, जिनके चरित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम नही पका है, और अभी मोहकर्म के उदयभाव का जोर है और धर्म-सेवन मे अपनी कमजोरी और कायरता प्रकट करते है, उन्हें भी कम से

कम आठ दिन तक जूते तो नही पहिनना चाहिए। उघाडे मुख बोलना, कच्चा पानी पीना, पान खाना, आठ दिनो मे रात्रि को भोजन करना, नशीली वस्तुओ का सेवन करना छोडना चाहिये। इतनी बातें तो कम से कम पालना ही चाहिए। तथा मन मे यह भी भाव होना चाहिए कि हम आठ दिन तक सामायिक और प्रतिक्रमण करेंगे। आठ दिन तक नवकारसी, पोरसी, आयबिल, नीवी, एकलठाणा आदि जो भी बने, वह करना चाहिए। भाइयो, ये दिन बार-बार आने वाले नही हैं। समय पर धर्मध्यान करना अच्छा रहता है। ये किस कार्य के हैं—

ये दिन थांरे रे धर्मध्यान का रे।
तूं लोभ लालच मे किण विध लागो।
दान शीयल तप चौथी भावना, मिलिया तुझ ने रे म्होटा भागो।
थोड़ा दिनरो रे जोवन प्राहुणो।

मेरे धर्मस्नेही भाइयो, कवि क्या कहता है कि यह यौवन थोडे दिनो का है। अरे, जब तुम जन्मे थे तो मुख पर बाल नही थे,केवल सिर पर थे। जब थोडे बडे हुए तो देखा कि अब तो मूछो पर बट देना भी शुरू कर दिया और बिच्छू की पूछ जैसी टेडी रखने लगे। आज कल तो मूछोवाले थोडे ही हैं, परन्तु प्रतिदिन सेफ्टीरेजर और उस्तरा फेरना तो पड़ता है। तो ये दिन भी जाने मे देर नही है। अब ये बाल तुम्हारे धोले हो गये हे, वे जैसा कहें, वैसा करो। ये धोले बाल तुमसे कह रहे हैं कि—

"जब जोवन का माल था ग्राहक थे बहु लोग।
अब बुढापा आ गया, भया बलीता जोग"

भाई, बलीता होने के बाद इस लकडी का कोई मूल्य नही रहेगा। जब तक इसकी कीमत है, तब तक ही सब ठीक है। तभी तक सब कुछ कर सकते हो। ये पर्युषण के दिन तुम्हारे धर्म-साधन के हैं। अब और लोभ-लालच मे मत पडो और कहो कि महाराज, आठ-नौ दिन तक व्यापार बन्द रहेगा और गली-कूचे मे जाकर जूआ, ताश आदि नही खेलेंगे। अरे, जूआ-खेलने मे जो पैसा आता है, वह बहुत तीव्र अन्तर्ध्यान बढाता है। यदि जूआ खेल कर तुम लखपति बनना चाहते हो तो युधिष्ठिर, पाडव और राजा नल जैसे भी कगाल हो गये, तो तुम क्या लखपति बन जाओगे? जुआ कोई व्यापार नही है, इस बात को मनसे निकाल दो।

अरे, यह तो पापोपार्जन करानेवाला, आर्त और रौद्र ध्यान पैदा करने वाला महापापों का व्यापार है। यह नया धन-उत्पादन नहीं है किन्तु आपस में ही एक दूसरे की जेब काटना है, छीना-झपटी है। इसलिए इन दिनों में इसका भी सर्वथा त्याग करो। जो धर्म कार्य शरीर से करने के हैं, उन्हें शरीर से करो और दूसरों को भी करने के लिए प्रेरणा दो। इन दिनों में धर्म-साधन करने का और धर्मोपार्जन का ही लक्ष्य होना चाहिए। जिन लोगों को धर्म-साधन में रस नहीं है, दिलचस्पी नहीं है, उनमें उनको रस पैदा करना चाहिए, उनकी रुचि को जानना चाहिए। उनको अपने साथ स्थानक में लाओ और धर्म की ओर प्रवृत्ति बढाने का प्रयत्न करो। तो ये दिन सार्थक हो जावेगे। इन दिनों में किया हुआ धर्मोपार्जन बारह मास तक काम देगा। भाई, यह समय धर्म की कमाई करने का है, खाने-पीने का नहीं। आप लोग कहते हैं कि दया करो—दया करो। परन्तु दया किसे कहते हैं, यह पता नहीं है। अरे, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकाय, इस छह काया वाले जीवों की रक्षा करना ही दया कहलाती है। यह आठ पहर की दया है। पहिले कैसी दया थी? पहिले के लोग आठ पहर का परिपूर्ण पौषध ही करते थे और उसी को दया कहते थे। अब आठ पहर का पौषध चला गया और चार पहर का ही रह गया है। धीरे धीरे इसमें भी जोर पड़ने लगा तो एक समय भोजन करके, ग्यारह सामायिक करने और खुले मुख नहीं बोलने को ही दया कहने लगे। आजकल तो कोई कोई महानुभाव दिन को एक बजे आकर ही दया पचखते हैं और जीम कर घर पर चले जाते हैं। यह तो एक प्रकार से दया की परम्परा ही बिगाड़ दी है। इसे बिगाड देने से बहुत से भाई दूर जा रहे हैं। आप लोग यह नहीं समझें कि आगे की पीढी दया नहीं करना चाहती है? परन्तु जब उसे इस काम में कुछ रस प्रतीत होवे तो वह करे। पहिले भोजन एक समय करते थे, जैसा भी घर से आ गया, वैसा ही खा लेते थे। धीर धीरे थोडा मसाला बढना शुरू हुआ और अब तो बढते-बढते यहां तक हो गया कि पानी भी घरों से आना बन्द हो गया। थानकों में बड़ी बडी गगालें और कोठियो भरी जाने लगी और उनमें राख डाल कर उसे धोवन माने जाना लगा। अब तो इन धर्म के आठ दिनों में आरम्भ-समारम्भ की हजारों वस्तुएं आने लगी हैं और दया का केवल नाम रह गया है। कुछ व्यक्ति ठीक रूप से करते हैं, परन्तु पाच-सात पहर की ही दया करते हैं। परन्तु उनके साथ भी बन्दर फौज लग जाती है तो वे भी आजाते हैं। फिर तो दया की ही दया हो

जाती है। अब यह उस पर और वह इस पर धूल उछालता है। जो यह तमाशा देखते हैं, वे दया की मजाक उड़ाते है। जो हमारा व्रत है, उसकी शोभा रखना और हंसी-मजाक का विषय नही बनने देना यह बात अपने ही हाथ मे है। जो लोग दया मे एक साथ भोजन करते है, मैं उसमे अन्तराय नही देता हू। परन्तु यह तो ध्यान रखना ही चाहिए कि यह भोजन व्रत-धारियो का है, अव्रतियो का नही है। उसमे जो आठ पहर की दया पाले उन्हे ही भोजन करना चाहिए। उन लोगो के खाने के बाद यदि बच जावे तो आप अपने बच्चो को भी भोजन करा सकते हैं। जो लोग दयाव्रत के पालन-करने के लिए प्रवृत्ति करें उन्हे चाहिए कि वे सूर्योदय के साथ स्थान मे आवें, जो भाई अकेले है और पूर्ण-रूप से दया-पालन करने मे असमर्थ हैं उन्हे भी व्याख्यान मे तो आना ही चाहिए और उस समय मे दया को पचख लेना चाहिए। सभी लोगो की एक सरीखी परिस्थिति नही होती है। मेरा कहना यही है कि दया की पचरगी या अठरगी कुछ भी करो, इस बात को कहने की मुझे आवश्यकता नही है। मैं आप लोगो को क्यो कष्ट दू ? जो आप लोग करेंगे उसका फल आपको मिलेगा और मेरे किये हुए का फल मुझे मिलेगा। यदि मेरे आग्रह करने पर संकोच से— बिना मन के आप लोग कर भी लेंगे तो उसका क्या लाभ है ? जो भी आप लोग करे, वह मर्यादा से और भाव से करें। विधिपूर्वक ही दया करो, ताकि वह शोभायमान होवे, आप लोगो को भी लाभ मिले और हानि न होवे और लाभ कम होवे, तो उसे गोठ कह सकते है, दया नही। उसके लिए तो और भी दिन हैं। कभी भी कर सकते हैं। परन्तु ये आठ दिन तो धर्म-साधना और धर्माराधना के ही हैं। इन दिनो तो पूरे आचार और विचार के साथ रहना चाहिए। ये तो शरीर से जूझने के दिन हैं, इसलिए हर प्रकार से शरीर के साथ जूझना ही चाहिए और खान-पान का, गमनागमन का, बोल-चाल का और शयनासन का अधिक से अधिक नियन्त्रण रखकर सयम का पालन करना ही चाहिए।

आप लोग मन मे सोच रहे होगे कि महाराज हमको ही हमको कहते हैं। परन्तु इन दिनो आप तो कुछ भी नही करते हैं। भाई, ऐसी जिनकी भावना हो, वे पधार जावे, उनसे हमे कुछ भी नही कहना है। अरे, आप लोगो से पीछे तो हम भी रहने वाले नही हैं। किन्तु इन दिनो हमे आप लोगो की सेवा भी करना है, आपकी हाजिरी बजाना है और भगवान की वाणी भी सुनाना है। फिर भी कहो कि जितना महाराज करेंगे, हम उतना

ही करेंगे। तो यह तो हम पहिले से ही सीखे हुए हैं—हम पीछे रहने वाले नही हे। आप जैसा कहे, वैसा करने के लिए तैयार हैं। हम तो त्याग को ही करने वाले है, भोग को करने वाले नही हैं। हम आपके गुरु हैं, आप हमारे नही हैं। हमे हमारे गुरुपने का सदा ध्यान है। और हम सदा ही अपनी मर्यादा से चलते हैं और अपने व्रतो को पूरी निष्ठा से पालते है। भाइयो, जिन-जिन पुरुषो ने त्याग किया है उन उनको धर्म का फल मिला है और आप लोग त्याग करेंगे, तो आपको भी उसका फल अवश्य ही मिलेगा।

अन्त मे मुझे इतना ही कहना है कि ये पर्युषण के पवित्र दिन धर्मध्यान ध्याने के है। भावना को शुद्ध रखकर, वृत्तियो को सयत करके आत्मा की ओर बढने के दिन है। जब हमारा मन शुभ विचारो मे लीन होगा तो धर्म ध्यान बढेगा, और तब आत्मा का दर्शन हम कर सकेंगे। जिन्हे आत्मदर्शन करना हो, वे धर्मध्यान का मार्ग अपनावे।

६

जीवन का लक्ष्य

मानतीय सज्जनो, मानव का एक ही लक्ष्य होना चाहिए। लक्ष्य कहते हैं निशान को, लक्ष्य कहते हैं चिह्न को और लक्ष्य कहते हैं दृष्टि विन्दु के स्थिर करने को।

आत्मा का लक्ष्य क्या है ? आत्मा का लक्ष्य आत्म-स्वरूप की प्राप्ति करना है। जो मनुष्य अन्य वस्तुओ को अपना लक्ष्य बनाते है, वे सारे लक्ष्य भौतिक हैं, आध्यात्मिक नही हैं। युद्ध मे मनुष्य अपने शत्रु पर विजय प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, कोई प्रेमी अपने प्रेमी या प्रेमिका को पाने का लक्ष्य रखता है, कोई व्यापारी व्यापार करते समय धनोपार्जन का लक्ष्य रखता है। कोई रसायनशास्त्री नवीन रसायन के उत्पादन या अन्वेषण का लक्ष्य रखता है और कोई खगोलशास्त्री नवीन ग्रह आदि की खोज करने का लक्ष्य बनाता है। इस प्रकार भौतिक लक्ष्य एक नही, अपितु अनेक होते हैं। यदि ये लोग अपने-अपने लक्ष्यविन्दुओ की प्राप्ति मे सफल हो जाते, तो वे भी ससार मे ख्याति प्राप्त कर लेते हैं। आज सारे भारत भर मे यदि निशानेबाजी मे किसी का नाम प्रथम लिया जाता है, तो बीकानेर नरेश महाराज कर्णसिंह जी का नाम लिया जाता है, और जिसका निशाना कभी खाली नही जाता, उसका ही नाम सबसे पहले लिया जाता है। परन्तु यह लक्ष्य किसका है ? इन कर्मों के बन्ध का लक्ष्य है, भौतिकता है। निशानेबाजी आदि कला अवश्य है, परन्तु उसके साथ ही वह विफला ही नही, अपितु दुष्फला है, सफला नही है। किन्तु आत्मस्वरूप की प्राप्ति का लक्ष्य सफला कला है।

आत्मा की पहचान

यहा प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा का लक्ष्य क्या है ? इसका उत्तर

है— आत्मा का लक्ष्य आत्मा ही है। कैसे ? जैसे कि आपके सामने कोई वस्तु है, उसको तत्सदृश अन्य वस्तु की उपमा दी जाती है। जैसे किसी के सुन्दर स्वच्छ और गौर वर्ण मुख को देखकर उसे चन्द्र-तुल्य कह दिया जाता है। कही पर कोई उपमेय वस्तु भी उपमान हो जाती है और कही पर कोई उपमा उपमा ही रहती है। कही छोटी वस्तु को भी बडी उपमा दी जाती है, जैसेकि हरिया कैसे ? पन्ना जैसे। गेहू कैसे ? खारक गैसे। मक्की कैसी ? मोहर जैसी और जुवार कैसी कि मोतियो जैसी। अब विचार कीजिए कि कहा तो पन्ना, मोती, मोहर और खारक ? और कहा हरिया, जुवार, मक्की और गेहूं ? फिर भी उक्त उपमाए दी जाती है, अत यह छोटी वस्तु को बडी वस्तु की उपमा देना कहलाता है । कही पर बडे पदार्थ को छोटी वस्तु की उपमा दी जाती है । जैसे —यह तालाब कैसा भरा हुआ है ? कटोरे जैसा। अब आप बतलाइये कि तालाब बडा या कटोरा बडा ? परन्तु उपमा दी कटोरे की। भाई, उपमा एकदेशीय दी जाती है। हरिए को पन्ना कहने का अभिप्राय यह है कि हरिए का जो हरापन और प्रतिभा है, वह उसमे भी है और उसमे भी है। मक्की का पीलापन मोहर जैसा है, जुवार के दाने मोती के समान गोल एव श्वेत वर्ण के होने से उसे मोती की उपमा दी जाती है। कटोरे के समान गोल और जल से भरा होने के कारण तालाब को कटोरे की उपमा दी जाती है। न्यायवान्, प्रजा-प्रतिपालक राजा को उपमा दी जाती है ईश्वर की। अर्थात् यह राजा ईश्वर का अवतार जैसा है। गुरु को भी उक्त गुणो के कारण ईश्वर की उपमा दी जाती है। परन्तु ईश्वर को उपमा किसकी दी जावे ? भाई, इश्वर को उपमा देते है ईश्वर की और साधु को उपमा दी जाती है साधु की। जहाँ पर उपमेय के समान उपमान रूप भिन्न वस्तु दृष्टिगोचर नही होती है, वहा पर उसे उसी की ही उपमा दे दी जाती है। इन सब उपमाओ के देने मे तद्वस्तुगत धर्म का सादृश्य अपेक्षित है। बस, यह सादृश्य ही उस उपमा का लक्ष्य बिन्दु है।

लक्ष्यहीन मूर्ख है

आप लोग भी यहा पर जितने आये हैं, तो किसी लक्ष्य को लेकर आये हैं। सभी लोग एक ही लक्ष्य को लेकर नही आये हैं, किन्तु सभी के लक्ष्य भिन्न-भिन्न है। यदि आप कहें तो सबके लक्ष्य प्रकट कर दू ? और न कहे, तो ज्यो का त्यो रहने दू । यहा पर सभी मुक्ति-प्राप्ति का लक्ष्य लेकर नही आये हैं, कोई किसी भावना से और कोई किसी भावना से आया है। परन्तु

सबका कुछ न कुछ लक्ष्य अवश्य है और उसे लेकर आये है। यदि कोई लक्ष्य नही, तो वह वस्तु ही क्या है ? जैन कवि बनारसीदास जी कहते हैं—

काज बिना न करे जिय उद्यम, लाज बिना रण माहि न जूझे,
डील बिना न सधे परमारथ, शील बिना सतसो न अरुझे।
नेम बिना न मिले निहचै पद, प्रेम बिना रस-रीति न बूझे,
ध्यान बिना न थंभे मन की गति, ज्ञान बिना शिवपथ न सूझे ।।

बनारसीदास जी कह रहे हैं कि कोई आदमी चतुर है, होशियार और विचक्षण है तो वह उद्देश्य या लक्ष्य के बिना कोई काम नही करता है। कोई न कोई काम तो वह पहिले सोच ही लेता है कि यह काम मुझे करना है। फिर वह उस कार्य को पूरा करने के लिए अपने दिमाग की सारी शक्ति लगा देता है और उसका कार्य भी सम्पन्न हो जाता है। यदि उसके सामने किसी कार्य को करने का कोई लक्ष्य नही है और दिमाग पर जोर देता है एव नयी-नयी योजनाए खडी करता है, तो वे सबकी सब पानी के बुदबुदो के समान है। उन बुदबुदो की बुनियाद ही क्या है ? एक हवा का झोका लगते ही सारे के सारे विला जाते हैं। किसी लक्ष्य को सामने रखे बिना दौड-धूप करना बेकार है। मारवाडी की कहावत है कि 'दिन भर पराल कूटिया, साझ को कुछ न मिला'। पराल कूटने मे परिश्रम किया, इसलिए उसका फल कुछ भी नही मिला। कोई यह सोचे कि मुझे निकम्मा नही बैठना है, अत वह किसी पर्वत पर चढे और उतरे और इस प्रकार चार दिन भी बिता दे। फिर उससे यदि कोई पूछे कि तुमने इन चार दिनो तक पर्वत पर चढने और उतरने मे क्या सिद्धि प्राप्त की ? उत्तर मिलेगा कि कुछ भी नही ? किन्तु समझदार मनुष्य ऐसा नही करेगा। वह तो किसी न किसी कार्य को लक्ष्य मे लेकर ही कार्य करेगा। किसी कार्य का लक्ष्य रखे बिना उद्योग नही होता है। यदि वह उद्योग है तो ठीक उसके स्तर पर आ सकता है। कार्य प्रारम्भ करने पर मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की परिस्थितियां उपस्थित होती है, परन्तु वह अपने अध्यवसाय से उन सब पर विजय पाकर के अभीष्ट लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है। किन्तु जिन मनुष्यो का लक्ष्य निश्चित नही है, कभी कुछ लक्ष्य बनाते हैं और कभी कुछ ? कभी इस दिशा मे प्रयत्न करते हैं और कभी उससे विपरीत दिशा मे प्रयत्न करते हैं, तो क्या वे मनुष्य अपने लक्ष्य को सिद्ध कर सकते हैं ? कभी नहीं।

इसी प्रकार जिन शूर-वीरो की आखो मे लाज-शर्म नही है, तो क्या वे युद्ध के मैदान मे ठहर सकते हैं ? कभी नही। चलते हुए किसी दीवाल आदि

की ठोकर लगते ही जिनके सामने अधेरा छा जाता है, वे लोग क्या वहा क्षण भर भी ठहर सकते है—जहा पर कि युद्ध हो रहा है और एक के ऊपर एक घातक शस्त्रो का प्रहार हो रहा है। परन्तु जिनकी आँखो मे लाज-शर्म है और देश-धर्म की आन-बान है, वे एक से एक बढकर शस्त्रो के प्रहारो से शरीर के जर्जरित हो जाने पर भी युद्ध क्षेत्र मे डटे रहते है, क्योकि उनका लक्ष्य है जल्दी से जल्दी दुश्मन को पराजित करने का। जब तक वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर लेते, तब तक भले ही उनके हाथ-पैर कट जायें, या सिर ही छिन्न-भिन्न हो जाय, परन्तु वे रण-क्षेत्र से वापिस लौटने का विचार भी मन मे नही लाते है। यदि आप मे से किसी को चलते समय ठोकर लग जाय, तो आपके आखो के सामने अधेरा छा जायगा और आप वही पर बैठ जावेंगे। पर जहाँ पर गोलियो की बौछार हो रही है, और वे शरीर के आर-पार होकर निकल रही है, उस दृश्य को देखकर तो आपकी आखें ही बन्द नही हो जायेगी, किन्तु होश भी गायब हो जावेंगे। परन्तु वैसे रण के मैदान मे वही सीना तानकर खडा रह सकता है, जिसकी आखो मे लाज है। वह सोचता है कि मुझे मर मिटना है, परन्तु मैदान नही छोडना है।

एक व्यक्ति व्यापार करता है। व्यापार करते हुए उसके सामने अनेक प्रकार के उतार-चढाव आते है। यदि उस समय वह लडखडा जाय, तो क्या वह व्यापारी कहा जायगा ? नही। परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति के आने पर लज्जाशील व्यापारी सोचता है कि मर मिटू गा, घर फूक दू गा, किन्तु हटू ँगा नही, वह व्यापारी है। यदि कमाई नही हुई और गाल फुला लिये और हाथ ऊचे कर दिये, तो उसे व्यापारी नही कह सकते है। इसी प्रकार किसी ने साधुपना लिया, तो उतार-चढाव तो आते ही रहते है परन्तु जो लज्जाशील है, तो वह धर्म पर मर मिटेगा, पर इधर से उधर नहीं होगा। मनुष्य का तो सारा जीवन ही सघर्षमय है। आप कहते हैं कि हमको आराम नही मिला। अरे भाई, सुख और आराम तो मूर्खों के लिए हैं। विद्वान् और समझदारो के लिए आराम और सुख कहा। उनका तो सारा जीवन ही सघर्षमय रहता है। एक सघर्ष को पार करते ही दूसरा सघर्ष सामने आ जाता है और उसको पार करते ही तीसरा सामने आ खडा होता है। ज्ञानी पुरुष को कहा चैन मिल सकती है ? यदि आराम करना है तो मूर्ख बन जाओ। कहा भी है —

> मूर्खत्व सुलभं भजस्व कुमते, मूर्खस्य चाष्टौ गुणा,
> निश्चिन्तो बहु भोजनोऽतिमुखरो रात्रिंदिवा स्वप्नभाक्।

कार्याकार्यविचारणान्ध - बधिरो मानापमाने समः,
प्रायेणाभयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुख जीवति ॥

मनुष्य सुख से,आराम तलवी से—मूर्ख बनता रहता है। हे सखे, तू मूर्ख है और तेरा मूर्खपना मुझको अच्छा लगता है, क्योकि मूर्ख बनने मे आठ गुण हैं। वे गुण क्या, अवगुण ही है, परन्तु नीतिकार ने उन्हे व्यग्य रूप से गुण कहा है। उनमे पहिला गुण है—निश्चिन्तता अर्थात् किसी प्रकार की चिन्ता का नही होना। मूर्ख मनुष्य को किसी प्रकार की चिन्ता का काम ही नही है। चिन्ता तो समझदार को होती है। कहा भी है —

चकवो चातुर चतुर नर, निशि दिन रहत उदास।
खर घू - घू मूरख पशु, सदा सुखी पृथीराज ॥

भाई, चिन्ता समझदार को होती है, मूर्ख को नही। कोई कार्य यदि उसके सामने हो, तो उसे उसकी चिन्ता हो। जब उसके सामने कोई कार्य है ही नही, तो उसे चिन्ता किस बात की होगी ? निकम्मे पुरुप को कार्य की क्या चिन्ता ?

दूसरा गुण मूर्ख मे बहु भोजन करने का है। जिसके आगे काम होता है, उसे भोजन कम भाता है। परन्तु मूर्ख के सामने जब काम नही, किसी प्रकार की कोई चिन्ता ही नही है, तब वह भरपेट भोजन क्यो नही करेगा ? करेगा ही। मूर्ख प्राय भोजन-भट्ट ही होते हैं, उन्हे भोजन से कभी तृप्ति नही होती, वे सदा भोजन मे ही मस्त रहेगे। भरपेट खा लेने के बाद भी यदि कोई परोसने वाला पूछे कि एक कचौडी और चाहिए, तो वह कहेगा कि यदि गर्म हो, तो ले आओ। मूर्ख मे तीसरा गुण रात-दिन सोते रहने का है। जब भरपेट खायगा, तो रात-दिन सोवेगा ही । चौथा गुण है मूर्ख मे अतिमुखरता का, अर्थात् व्यर्थ बकवाद करने का। बिना प्रयोजन भी वह हर एक व्यक्ति से बकवाद करता रहेगा। पाचवा गुण है भले-बुरे कार्य-अकार्य मे अन्धे और बहिरे होने का। मेरे लिए क्या अच्छा कार्य है और कौनसा बुरा कार्य है, इसका मूर्ख को विचार ही उत्पन्न नही होता। अत वह स्वय तो भले-बुरे की पहिचान करने मे अन्धा है और यदि कोई उसे भले-बुरे का ज्ञान कराना चाहे, तो दूसरे की हितकारी बात को सुनने मे वह बहिरा है, अर्थात् दूसरे की बात न सुनता और न मानता ही है। यदि कोई उसे किसी अच्छे काम को करने के लिए कहे, तो वह कहेगा कि यदि काम खराब हो गया तो, क्या होगा ? कोई दुकानदारी करने के लिए कहे तो उत्तर देगा कि यदि दिवाला निकल गया तो क्या होगा ? यदि पढने के लिए कोई कहे, तो वह कहेगा कि

यदि पढने मे भूल हो गई तो क्या होगा। यदि किसी से लडने को कहा जाय, तो उत्तर मिलेगा कि यदि कही मुझे चोट आ गई तो क्या करूगा ? वह सदा इसी प्रकार की निरर्थक शकाओ मे पडा रहता है, परन्तु किसी भी काम को करने का साहस या उद्यम नही करता।

मूर्ख मे छठा गुण है मान और अपमान मे समान रहना। उसको चार धक्के लगा दो, तब भी राजी और यदि फूलो की माला पहिना दो, तब भी राजी। उसे अपने मान-अपमान का कुछ भी भान नही होता है। फिर ऐसे मूर्ख मनुष्य प्राय रोगादि से रहित होते है, यह उनका सातवा गुण है। और जब वे खूब खायेंगे-पीवेंगे तथा निरोग रहेंगे—तो उनका शरीर दृढ बलिष्ठ होगा ही। यह मूर्खों का आठवा गुण है। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य तो सदा आनन्द, आराम या सुख मे ही रहता है। पर ज्ञानी जन तो आराम को हराम मानते हैं। प० जवाहरलाल नेहरू अपने जीवन के अन्तिम दिन तक २०-२१ घण्टे प्रतिदिन देश की सेवा मे लगाते रहे और उन्होने भारतवासियो को एक महान् नारा दिया था कि 'आराम हराम है।' ऐसे खा-पीकर मस्त पडे रहने वाले और रात-दिन सोने वाले पुरुष तो पशुओ से भी गये बीते है। क्या उनके ऐसे अकर्मण्यमय जीवन को अच्छा माना जा सकता है ? कभी नही। परन्तु जो चतुर विद्वान् पुरुष हैं और अपने लक्ष्य पर निरन्तर दृष्टि रखते है, वे तो सदा कार्य करने मे ही सलग्न रहते है। यदि उनमे लग्न नही है, तो काम भी नही कर सकते है। इसीलिए प० बनारसीदासजी ने कहा कि 'ढील विना न सधै परमारथ' यदि हमको परमार्थ करना है, सेवा करनी है, और आगे बढना है, तो शरीर की स्थिति पर ध्यान देना होगा। यदि किसी से उठना-बैठना भी नही बनता है, तो वह क्या परमार्थ का कार्य कर सकता है ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना तो निरोगी व्यक्ति ही कर सकता है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। अर्थात् शरीर ही धर्म का आदि साधन है। यदि शरीर स्वस्थ, निरोग एव बलिष्ठ नही है, तो धर्म-साधन करना सभव नही है। एक और भी कहावत है कि 'एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत' जिसका शरीर तन्दुरुस्त नही है, तो वह क्या परमार्थ कर सकता है ? अच्छे स्वास्थ्य वाला और निरोग शरीर वाला मनुष्य ही परमार्थ का साधन कर सकता है।

सच्चा स्वार्थ

लोग कहते हैं कि 'सच बोलो, सच बोलो'। मगर जब मनुष्य मे शील नही, आचार ही ठीक नही, तो वह क्या सच बोलेगा ? जिनके आचार-विचार ठीक हैं, वे ही सच बोल सकते है। जो भ्रष्टाचारी हैं, और दुनिया

की नजरो मे खराब हो गये हैं, अब उनसे कहो कि 'सच बोलो', तो वे पग-पग पर पकडे जावेंगे। उन लोगो ने अपने को झूठ के आश्रित बना लिया है, काम निकाल लो, जिस प्रकार भी बने, यही जिनके मन में भावना भर रही है, इसलिए लोग अपना स्वार्थ साधन करने के लिए झूठ बोलते है। पर वे यह नही जानते कि उनका यह आचरण वास्तविक स्वार्थ के ऊपर ही कुठारा घात का काम करता है। लोग धन कमाने और दुनियादारी के प्रयोजनो को ही स्वार्थ समझते हैं, पर यह उनकी बडी भारी भूल है, क्योकि स्वार्थ शब्द का अर्थ हैं—'स्व' अर्थात् अपने आत्मा का 'अर्थ' यानी प्रयोजन जिससे सिद्ध हो, उसे स्वार्थ कहते हैं। आत्मा का प्रयोजन सुख पाने का है और सुख सासारिक वस्तुओ की प्राप्ति मे नही है, क्योकि सासारिक वस्तुओ की ज्यो-ज्यो प्राप्ति होती जाती है, त्यो-त्यो ही मनुष्य की तृष्णा रूपी अग्नि प्रज्वलित होती जाती है। जिस प्रकार ईधन के मिलते रहने से अग्नि उत्तरोत्तर बढती जाती है, उसी प्रकार मनुष्य को ज्यो-ज्यो धन की प्राप्ति होती जाती है, त्यो-त्यो उसकी इच्छाएं भी उत्तरोत्तर बढती जाती हैं। कहा भी है—

'लाभं लाभमभोच्छा स्यान्नहि तृप्तिः कदाचन।'

लाभ के ऊपर भी लाभ होने पर इच्छाए और बढती हैं, मनुष्य की तृप्ति और उसकी इच्छाओ की पूर्ति कभी नही होती है। इसीलिए हमारे महर्षियो ने कहा कि ये सासारिक भोग, जिनकी प्राप्ति को ही यह मनुष्य अपना लक्ष्य मानता है वह सच्चा स्वार्थ नही है, क्योकि वह तो क्षणिक है, उसका अन्त निश्चित है और कर्म के अधीन उसकी प्राप्ति होती है। किन्तु सच्चा स्वार्थ तो वह है, जो कि अपने अधीन हो और स्थायी हो। कहा भी है।

स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुसां स्वार्थो न भोगः परिभगुरात्मा।
तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः॥

भगवान् सुपार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए समन्त भद्राचार्य कहते हैं कि मनुष्य का सच्चा स्वार्थ तो अपनी आत्मा मे आत्यन्तिक चरम सीमा को प्राप्त अवस्थिति है, जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य सर्व प्रकार की आकुल-व्याकुलताओ से सदा के लिए निवृत्त हो जाता है। ससार के ये क्षण-भगुर भोगो की प्राप्ति मनुष्य का सच्चा स्वार्थ नही है, क्योकि इनकी प्राप्ति उत्तरोत्तर तृष्णा को, आकुलता और व्याकुलता को बढाती है उससे सन्ताप की शान्ति नही होती। स्तुतिकार कहते हैं कि हे सुपार्श्व भगवन्, आपने इस प्रकार मनुष्यो को सच्चा स्वार्थ बतलाया।

त्याग : सत्य का या झूठ का ?

यदि आज आपको मैं कह दू कि आप लोग झूठ का त्याग कर दो, तो आप कहेंगे कि यह तो हमसे नही हो सकता है। महाराज, हमारे सारे काम झूठ से ही चलते हैं। अच्छा, आपसे झूठ का त्याग नही हो सकता, तो सच का त्याग कर दो। तब आप कहेंगे कि हाँ साहब, यह तो बन जायगा। परन्तु अरे पागल हो गए हो ! यदि झूठ का त्याग करोगे, तो जीवन भर निभाने मे दिक्कत खडी नही होगी, परन्तु यदि सच का त्याग कर दिया, तो उससे एक मिनिट भी नही निभा सकोगे। इसलिए सच मे जीवन है, झूठ मे नही है। देखो—यदि आपने सच का त्याग कर दिया और कोई आकर पूछे कि आप को भूख लगी ? आप कहेंगे—नही लगी। प्यास लगी ? नही लगी। दुकान मे माल है ? नही है। इस प्रकार तो सच के बिना आप एक मिनिट भी नही गुजार सकते। आश्चर्य की बात है कि जिसके बिना काम चल सकता है, उसका तो त्याग करने को आप तैयार नहीं और जिसके बिना एक क्षण भी काम नही चल सकता, उसके त्यागने के लिए आप तैयार होते है। भाई, सच को त्याग करने से न आपके खान-पान, रहन-सहन का काम चल सकता है और न व्यापार के लेन-देन का ही। इसलिए पहिले आप अपने आचार-विचार की शुद्धि करो।

पूर्व काल मे हमारे देश मे आचार था, धर्म में प्रवृत्ति थी, उस समय झूठ बोलने का नाम भी नही था। परन्तु ज्यो-ज्यो पाश्चात्य देशो के देखा-देखी हम उनके साचे मे ढलने लगे, त्यो-त्यो हमारी सारी शक्तिया समाप्त होने लगी और झूठ का सहारा लेना सीख गये। भाई जिन लोगो ने अपने कुल धर्म की मर्यादा भगकर दी है, वे क्या सच बोलेंगे ? कोई कहे कि हम तो पहिले उनको गुरु मानते थे और अब इनको मानते हैं। परन्तु तुम अपनी आत्मा से तो पूछो कि तुम्हारे लक्खन भी सुधरे या नही ? यदि मैं पूछू कि बहियें दो रखी या एक ? यदि दो रखी हैं, तो गुरुजी के पास जाकर के क्या किया ? अरे कुछ आगे बढ़े हो ? नही महाराज। जब आगे बढने का काम नही है, तो गुरु के पास आने से क्या लाभ ? अरे, गुरु तो पहिले अपने दिल को बनाओ कि मुझे सुधरना है ? फिर गुरु कोई भी हो, उनसे क्या लेना है ? क्या उनसे मुक्ति मिलेगी ? भाई, मुक्ति तो अपने आपको सुधारने से मिलेगी।

आप जानते हैं, करकण्डू ने क्या देखा ! एक साड को देखा और देखकर विचार किया कि यह पहिले कैसा हृष्ट-पुष्ट और नौजवान था, खाने-पीने को अच्छा मिलता था। परन्तु आज बुड्ढा हो गया है, तो इसकी कैसी

हालत बिगड रही है ? एक दिन मेरी भी ऐसी ही हालत होगी ? बस, उस बूढे बैल को देखकर ही वैराग्य आ गया। नग्गइ को आम देखकर ही वैराग्य आ गया और नमीरायऋषि को चूडी देखकर के वैराग्य आ गया। क्या ये लोग वैराग्य पाने के लिए किसी गुरु के पास गये ? क्या किसी का उपदेश सुना ? नही महाराज। तो बताओ—फिर वैराग्य कैसे आगया ? भाई, वैराग्य तो अन्दर की लगन से ही आता है। परन्तु आप तो नित्य नये गुरु बनाते हैं और सोचते हैं कि ये महाराज अच्छे है, वे महाराज अच्छे हैं आदि। अरे, वेश्या के साथी बनते हो, जो नित्य नए-नए पुरुष को ढूढा करती है। वे करकण्डु आदि महापुरुष तो एक के ही साथी बने, फिर दूसरे से क्या प्रयोजन ? स्त्री को जो पति मिल गया, उसके लिए तो वही इन्द्र के समान है। और पुरुष को जो स्त्री मिल गई, वही उसके लिए इन्द्राणी के समान है। कहा है—

> एके देवे सदा भक्तिर्यदि कल्याणमिच्छसि।
> मातुलं सप्तभिर्युक्त क्षुधार्त्त भगिनी सुत ॥

एक ही देव मे भक्ति हो, तो उसके ससार का किनारा आ सकता है। यदि अनेको देवो की भक्ति के चक्कर मे पड जाय, तो क्या कभी किनारा आ सकता है अरे, सात मामा का भाणेज सदा भूखा ही मरता है।

आपके भाई-बन्धु पहिले के हैं, परन्तु उनके पास पूजी पल्ले नही रही, तो उनको छोड दिया। और यदि आया कोई पाच हजार का आसामी, तो उसके पीछे फिरने लगे,उसकी हाजिरी बजाने लगे। परन्तु वे क्या देंगे ? ठेला ही देंगे। परन्तु आत तो जो अपने है, उनकी ही दुखेगी।

आज तो दुनिया मे डिब्बे का सोना है। पहिले पाच-पच्चीस तोला सोना बेटी-जमाई आदि को देते थे तो वह खरा होता था। परन्तु आज पचास सौ तोला भी सोना दिया जाता है, मगर उसको पीछे देखो तो क्या कितना निकलता है। एक गाँव का आदमी मद्रास से सीधा आया, तो ग्यारह तोले के गोखरू और तेरह तोले का कन्दोरा लेकर आया और दोनो सीधे मायरे मे रख दिये। लडकी के बापने सोचा कि अपने को क्या करना है, मायरे मे दिया है, तो मैं क्यो लू ? अत उसने कहा कि आप इन्हे अपनी दोहिती को पहिना दो। वे देकर वापिस मद्रास भी नही पहुच पाये कि इधर उनके अन्दर तांबा निकल गया। अरे, सोने की झोल भी नही, केवल ऊपर धुआ था। तो ऐसा पचास तोला भी दे दो, तो क्या है ? कुछ भी नही।

इस प्रकार आचरण की शुद्धि के बिना सत्यता कभी आ नही सकती। और सत्य के आये बिना चाहे जैन हो, वैष्णव हो, ईसाई हो, या मुसलमान हो, परन्तु सारा मामला खराब हो जाता है। बस, 'राम-नाम जपना और पराया माल अपना', तो इससे क्या होगा ?

एक सोनीजी की लडकी ससुराल से आई, उसके पास छिपा हुआ सोना था। अत उसने अपने भाई से कहा कि भाई, इसके गहने बना दे। उसने कहा—हा बाई, जैसा कहेगी, वैसा बना दूंगा। गहना बनाते समय बाई पास मे बैठ गई। वह बहिन उसके भाई की है और बेटी उसके बाप की है। जब वह गहना घडने लगा तब उसकी बहिन पास मे बैठकर देखने लगी। जब बूढे आदमी से कुछ काम नही होता है, तब वह राम-राम करने लगता है। यहां भी उस सोनी का बाप जोर-जोर से राम-राम बोलने लगा। लडके ने कहा—भाई जी, जोर से क्यो बोलते हो ? अरे, रामजी ने तो लका लूट ली। इसमे आप सब समझते है, क्योंकि आप लोग पक्के होशियार है। ऐसी बातो को तो इशारा आते ही समझ जाते है। और यदि हम भगवती सूत्र बाचें, तो उलझ जाओगे। ऐसे आदमी माला फेर लें, तिलक लगा ले, मुह पत्ती लगा ले और धर्म के धोरी बनकर बैठ जाये परन्तु उनके कारनामे तो देखो—

> एंडा मारे नें घडिया उड़ावे, सुद री बद करने दिखलावे।
> त्याग नहीं ज्यारे परनारो, ते श्रावक किम उतरें पारो॥

भाई, आडे मारना, घडिए उडाना, बदी की सुदी और सुदी की बदी करके और इसी प्रकार के अन्य और भी काम करके पैसा कमा लो औरभले ही राजी हो जाओ कि मैंने पैसा कमा लिया। परन्तु नीति कहती है कि—

> रहे न कोड़ी पाप की, ज्यो आवे त्यो जाय।
> लाखों का धन पाय के,मरे न खापण पाय॥

इसी भाव को एक सस्कृत श्लोक मे यो व्यक्त किया गया है—

> अन्यायोपार्जित वित्त दश वर्षाणि तिष्ठति।
> प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूल च विनश्यति॥

यदि आगे भवकी अन्तराय टूटी हुई हो, तो अन्याय से कमाया हुआ धन भी दश वर्ष तक अन्धाधुन्ध बढता रहता है। किन्तु ग्यारहवा वर्ष लगते ही वह सब अन्यायोपार्जन धन मूल पूंजी के साथ भी नष्ट हो जाता है। किसी की पूर्वकी पुण्यवानी यदि और अधिक जोर मारे, तो दस-पाच वर्ष तक और ठहरेगा, परन्तु जायगा वह अवश्य और मूल धन को भी साथ ले जायगा।

पाप की कमाई

आप लोगो को शान्तिपूर्वक विचारना चाहिए कि आपके बालपने मे और मध्य अवस्था मे लोगो की कितनी पीढियां चलती थी ? पाँच-सात पीढियाँ तक चलती ही थी और कही भाग्यवान की दश-ग्यारह पीढिया तक भी चलती थी। परन्तु आज तो लोगो की एक-दो पीढियाँ भी नही चलती हैं। किसी विरले धर्मात्मा का ही तीन-चार पीढी तक एक सा कारोबार और धन-वैभव का ठाठ-बाट चलता दिखेगा। धन-सम्पत्ति तो वही की वही है, जो पाप की कमाई होती है, उसका धपलका एकदम होता है पर वह चिर-स्थायी नही होता है और न कमाने वाला उससे कोई आराम भोग पाता है। कई पूजीपतियो को देखते हैं कि पूजी बढी, तो वे शरीर से लाचार या वेकार हो गये, वेटी ठीक, तो जमाई काल कर जाता है, वेटा उडाऊँ-खाऊँ और कुमार्गगामी हो जाता है। कहने का मतलव यह है कि अन्याय से धन कमाने वाले व्यक्ति के कोई न कोई दुख पीछे से लग ही जाता है। जब सकटो से घिर जाता है, तव चाहता है कि मर जाऊँ, तो अच्छा है। इन सबका मूल कारण यही है कि अन्याय का धन सदा ही दुख देता है। आपको अभी ऊपर से देखने पर ज्ञात नही होता है, किन्तु यदि छान-बीन कर देखेंगे तो मालूम हो जायगा। आप किसी स्थान पर न्याय से कमाने वाले पुरुष के घर के अन्न के दाने डालो तो डालते ही कबूतर आदि पक्षी चुग जावेगे और अन्यायी का दाना पक्षी नही चुगेंगे। कितने ही कुत्ते रोटी सूँघकर अलग हो जाते हैं, उसे उठाते या खाते नही हैं। इन पशु-पक्षियो मे भी इतना विवेक है कि यह वस्तु हमारे खाने के योग्य है और हमारे खाने को योग्य नही है।

आज के मानव का हृदय बहुत अधिक गडबडा गया है और दिन पर दिन लडखडाता जा रहा है। यदि अभी हम कहे कि आप लोग सच बोलो, तो आप कहा तक सच बोलेंगे ? सच बोलने की जगह हो तो बोले ? जगह ही नही, तो सच ठहरेगा कहा ? जो निश्चय पद लेना है और परम धाम पहुचना है, तो नियम धारण करो। उसके विना निश्चय पर नही पहुच सकते।

जिसके हृदय मे आपके प्रति प्रेम नही है, वह क्या आपके सुख-दुख की बात पूछेगा ? जिसके हृदय मे प्रेम होगा, वही पूछेगा। आज आप उदास क्यो हैं, पीले क्यों पड गये हैं, सूखते क्यो जा रहे है, आदि। भाई, ये बातें तो कोई अपना स्नेही-प्रेमी व्यक्ति ही पूछेगा।

लोग कहते हैं कि यह मन तो बड़ा चचल है। मैं पूछता हू कि मन की चचलता मिटाने के लिए ध्यान ही कब किया है। जब मनुष्य एकान्त,

शान्त स्थान पर बैठकर मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है, तब वह ठिकाने रहता है और उसकी चचलता दूर होती है। इसी प्रकार ज्ञान को प्राप्त किये बिना मोक्ष कैसा ? वह भी प्राप्त नही हो सकता।

लक्ष्य क्या हो ?

आज विषय है लक्ष्य का। हमारा लक्ष्य होना चाहिए परम धामका। यदि यह लक्ष्य स्थिर हो जाये, तो फिर ये भौतिकता की बाते हमारी दृष्टि मे आयेगी ही नही, वे सब दृष्टि से ओझल हो जायेगी।

एक समय की बात है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ अयोध्या पधारे। समवसरण की रचना हुई। देव, मनुष्य और पशु-पक्षी सभी प्रकार के भव्य जीव एकत्रित हुए और अपनी अपनी परिषद् मे आकर बैठे। अब भगवान् उपदेश दे रहे हैं, उनकी उस दिव्य अलौकिक, सर्वजीवहितकारिणी वाणी का क्या कहना ? और उसे सुनने वाले जीवो के आनन्द का क्या कहना। वे तो उस परम वचनामृत का पान कर हर्ष से गद्‌गद हो रहे थे। उस समय परिषद् के बीच भरत महाराज ने खडे होकर प्रश्न किया कि भगवन् ! मैं भव्य हू, या अभव्य हू। भरत का प्रश्न सुनकर भगवान् बोले—हे भरत, भव्य ही क्या, तू तो चरमशरीरी है, इसी भव मे मोक्ष जायगा। यह बात सुन कर सभी श्रोता आनन्दित हुए और अपने-अपने मन मे विचारने लगे—अहो, पिता तीर्थंकर और स्वय भरतराज चक्रवर्ती, ये तो कर्म काटकर मोक्ष मे जावेंगे। भगवान् ने इनकी तो हुडी सिकार दी। हमारी भी सिकर जावे, तो अच्छा है। भाई, सभा मे सभी प्रकार के जीव होते है, गेहू मे ककर भी निकलते है। सो उसी सभा मे बैठा हुए एक मनुष्य विचारता है कि अरे, यह कैसा जमाना आया है कि भगवान् हो, या तीर्थंकर हो, अथवा केवली हो, परन्तु यह खुशामद तो सब मे घुसी हुई है। देखो न, बेटा तो पूछने वाला और पिता है उत्तर देने वाला। बेटे ने पूछा कि मैं भव्य हू, या अभव्य ? पिता ने कह दिया कि तू तो इसी भव मे मोक्ष जायगा। पर विचारने की बात यह है कि जिनके रसोइघर मे चार करोड मन अनाज एक समय मे लगता है, इक्कीस लाख कोश मे जिनकी आज्ञा चलती है, एक करोड हलो से जो खेती-बाडी कराते है, जिनकी गजशाला मे चौरासी लाख हाथी है, जिनकी अश्वशाला मे अठारह करोड घोडे और लाखो रथ और करोडो सैनिक है और जिन्होने युद्ध करके सारे भारत को जीता है ऐसे महापापी और महा आरम्भी है। जब ये भी इसी भव मे मोक्ष को जा

सकते हैं, तब अपने को मोक्ष जाने मे घाटा ही क्या है ? हमे मोक्ष जाने से कौन रोक सकता है ? क्योकि न हमारे पास ऐसा भारी परिग्रह ही है, और न हम महा आरम्भी ही हैं। इस प्रकार वह मन ही मन मे विचार कर रहा था, पर होठो से वाहिर एक भी शब्द निकालने से डर रहा था। किसमे शक्ति है, जो सम्राट् के सामने बोल सके।

भरत महाराज भगवान की भविष्यवाणी सुनकर वहुत प्रसन्न हुए। और उन्होने एक दिन अपनी राज सभा मे सिंहासन पर बैठे हुये सभासदो से पूछा कि क्या भगवान ऋषभदेव के द्वारा की गई मेरे विषय की भविष्य वाणी आप लोगो के गले उतरी या नही ! यह कह कर उन्होने सभा मे बैठे सभी लोगो के ऊपर अपनी दृष्टि डाली, तो जहा सभी लोग भविष्य-वाणी की सत्यता के प्रति आत्म-सन्तोष और प्रशसा व्यक्त कर रहे थे, वहाँ पर एक मनुष्य को विषण्णमुख देखा और अनुभव किया कि इस व्यक्ति के हृदय मे भविष्यवाणी के विषय मे सन्देह है। आप लोग पूछेंगे। कि इतनी वडी सभा मे भरत राज को कैसे पता चल गया कि इस व्यक्ति के मन मे भविष्यवाणी के प्रतिकूल विचार उत्पन्न हो रहे हैं ? भाई, आज भी मनोवैज्ञानिक लोग दूसरे के मन की वात को मुख की आकृति देखकर जान लेते हैं। कि किसके मन मे क्या है क्योकि कहा है कि—

'वक्त्र वक्ति हि मनसम्' अर्थात् मुख मन के अभिप्राय को प्रकट कर देता है। फिर भरत चक्रवर्ती जिनको कि इक्कीस हजार कोश की सब बातो का ज्ञान है और जो वत्तीस हजार राजाओ पर शासन करते हैं, उन्हे इस वात के जानने मे क्या वडी वात है। आज भी अच्छा जज या पुलिस के अधिकारी अपराधी के चेहरे को देखते ही उसके अपराध करने की वात 'को असन्दिग्ध रूप से जान लेते है। तो भरत महाराज ने झट पहिचान लिया कि इसके मन मे भविष्यवाणी के प्रति सन्देह है। उन्होंने सोचा कि अरे, इसको अपने आपका कोई विचार नही है और सर्वज्ञ के वचनो पर भी विश्वास नही, तो यह वेचारा डूब जायगा। अत इसकी शका का निवारण कर देना चाहिए। राजसभा विसर्जित होने के पश्चात भरत महाराज अपने महलो मे चले आये और उन्होने सन्तरी से कहा कि अमुक मोहल्ले के अमुक व्यक्ति को लेकर मेरे पास लाओ। उसने जाकर उस व्यक्ति से कहा — सेठ साहव, अपको चक्रवर्ती महाराज याद फरमाते है। पहले के तो यदि एक गाव के ठाकुर का बुलावा आ जाता है, तो कहता है कि राम के घर क

पुकार आजावे, (यमराज का बुलावा आजावे,) तो कोई बात नही, परन्तु ठाकुर का बुलावा नही आना चाहिए। आजकल तो आप सब लोग राजा ही बन गये है, क्योकि भारत सरकार ने सब रजवाडो को समाप्त कर दिया है। पर राजा बनने का जो उत्तरदायित्त्व है, उसे भी कभी सभाला है, या नही ? आज कहने को तो सब कह देते है कि हमारी सरकार यह नही करती, वह नही करती। अब सरकार तो नही करती है, परन्तु आप लोग तो करो। आप तो स्वय राजा बने हुए हैं। अपने घर की शुद्धि करने का काम तो आपका ही है। अब दूसरो पर अवलम्बित रहने की आवश्यकता ही क्या है ? स्वतन्त्रता और स्वराज्य प्राप्ति तभी सार्थक और फलदायी होगी, जब आप लोग दूसरो पर अवलम्बित न रह कर अपने पैरो पर खडे होगे और दृढतापूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करेगे, तभी इस स्वतन्त्रता और स्वराज्य-प्राप्ति का आनन्द उठा सकेगे।

अरे, दूसरो का माल बटोर कर स्वय तो मालामाल होना चाहो और दूसरो को कगाल बनाना चाहो तो भला बताओ बेचारी स्वतन्त्रता क्या करेगी ? आज लोग टीका-टिप्पणी करते है कि सरकार ऐसी है, वैसी है, आदि। परन्तु अपने मन से तो पूछो कि वह भ्रष्टाचारी है, या न्यायी है ? तुम धर्म मे दृढ हो या अधर्म के सेवक हो, देश के वफादार हो, या देश के गद्दार हो। पहिले अपने दिल से पूछो। आज पाकिस्तान के कई जासूस, गुर्गे और एजेण्ट आते हैं और आप लोगो को सोना देते है। बोलो—आप लोग लेते हैं, या नही ? यदि लेते हो, तो बताओ—आप लोग देश के वफादार साहूकार हैं, या गद्दार चोर। चोरिया तो करो आप लोग और बुरा कहो सरकार को। आज लगभग ५० करोड भारत की आबादी है। इसमें अधिकारी कितने हैं। यदि एक-एक व्यक्ति के पास एक एक अधिकारी को खडा कर दिया जावे, तब हो सकता है कि चोर बाजारी बाद हो जावे। पर इतने अधिकारियो को लावेगे कहा से। जिनको भी अधिकारी बनावेंगे, वे भी तो आप लोगो मे से ही आवेगे। वे भी आपके समान ही भ्रष्टाचारी और चोर बाजारी जारी रखने वाले ही निकलेंगे। इसलिए यह सभव नही है कि एक एक व्यक्ति के पीछे एक एक अधिकारी खडा किया जा सके। आप लोग स्वय तो ऐसे कबाडे करते हो और दूसरो की पचायते करते हो कि वह ऐसा करता है, अमुक ऐसा करता है। भाई, पहिले तुम्हे सुधरना होगा और यदि तुम सुधर गये, तो तुम्हारे लिए तो स्वराज्य हो गया। तुम्हारे सुधरने के लिए कौन रोकता है ?

हा, तो भरत महाराज का बुलावा आने से वह सेठ घबरा गया और रोने लगा। तब सन्तरी ने कहा—भाई, चाहे रोओ या कुछ करो, पर तुम्हे तो मेरे साथ चलना ही पडेगा। आखिर वह सन्तरी के साथ आया। इधर भरत महाराज की सभा जुडी हुई थी। भरत महाराज ने उसे देखते ही कहा—इसे मेरे पास लाओ। परन्तु घबराहट के मारे उसके पैर ही जमीन पर पूरे नही जम रहे थे। तब चक्रवर्ती ने कहा भाई, घबराओ मत। एक काम के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है। वह कहने लगा—महाराज, मुझसे यह आपका तपस्तेज नही देखा जाता है। महाराज भरत ने सन्तरी को आज्ञा दी, कि कटोरा तेल का भरा हुआ लेकर आओ और इसके हाथ मे दो। कहने की देर थी कि सन्तरी तेल से लबालब भरा हुआ कटोरा लेकर उपस्थित हुआ। अब उस सेठ के हाथ पर वह कटोरा रख दिया गया और कहा कि सेठजी, आप शहर की सैर कर आइये। यह अयोध्या नगरी बडी विस्तृत है, इसके सोने के कोट और रत्नो के कगूरे हैं, साढे सात हजार मेले नित्य नये लगते हैं। जाकर देखो कि कौन सा मेला अच्छा लगा है, किसकी सजावट अच्छी है और किस वस्तु का क्या मोल-भाव चल रहा है? सबकी खरीद-बेच की रिपोर्ट लाकर मुझे दो। और हा, देखो सन्तरी, मेरे रणवास की सैर भी इसे कराना और प्रत्येक रानी के कमरे मे ले जाकर उनके रूप-सौंदर्य का पान भी इसे कराना, तथा मेरे रसोईघर मे ले जाकर छप्पन भोग का आहार करा करके मेरे पास वापिस लाना। इस प्रकार सेठ से कहकर भरत महाराज ने चार सन्तरी उसके चारो ओर लगाकर उन्हे आदेश दिया कि देखो, यदि इसके कटोरे से जहा पर तेल की एक बूंद भी बाहिर गिरे तो वही पर तुरन्त इसका सिर तलवार से उडा देना। पीछे इशारे से कह दिया कि यदि वह सारा तेल भी गिरा दे, तो भी इसका शिर मत काटना यह तो आख की पुतली है। इसमे तो सभी प्रकार की शक्ति भरी हुई है।

अब सेठ पहरेदारो के साथ शहर की सैर को चला। आगे का सन्तरी एक-एक मेले का, दुकान का और उनमे रखी हुई चीजो का नाम गुण और दाम बताता जाता है और हर वस्तु की प्रशसा करके उससे कहता है—सेठजी, कुछ तो खरीदो, जरा इस सुन्दर वस्तु को तो देखो। परन्तु सेठ का तो होश-हवाश कहा! वह मन मे सोच रहा है कि आज तो मौत आ गई? ऐसा तेल से लबालब भरा हुआ कटोरा कही बिना ढुले रह सकता है? चार सन्तरी नगी तलवारें लेकर साथ चल रहे हैं। भरत ने सीधे तौर से नही मारा और मारने के लिए यह उपाय सोचा है। सन्तरी हर बाजार की

प्रशसा करता हुआ उसे देखने के लिये कहता है, पर सेठ की आखे तो उस कटोरे पर लग रही हैं कि कही एक बूँद भी गिरी, तो फौरन मेरा सिर जमीन पर लुढकता नजर आयगा। सन्तरी भरत महाराज के रणवास मे भी ले गया और एक-एक महारानी के रूप-सौन्दर्य की प्रशसा करके उन्हे देखने के लिए कहता है। पर उस सेठकी नजर तो कटोरे से इधर-उधर नही हुई। इस प्रकार सारे राज-कटक, शहर और रणवास को दिखा कर पहरेदार शाम के समय उसे वापिस भरत महाराज के पास ले आये और वह भरतराज को नमस्कार करके सामने खडा हो गया। सम्राट् ने पूछा - कहो सेठजी, क्या-क्या देखा है, किस बाजार मे कौन सी वस्तु उत्तम थी, किसकी सजावट अच्छी थी और शहर मे कहा-कौन सी नई-पुरानी बाते चल रही है ? और मेरे रणवास मे कौनसी रानी सबसे अधिक सुन्दर है ? बताओ। सेठ बोला— महाराज, न कोई बात नई है और न पुरानी। मैंने तो कही पर कुछ भी नही देखा। मेरी आखे तो कटोरे पर लग रही थी, मेरा जीव उसी पर केन्द्रित था। मुझे तो हर क्षण यही भय लग रहा था कि कही एक भी बूँद भी ढुली कि मेरा सिर धड से नीचे गिरा। इसलिये मैंने तो इस कटोरे पर नजर उठाकर कही कुछ देखा ही नही है। मुझे तो यह भी पता नही कि कोई मेरे पास मे भी निकला है। महाराज, मेरी तो नजर प्राणो के भय से एक मात्र कटोरे पर थी, अत मै कही पर भी कुछ नही देख सका मैं आपको बाजार का क्या हाल-चाल बताऊँ और क्या चीजो का भाव-ताव कहू ? मैंने तो कही पर कुछ भी देखा है और न कुछ सुना ही है। मेरा ध्यान कटोरे के सिवाय अन्यत्र था ही नही।

उसकी बात सुनकर भरतराज बोले— तू होशियार आदमी है, ऐसा क्या कहता है कि मैंने कुछ देखा-सुना ही नही है। वह बोला—महाराज, मेरी सारी होशियारी तो काफूर हो गई। मुझे तो हर क्षण यह चिन्ता लग रही थी कि जीवित कैसे रह सकू गा। मुझे तो सामने मौत ही खडी हुई दिखती थी। भरतमहाराज ने कहा—अरे, क्या तुझे कुछ भी सुनाई नही दिया, इतनी लम्बी-चौडी अयोध्या नगरी घूम आया मेरा सारा रणवास भी देख आया और कोलाहल से भरे हुए बाजारो मे भी होकर आया ? पर तुझे इतनी भारी हलचल की कुछ खबर भी नही लगी ? तुझे कही पर कुछ दिखाई भी नही दिया ? वह फिर बोला महाराज, मैं सच कहता हू मुझे कुछ भी पता नही कि कहा क्या हो रहा था और कौन क्या कह रहा था। मेरा तो ध्यान अपने प्राण बचाने पर था, इसलिये मैंने सर्व ओर से अपना मन हटाकर इन कटोरे

पर एकाग्र कर रखा था। तब महाराज भरत कुछ मुसकराते हुए बोले—जैसे तेरा ध्यान इस तेल से भरे हुए कटोरे पर केन्द्रित था, इसी प्रकार मेरा भी ध्यान इस छह खण्ड के राज्य-सुख को भोगते हुए भी हर क्षण अपनी मौत पर लग रहा है और वह सामने खडी हुई मुझे हर क्षण दिखाई दे रही है, इसीलिए मैं सब कुछ देखते हुए भी कुछ नही देख रहा हूँ, सब कुछ खाते-पीते हुए भी उनके स्वाद को नही अनुभव कर रहा हू, हजारो राजरानियो के बीच रास-रग खेलते हुए भी प्रतिक्षण मुझे मेरी मौत ही सामने खडी दिखाई देती है कि एक दिन इस सब वैभव परिवार को छोडकर मुझे जाना है। ये ससार की वस्तुए न मेरे साथ आयी हैं और न मेरे साथ जाने वाली हैं। मैं इस सब ठाट-बाट को अपना नही समझता। राज्य शासन का जो भी कार्य मेरे द्वारा हो रहा है, वह सब विना मन के और उदासीन भाव से हो रहा है। मैं इस किसी भी भोग या उपभोग की वस्तु मे आसक्त या गृद्ध नही हूँ। मुझे तो प्रतिक्षण एक मात्र अपने ज्ञान-दर्शनमयी आत्मा को छोडकर और किसी का भान नही है। जैसा भगवान् आदिनाथ ने अपने उपदेश मे बताया है, उसी पर चौबीसो घण्टे मेरा ध्यान लगा रहता है। भगवान् ने बताया है—

एगो मे सासदो अप्पा ;णाण-दसण लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा॥

अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप मेरा एक मात्र आत्मा ही शाश्वत नित्य मेरा है। शेष बाहिरी पदार्थों का सयोग तो नदी-नाव के समान बन रहा है। पर-पदार्थ कोई भी मेरे नही हैं।

जैसे आज सारी जगह घूमते हुए भी किसी बात का कुछ पता नही है, ऐसे ही सारे भौतिक सुखो को भोगते हुए भी मैं इन सब से ठीक वैसे ही आलिप्त हू, जैसे कि जल के भीतर रहते हुए भी कमल उससे सर्वंग आलिप्त रहता है। इसीलिए भगवान् आदिनाथ ने जो मेरे विषय मे कहा कि तू इसी भव मे मोक्ष जायेगा, सो इसमे उनको मेरे पुत्रपने या चक्रवर्ती होने का कोई पक्ष नही है। वे तो वीतराग समदर्शी हैं। उनके ज्ञान मे जो बात जैसी देखी, उसे वैसी कहते हैं। तुझे यह शका मन मे आई थी न, कि भगवान् भी खुशा-मद-पसन्द और पक्षपात की बात करते हैं? उसने कहा हा महाराज, आई तो थी, परन्तु अब वह सारी निकल गई है। भरत महाराज ने उसे अभय दान देकर और यथोचित वस्त्राभूपण प्रदान कर उसे विदा किया।

आत्मा पर दृष्टि रखो

भाइयो, जैसे उस व्यक्ति के लिए थोडे समय को मौत सामने खडी हुई

दिखी, तो उसने सब कुछ देखते और सुनते हुए भी कुछ नही देखा--सुना। इसी प्रकार जो लोग अपनी आत्मा की ओर लक्ष्य रखते हैं और अपना उद्धार करना चाहते हैं, वे ससार के सभी काम भरत महाराज के समान अनासक्त या उदासीन भाव से करते है,भीतर उनकी दृष्टि सदा अपनी आत्मा के ऊपर ही लगी रहती है, उन्हे ही अन्तरात्मा या सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। प० दौलतरामजी ने उस समकिती जीव की अवस्था का वर्णन कितने सुन्दर शब्दो मे प्रकट किया है—

चिन्मूरति दृग्-धारी की मोहि, रीति लगत है अटापटी ॥ टेर ॥
बाहिर नारक-कृत दुख भोगै, अन्तर सुख-रस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि-सग, पै तिस परणति तैं नित हटाहटी ॥
ज्ञान-विराग शक्ति तें विधि-फल, भोगत पै विधि घटाघटी।
सदन-निवासी तदपि उदासी, तातें आस्रव छटाछटी ॥
जे भव हेतु अबुधके ते तस, करत बन्ध की झटाझटी।
नारक पशु तिय षढ विकलत्रय, प्रकृतिनिकी ह्वै कटाकटी ॥
संयम धर न सकै पै सयम-धारन की उर चटाचटी।
तासु सुयश-गुण की दौलत के, लगी रहै नित रटारटी ॥

जिनकी दृष्टि अपनी आत्मा पर लग जाती है, वे यदि दैवयोग से नरक मे भी उत्पन्न हो जावे, तो वहा पर नारकियो के द्वारा नाना दु खो के दिये जाने पर भी उनका उनको कुछ भी भान नही होता, किन्तु अपने आत्मिक रसको गटागट पीते हुए निर्विकल्प रहते है। यदि वह सम्यक्त्वी जीव स्वर्ग मे भी उत्पन्न हो जावे, तो वहा पर हजारो देवागनाओ के साथ क्रीडा करते हुए भी प्रतिक्षण उससे छुटकारा पाने के लिए आकुल रहता है। सम्यक्त्वी जीव घर मे रहते हुए भी सर्वकुटुम्ब-परिवार से उदास रहता है, इसलिए उसके नवीन कर्मों का आस्रव नही होता है। वह चारित्र मोहकर्म के उदय से यदि सयम को धारण न भी कर सके, तो भी सयम धारण करने की हृदय मे निरन्तर भावना रहती है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव प्रतिक्षण पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है और नवीन कर्मबन्ध को नही करता। भाइयो, सम्यक्त्व की महिमा अपरपार है, आप लोग इस सम्यक्त्व रत्न को अपने हृदय मे धारण करो।

सम्यक्त्वी जीव सदा आत्मलक्षी होता है। जिसके यह लक्ष्य हो गया, उसके ऊपर फिर कितनी ही आपदाएँ आवे, फिर उसे उनकी कोई चिन्ता नही रहती। कोई कहे कि इसका आसामियो मे इतना रुपया डूब गया,

तो आप सुनकर भी फिक्र नही करते हो। और जिसका डूब गया, तो वह भी विचार करे कि मैं किसका सोच करूं ? अरे, इधर से आया और उधर गया। ये तो खड्डे हैं, ये तो कभी परिपूर्ण होने वाले नही हैं। जिधर का खड्डा परिपूर्ण करना हो, बस इधर का उधर दो। आज हजारो-लाखो पोस्ट आफिस भारत-सरकार के भारत मे हैं। अब जहा जितनी रकम जमा हो जाती है, उसे जनरल पोस्ट आफिस मगवा लेता है ? तो क्या साधारण या ब्रान्च आफिसवाले रोवें कि अरे, हमने तो रुपये इकट्ठे किये और जनरल पोस्ट आफिस ने मगवा लिये। जिस प्रकार छोटे-छोटे पोस्ट आफिस वालो का रोना बेकार है, सार्थक नही है, उसी प्रकार तेरा रोना भी बेकार है। तुझे क्या अधिकार है कि जो वस्तु तेरी नही है, उसे तू रोक कर रखना चाहे ? किसी सेठ की चालीस दुकानें हैं और सब जगह काम चलता है। परन्तु जब कभी उसे रकम की जरूरत पडती है, वह किसी भी दुकान से मगवा लेता है। तो अब मुनीम क्यो रोवे कि मैंने इकट्ठा किया और सेठजी मगवा लेते हैं। भाई, सेठजी की पुण्यवानी कमाती है, तू क्या कमाता है। तुझे तो जितना वेतन मिलता है, वह तू ले जा सकता है। साधारण पोस्ट आफिस वालो को क्यो दुख मानना चाहिए और मुनीम को क्यो अफसोस करना चाहिए। आप लोगो को जितनी सम्पदा मिली है, तो क्या उसे साथ मे लेकर आये थे। न तो कोई साथ मे लेकर आया था और न कोई साथ मे लेकर जायगा। जो यहा की चीजें हैं, वे सब यही की यही रह जावेंगी, चाहे दायें हाथ से रखो, या चाहे बायें हाथ से, चाहे तिजोरी मे रखो, या अलमारी मे रखो, या ऊखड्डी मे गाडो और चाहे जो भी काम करो, परन्तु यहा की चीजें तो यही ही रहेंगी। ये साथ मे चलने वाली नही हैं। जो वस्तु साथ मे चलने वाली नही है, उसके लिए क्यो अपना मुंह उतारते हो ? और क्यो रो-रोकर आखो से गर्मागर्म आसू गिराते हो। ये लक्ष्मी कभी एक स्थान पर स्थिर होकर नही रहती, कभी किधर और कभी किधर आती-जाती ही रहती है। लक्ष्मी के विषय मे कहा गया है कि—

> या स्वसद्मनि पद्मेऽपि सन्ध्यावधि विजृम्भते।
> इन्दिरा मन्दिरेऽन्येषा कथ स्थास्यति निश्चला॥

जो इन्दिरा (लक्ष्मी) अपने कमलरूप भवन मे भी सन्ध्याकाल तक ही रहती है, रात्रि मे नही रहती, वह चचला लक्ष्मी अन्य पुरुषों के घरो मे कैसे निश्चल होकर रहेगी ? अर्थात् नही रहेगी।

आप लोग आये दिन देखते है कि एक-एक घर मे एक ही दिन तीन-तीन

रग होते है। और प्रत्येक व्यक्ति के तीन कार्य होते हैं। एक दिन तो उसी घर मे लडका जन्म लेता है, फिर उसकी शादी करते हो और फिर वह मर जाता है, तो तीन-तीन काम उस घर मे हो गये। दुनिया कहती है कि खून से मुँह भरा हुआ है,'तो मागलिक कार्य कैसे करे ? परन्तु दुनियाँ करती है, या नही ? न तो खून से भरा हुआ है और न किसी से भरा हुआ है। पत्ते सूख गये और फल-फूल नही आये, तो रोते है परिन्दे (पक्षी) ? वे किसको रोते है ? वृक्ष के पत्तो को रोते हैं या अपने घोसलो को रोते हैं ? भाई, सभी अपने-अपने स्वार्थ को रोते हैं। मनुष्य को विचार करना चाहिए कि ससार मे आकर कुछ कमाना है, गमाना नही। कुछ करना है भटकना नही। उसे तो एक ही लक्ष्य रखना चाहिये कि यह जो कार्य क्षेत्र है, या जो पेढी है तो यहाँ माल गमाने के लिये नही है, परन्तु यहा माल कमाने के लिए हैं। तो ऐसी कमाई कमाओ कि जिसका बोझ बने नही, कोई ले जाते रोके भी नही और म्यूनिसपालिटी की चुगी चौकी आती तो कोई फेरने वाला नही हो। जो सदा अपने पास रहे और जिसके गुम जाने या चोरी हो जाने का भी भय न हो, ऐसी कमाई को ही सच्चा लक्ष्य कहा है। आत्मसिद्धि कराने वाली जो वस्तुएँ है उन्ही को प्राप्त करो। और प्राप्त करने के बाद उसमे प्रवीणता प्राप्त करो। फिर आपकी स्थिति सुधरते देर नही लगेगी। जो मनुष्य अपने लक्ष्य पर नही पहुँचा, तो उसके साथ मे कितना ही करो, पर आपके भला होने का ढग नही है। और उपकारी उपकार का लक्ष्य मान ले तो थोडे मे मान लो।

आभार मानिए

कलकत्ता की बात है, एक गरीब घर का लडका बगाल मे पढने लगा। परन्तु उसके घर की स्थिति बडी कमजोर थी। लडके की माँ बडी कठिनाई से अपना और लडके का पेट भरती और लडके की पढाई का भी किसी प्रकार खर्च चलाती थी। किसी प्रकार उसका लडका मैट्रिक पास हो गया और वह भी प्रथम श्रेणी से। वह सभी कक्षाओ मे प्रथम श्रेणी से ही पास होता चला आ रहा था। लडके की इच्छा आगे पढने की थी, मगर उसके पिता ने कहा— बेटा, मेरे पास आगे की पढाई के योग्य साधन नही है, अत मै आगे नही पढा सकता हूं। अब तू कोशिश करके कही पर नौकरी करले, जिससे तेरा भी गुजारा हो और हम लोगो को कुछ राहत मिले। यह सुनकर वह बालक भारी पशोपेश मे पड गया कि मेरी पढाई अधूरी रह जावेगी। इधर पिता का कहना ठीक भी है, तब ऐसी दशा मे मुझे क्या करना

चाहिए ? बहुत विचार के बाद उसके दिमाग मे यह सूझ आई कि किसी अच्छे वकील-बैरिस्टर के यहाँ नौकरी करनी चाहिए, जिससे मेरी पढाई भी आगे जारी रहे सकेगी और बूढे माँ-बाप को भी आर्थिक सकट से मुक्ति मिल जायगी। उस समय आज से ६० वर्ष पूर्व कलकत्ता मे प्रसिद्ध और अच्छी प्रैक्टिस वाले एक वकील साहब थे। उनका बगला शहर के बाहिर था। वह बालक प्रतिदिन उनके बगले पर जाने लगा। पाच-सात दिन आते आते हो गये, पर वकील साहब से भेंट नही हो सकी। एक दिन अकस्मात वकील साहब की दृष्टि उस पर पड गई, तो कहा—बच्चे इधर आओ। उससे पूछा कि तुम प्रतिदिन यहा क्यो आते हो ? क्या बात है ? लडके ने कहा—मुझे नौकरी की आवश्यकता है। वकील साहब बोले—अच्छा तू नौकर रहना चाहता है मेरे पास ? परन्तु बता कि क्या मेरे सिवाय और कोई तुझे नौकर रखने वाला नही मिला ? उसने कहा कि मेरे घर की आर्थिक स्थिति कमजोर है, मेरे पिता मुझे आगे पढाने मे असमर्थ हैं। अत मैंने सोचा है कि ऐसे विद्वान के पास नौकरी चाहिये कि जिससे गुजर भी चलती रहे और आगे की पढाई भी होती रहे। इस प्रकार उस बालक ने अपनी परिस्थिति का सही चित्र उनके सामने रख दिया। सुनकर वकील साहब बोले—नौकरी यदि करनी है तो मेरे पास चौबीस घन्टे रहना पडेगा और एक मिनिट भी मैं तुझे स्वतन्त्र नही रहने दूगा। यदि तुझसे हमारी यह नौकरी बन सके, तब हा भर दे, मैं तुझे रखने को तैयार हू। अच्छा, अभी तू घर चला जा, और दो-तीन दिन खूब सोच विचार करके मेरे पास आ जाना। वह बालक अपने घर लौट आया और विचार करने लगा कि मैं यदि चौबीस घन्टे की नौकरी करूँगा, तो आगे की पढाई कैसे कर पाऊँगा। यह भी सोचा कि यदि नौकरी नही करेगा, तो करेगा भी क्या ? इसी प्रकार के सोच विचार मे एक सप्ताह बीत गया।

सात दिन के बाद वह लडका उन वकील साहब के पास फिर पहुचा। वकील साहब ने पूछा—इतने दिन कहा लगा दिये ? बालक ने कहा- हुजूर, मैं चौबीस घन्टे की नौकरी करने से मजबूर हू। यह सुनते ही वकील साहब ने कहा—निकल जा यहाँ से बेवकूफ ? तूने मेरा इतना समय क्यो बरबाद किया और उसे दुत्कार करके बगले से बाहिर निकाल दिया। ऊपर से कहा—तू नौकरी के योग्य ही नही है। अब उस बेचारे बालक की आशा टूट गयी। आखो मे आसू निकल आये। तब विनय से अवनत होकर लड़के ने कहा—आप कोई ऐसा काम बताइये कि जिससे मेरी गुजर भी

चलती रहे और मेरी आगे की पढाई भी चलती रहे। परन्तु उस वकील का हृदय नही पिघला और उसने फिर एक झिडकी देते हुए कहा—निकल जा यहा से, तुझे यहा खडे रहने की जरूरत नही है।

वह बालक निराश हो वापिस दस ही कदम चला होगा कि वकील के हृदय मे विचार उठा—यह बडा दुखी ज्ञात होता है, अत उसे पुकारा और कहा, इधर आ। लडका लौट आया और बोला कहिये क्या आज्ञा है? वकील बोला—अच्छा, तू हमारे यहा पर रह जा और तुझ से जितना बने, उतना काम करना और शेष समय मे पढना। यह आशा-भरी वाणी सुनकर भी लडके ने कहा—महाशय, अब मै रहने को तैयार नही हू। जहा मनुष्य का मूल्य नही, जहा मनुष्य को मनुष्य नही समझा जाता हो, और दुख-दर्द मे समवेदना नही हो, वहा पर मैं नौकरी नही करना चाहता। इसलिए मुझे क्षमा कीजिए, ऐसी जगह किसी भी मूल्य पर मैं नौकरी करने को तैयार नही हू। मैंने आपके सामने अपना सारा कलेजा खोलकर रख दिया, फिर भी आपने मुझे फटकार करके निकाल दिया। मेरे भी महाशय, दो हाथ पैर हैं, फिर कैसे भी काम चला लूगा, पर आपके यहा नौकरी नही करूगा।

वकील लडके के दृढता भरे कटु-सत्य वचन सुन मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ कि यह बालक कितना स्वाभिमानी है, यह बडे गौरव की बात है। मैं भी एक पढा लिखा मनुष्य हू, मुझे भी ऐसा नही फटकारना चाहिए था। ऐसा विचार कर उसने फिर बालक से कहा कि तू हमारे यहा नौकरी कर, या मत कर। परन्तु एक बात सुन लो कि अपना एक मिनट भी व्यर्थ मत खोना, यह मेरी शिक्षा सदा याद रखना। लडके ने कहा—अच्छा महाशय, सदा याद रखूगा। ऐसा कह वह बाहिर आया और सोचने लगा कि चाहे जैसे हो, मगर इन्होने शिक्षा तो लाख रुपये की दी है। अब यदि मैं एक मिनिट भी व्यर्थ खोऊ, तो मेरा जैसा अभागा और कौन होगा? अत मुझे इनकी शिक्षा के मुताबिक ही काम करना चाहिए। उसी दिन से वह बालक उद्योगी बन गया। भाई, उद्योगी को आगे बढने मे देर नही लगती है। वह बालक अब परिश्रम के साथ कुछ चीजें बनाने लगा, अच्छी चीज देखकर लोग अधिक दाम देकर भी उन्हे खरीदने लगे और इस प्रकार घर का खर्च भी चलने लगा और काम करने से जो कुछ भी समय बचता उसे पुस्तकालय से पुस्तकें लाकर पढने मे लगाता। जो कोर्स की बात समझ मे नही आती, वह किसी विद्वान् के घर जाकर पूछ आता और एक भी मिनिट व्यर्थ न खोकर पढने और काम करने मे लगा रहता। इस प्रकार पढते हुए उसने इण्टर,

बी ए और कानून की परीक्षाए पास की और ट्रेनिंग लेकर लाइसेंस लेकर वकालत प्रारम्भ कर दी। अपनी प्रतिभा से वह जिस किसी के मुकद्दमे को हाथ मे लेता, उसी मे विजय प्राप्त करने लगा। उसकी इस योग्यता को देखकर नये नये मुकद्दमे उसके पास आने लगे और वह हर मुकद्दमे मे कामयावी हासिल करने लगा। कुछ दिनो मे ही वह ऐसा कुशल वकील हो गया कि उसके सामने दूसरे वडे वडे नामी वकील भी नही ठहर सके। वह अपने पक्षकार के पक्ष मे ऐसी ऐसी दलीलें जज के सामने पेश करता कि जज को भी उन्हे स्वीकार करना पडता। धीरे धीरे उसकी प्रसिद्धि सर्वश्रेष्ठ वकीलो मे हो गई।

एक वार ऐसा योग आया कि प्रतिवादी के रूप मे वह वकील इसके सामने आया, जिसने कि इसे धुतकार करके घर से निकाला था। इसने उस वकील की दलीलो को प्रवल युक्तियो से काट कर ऐसे ऐसे तर्क सामने रखे कि जजने इस के पक्ष मे अपना फैसला दिया। वह वकील सोचने लगा कि यह प्रतिभाशाली नया वकील कहा से आया! अव तो जितने भी मुकद्दमे यह लेता, सभी मे विजय पाने लगा और वह वकील हारने लगा। फिर भी वह इस नये वकील को नही पहिचान सका। मन ही मन सोचता कि इसके वुद्धिवल और वाक्-चातुर्य के सामने तो मैं हतप्रभ-सा हो रहा हूं। इस प्रकार इसे प्रेक्टिस करते और हर मुकद्दमे मे विजय पाते हुए चार वर्ष हो गये। उसकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर वकीलो ने उसे अपने वार-एसोशियन का प्रेसीडेन्ट वनाया। इस वीच जिस जज के पास इसके मुकद्दमे चल रहे थे, उसका कार्य-काल समाप्त हो गया। तत्कालीन वायसराय ने व्रिटिश पार्लियामेन्ट से पूछा कि अमुक जज के स्थान पर किस को जज नियुक्त किया जाय? वहा से उत्तर मिला कि आप ही किसी योग्य व्यक्ति का नाम भेजें, उसे ही जज नियुक्त कर दिया जायगा। वायसराय ने कलकत्ता वार-एसोशियन के सब वकील-वैरिष्टरो की सूची और उनके मुकद्दमा जीतने वाली नामाङ्कन सूची को मगाकर देखा, तो उसमे इस नये वकील का नाम ही सवसे ऊपर पाया, उसने देखा कि यह आज तक किसी भी मुकद्दमे मे हारा नही है, नई उम्र भी है और वार-एसोशियन का प्रेसीडेन्ट है, अत इसी के नाम की सिफारिश करना चाहिए। इसके पूर्व अग्रेज लोग ही जज वनकर आते थे, किसी भारतीय को जज नही वनाते थे। अग्रेज लोग वडे कूटनीतिज्ञ थे। वायसराय ने इस नये वकील को सर्वप्रकार से योग्य समझ कर जज वनाने के लिए कहा। सव वातें सुन कर इसने कहा कि मैं जज का पद

स्वीकार करने के लिए तैयार नही हू। वायसराय ने कहा—ऐ नौ जवान यह क्या कहते हो ? यह गौरवशाली पद तो आज तक किसी हिन्दुस्तानी को नही मिला है। तुझे यह अवसर प्राप्त हो रहा है, अत इस पद को स्वीकार कर। इसके साथियो ने भी इसे बहुत समझाया। पर इसने जज बनना स्वीकार नही किया। जब वायसराय ने इसका कारण पूछा, तो उसने बतलाया कि मेरे जज बनने पर और कोर्ट-टाइम मे जज की कुर्सी पर बैठने पर ये अमुक वकील जो मेरे गुरु है, उन्हे मेरे सामने नीचे खडा रहना पडेगा। मै अपने गुरु का यह अपमान नही देख सकता। वायसराय ने पूछा कि ये तेरे गुरु कैसे हैं, तो उसने उनके द्वारा दी गई शिक्षा की सारी बात कह सुनाई। इसकी बात सुनकर वायसराय भी आश्चर्य-चकित होकर रह गया। और उसने किसी दूसरे वकील को जज बना दिया।

वायसराय को जब इस बात का पता चला कि यह तो उस वकील का इतना ऐहसान मानता है और वह इससे ईर्ष्या करता है, तो उसने उसे बुला कर कहा— देखो अमुक वकील ने तो तुमको गुरु मानकर जज के पद को इसलिए स्वीकार नही किया कि अदालत के समय आपको नीचे खडा रहना पडेगा, मैं गुरु का ऐसा अपमान नही देख सकता और आप उससे ईर्ष्या करते हैं। उसका कितना बडप्पन है कि आपके पीछे उसने हाईकोर्ट के जज का पद भी ठुकरा दिया। पर आप अब भी उससे ईर्ष्या करते है। उसने बताया कि जब मै भारत के लिए ब्रिटेन से रवाना हुआ तो मुझे बताया गया कि भारत के लोग बडे गद्दार होते है, उनका कभी साथ मत देना। पर मैं यहा पर प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि भारतवासी ऐसे गुणी और कृतज्ञ है, तो मैं उन्हे गद्दार कैसे कह सकता हूँ। ये तो बडे योग्य और ऊँची भावना वाले पवित्र व्यक्ति हैं। मैं आपसे कहता हू कि वह भारत माता का कितना सपूत लडका था, उसकी कितनी ऊँची भावना थी। उसने उस वकील की जरासी शिक्षा का भी कितना ऐहसान माना।

मैं पूछता हू कि आज आपके प्रति आपके जीवन मे किन-किन लोगो ने कैसी-कैसी सहायता दी है और क्या शिक्षाए दी है, तो क्या कभी आपने उनका उपकार माना है, क्या कभी उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है ? नही प्रकट की है। तो फिर आपका लक्ष्य एक कैसे हो सकता है ? उस वकील ने वकालत इस प्रकार की कि बडे-बडे राजे-महाराजों के मुकद्दमे उसके पास आने लगे और हजारो रुपये मासिक की आमदनी होने लगी। कहते हैं कि एक दिन की पेशी पर वे बाहिर पचास हजार रुपये पर जाते

थे। जानते हैं आप लोग उनका नाम ? उनका नाम था चित्तरजनदास। जिन्हें कि सक्षेप सी आर दास कहा जाता था। उन्होने भारत के स्वतत्रता सग्राम के समय अपनी इतनी वडी चढी प्रेक्टिस को लात मारदी और महात्मा गाधी के स्वातन्त्र्य सग्राम मे कूद पडे देशभक्ति से प्रेरित होकर। यह था उनका महान त्याग। उन्होने देश को आजाद करने के लिये जेल की वडी-बडी यातनाएँ सही और आज अपना नाम अमर कर गये। वे अपने जीवन काल मे अपनी आमदनी का एक वडा भाग गरीव विद्यार्थियो की सहायता मे देते रहे, क्योकि वे स्वय भुक्तभोगी थे। आज भारत के इतिहास मे उनका नाम 'देशवन्धु' चित्तरजनदास के नाम से उल्लिखित है, और भारतवासी सदा उन्हे स्मरण करते रहेगे। जिस व्यक्ति के हृदय मे देश-प्रेम होगा, वह कभी भ्रष्टाचारी और गद्दार नही हो सकता। और न वह नीच काम करके अपने जीवन को वर्वाद करता है। वह सदा आगे से आगे की मजिल को पार करता हुआ आगे वढता रहता है। मनुष्य को सदा इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि जिसने मेरे साथ भलाई की है, मैं उसका कृतज्ञ वना रहूँ, मैं हर एक व्यक्ति के गुण का आदर करू और उसे अपनाने का प्रयत्न करूँ। तभी हमारा लक्ष्य एक कहलायगा। जिसके भीतर मानवता प्रकट हो जाती है फिर उसके भीतर काम, क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे अवगुण नही ठहर सकते। आप कहेंगे कि महाराज का उपदेश तो वडा अच्छा है, परन्तु आपका यह मन-मन्दिर अच्छा नही है। यदि आपका मन निर्मल हो जाय, तो आप कभी भी धोखा नही खा सकते। कहा है—

कदै न पडै पादरी, मन-मैलो की वात।
साफी की सुधरै सदा, कदै न खत्ता खात॥

किन्तु जिनका मन मैला है, वे कभी उन्नति नही कर सकते। हमने अनेक पुरुषो को देखा और परखा है। परन्तु हृदय के साफ, गगा-जल के समान निर्मल स्वच्छ प्रकृति वाले मनुष्य वहुत कम मिलते है। और जो मिलते हैं, वे ससार मे अपनी मानवता की झलक दिखा करके जाते हैं। जिनके दिल की सफाई नही, तो वे फिरते रहे और भले ही चलते रहे उनके कारखाने। परन्तु वोध नही हुआ है। कला हुन्नर पढा हो, तो भी काम चले, सवल हो तो भी काम चले। पर यह चलने मे चलना नही है। दुनिया कहती है कि काम है, परन्तु काम का मजा नही है। मानवता के काम करते हुए भी यदि उसका आनन्द नही आ रहा है, भाई, वह कहाँ से आवे ? क्योकि पहिले

ही स्वार्थ की भावना रखकर जब काम करते है, तो उसका आनन्द कैसे आ सकता है ।

एक सेठजी रात को सो रहे थे । सेठानी जी की सोते-सोते नीद उड गई। जब उसने कुछ बडाबडाहट की, तो सेठजी की भी नीद उड गई। सेठ जी ने पूछा कि सेठानी जी, क्या बात है ? सेठानी ने कहा मुझे यह ख्याल आया कि अपने घर मे घीना नही है। सुनकर सेठ ने कहा—सवेरे ही गाय ले आवेगे। सेठानी बोली, गाय नही भैस लाना। सेठ ने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा है, वही ले आवेगे। तब सेठानी बोली—भैस भी भूरी, धोली पूँछ की, टीके वाली थोडा खाने वाली और बहुत दूध देने वाली तथा बिलकुल सीधी लाना, जिसे छोटे बच्चे भी बैठकर दुह लें। सुनकर सेठ ने कहा—हा हा ऐसी ही लाऊगा। यदि ऐसी भैस लाने के लिए पाच कोस दूर भी जाना पडे और पाच रुपये अधिक भी देना पडेगे, तो भी कोई बात नही है, पर जैसी तू कहती है, वैसी ही भैस ले आऊगा। अब सेठ ने कहा कि भैस तो हम ले आवेगे, मगर काम कौन करेगा ? सेठानी बोली आप चिन्ता न करे, मैं सब काम करूगी। दुहने से लेकर पोठे थापने तक का सब काम मैं कर लूगी। सेठ बोला—ठीक है बांटा मैं खरीद करके ले आया करूगा, तथा ऊपर का काम भी मैं कर लूगा। इस प्रकार भैस के खरीदने और उसके सभाल आदि की सब बात तय हो गई। अब कुछ देर बाद सेठानी बोली—कि एक शर्त है सेठ साहब, कि दूध के ऊपर की जो मलाई आयगी, उसे मैं अपनी माँ को खिलाऊगी। सेठ ने तुनक कर कहा— सेठानी क्या तेरा भोगना फूट गया है जो ऐसी बात कर रही है। मैं तो पैसे खर्च करके भैस लाऊ और मलाई खावे तेरी मा ? यह मुझसे देखा नही जायगा। अब इस तेरी और मेरी के साथ बात का बतगड हो गया और शोर-गुल होने से अडोस-पडोस के स्त्री-पुरुषो की नीद खुल गई। वे सोचने लगे कि सेठ और सेठानी दोनो ही होशियार है, इनके घर की बात आज तक भी बाहिर नही गई है। परन्तु आज रात को यह क्या हो रहा है। दस-पाच लोग इकट्ठे हो गये और बाहिर से सेठ को आवाज भी देने लगे। मगर कोई सुनता ही नही। वे तो दोनो आपस मे ही लडने-झगडने मे लग गये। तब एक पडोसी ने तरकीब बतलाई, कि इनके मकान के ऊपर छप्पर पर चढो और कवेलू हटा करके देखिए, पाच सेर का भाटा पटके, तब सुनेंगे, अन्यथा नही। ऐसा ही किया गया ज्यो ही ऊपर से भाटा डाला गया, तो नीचे रखे घी तेल के बरतनो की बडेर भी गिर गई। यह नुकसान देखते और भाटे के गिरने की आवाज

सुनते ही सेठ चौंका और बोला कौन है ? तब ऊपर वाले ने कहा—अभी तो बहुत हो गया, अरे बेईमान, तेरी भैंस ने तो मेरे खेत का सारा सत्यानाश ही कर दिया। क्या आप जूते खाओगे और सरकार मे हर्जाना भी भरना पड़ेगा। सेठ बोला— अरे बेईमान, भैंस है कहा ? तब उसने कहा कि फिर तुम दोनो लड़ते क्यों हो ? भाई, मलाई कहा, और भैंस कहा ?

भाइयो, आप लोग भी मलाई खाने वाले हो ? पर भैंस का पता ही नही है। ऐसी बातें कहा होती है, जिनके मन ठिकाने नही होते हैं। जिनके मन ठिकाने होते हैं, वे ऐसी बाते नही करते हैं। अरे, सेठानी की मा खावे, तो वह सेठ की सासु है और यदि सेठ की माँ खावे, तो वह सेठानी की सासु है। यदि यह विचार उनमे होता, तो बिना भैंस के ही इतनी तू-तू मैं-मैं न होती और न पड़ोसियो की नीद खराब होती।

भाइयो, मनुष्य का एक ही लक्ष्य होना चाहिए कि मान्यता कैसे ठीक रहे। इस प्रकार जो सही लक्ष्य बनाकर उस पर अग्रसर होते हैं, उनके दोनो लोक सुखदायी बनते हैं। अत आप लोगो को अपना लक्ष्य सुन्दर बनाना चाहिए।

७
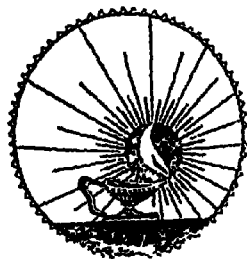
जीने की कला

इस समार रूपी समुद्र मे दो वस्तुए हैं – अमृत भी है और विष भी है। समुद्र का जो पानी है वह विष है। उसे आज तक भी किसी ने पिया नही है, क्योकि वह अत्यन्त खारा है। न वह कपडे धोने के काम मे आता है और न स्नान करने के ही काम मे आता है। वह वहुत गन्दा और मैला है। अत वह एक प्रकार से विष ही है। परन्तु समुद्र के भीतर भी कही कही मीठा पानी होता है, उसका पता उन जहाज चालको को रहता है जो निरन्तर समुद्र मे अपने जहाज चलाया करते हैं। जहा मीठा पानी होता है, वहा पर वे अपने जहाजो को रोक कर मीठा पानी पीते हैं, और आगे के लिए साथ मे भर लेते हैं। कहने का मतलब यह है कि जैसे एक ही समुद्र मे जहा अमृत रूप मीठा जल है, तो कही पर विषरूप खारा पानी भी है। इसी प्रकार ससार के भीतर भी दो वस्तुए हैं—कर्म-बन्धन के कारण भी ससार मे है और कर्मों के तोडने के साधन भी ससार मे हैं। शास्त्र मे कहा है—

जे आसवा ते परिस्सवा जे परिस्सवा ते आसवा।

– आचाराग सूत्र

जो आश्रव है, कर्म बन्धन के कारण हैं वे निर्जरा के भी कारण हैं और जो निर्जरा के कारण है, वे ही कर्मबन्ध के कारण वन सकते हैं।

यह बात साधक पर निर्भर करती है, कि वह आश्रव को निर्जरा के साधन कैसे बनाये, विष को अमृत रूप से कैसे परिणत करे ?

एक बार कर्मों के बन्धन टूट जाने पर अर्थात् उनसे मुक्त हो जाने के पश्चात फिर जीव सदा के लिए बन्धनो से छुटकारा पा लेता है, फिर पुन

उसके नवीन कर्म-बन्धन नही होता है। जैसे अनादि काल से धान्य के ऊपर छिलका (तुप) चिपका हुआ चला आ रहा है, जब तक वह चिपका रहता है, उसमे आगे नवीन अकुरोत्पादन की शक्ति बनी रहती है। यदि वह चक्की से दलने आदि किसी प्रयत्न विशेष से चावल से भिन्न कर दिया जाता है, तो फिर उसमे उगने की शक्ति नही रहती है। कहा भी है—

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाकुर ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाकुर ॥

इसी प्रकार एक बार कर्मरूपी बीज जो चावलरूप आत्मा के ऊपर तुपके समान अनादिकाल से चिपका चला आ रहा है, वह यदि रत्नत्रयरूप धर्म को धारण करने रूप पुरुपार्थ से ध्यानरूप अग्नि से जला दिया जाता है, तो फिर इस जीव के ससार मे जन्म-मरणरूप अकुर नही उत्पन्न होता है।

आश्रव क्या है ?

इस सबके कहने का सार यह है कि मिथ्यात्व, कपाय, असयम भाव, प्रमाद और योग रूप आश्रव के निमित्त से नवीन कर्म-पुद्गलो का आत्मा के साथ एकमेक होकर सश्लेप हो जाना अर्थात् चिपक जाना बन्धन कहलाता है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि के द्वारा उन कर्मों को आत्मा से अलग कर देना ही आत्मा का मोक्ष कहलाता है। इस प्रकार ससार मे दोनो ही वस्तुएँ है—कर्म-बन्धन के कारण भी है और उनसे मुक्त होने के साधन भी हैं। इन दोनो ही प्रकार के साधनो का उपभोक्ता यह हमारा आत्मा ही है।

आत्मा का स्वरूप

आत्मा का जो ज्ञान-दर्शनरूप जानने-देखने का स्वभाव है वह सब मे एक ही प्रकार का है। इसलिए ठाणाग सूत्र मे कहा है कि एगे आया। आत्मा एक है। फिर आठवें ठाणे मे कह दिया कि आत्मा आठ प्रकार की है। तो इन दोनो कथनो मे कोई विरोध नही समझना चाहिए। निश्चय नय से आत्मा एक है, क्योकि सभी जीवो का ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव एक ही है। किन्तु, व्यवहार नय से आठ प्रकार का है, क्योकि सबके साथ कर्मबन्धनो की विभिन्नता है,अत उनको भिन्न-भिन्न कहना भी उचित ही है। ससारी जीवो मे चेतन आत्मा के साथ अचेतन जड कर्मों का सम्बन्ध या सम्मिश्रण पाया जाता है, इसलिए भेद की विवक्षा से उसके आठ भेद रूप से कथन किया है। यथा—ज्ञान आत्मा है, दर्शन आत्मा है, चारित्र आत्मा है, योग आत्मा है, उपयोग आत्मा है, वीर्य आत्मा है, द्रव्य आत्मा है और कपाय आत्मा है। इस प्रकार कर्म-सम्मिश्रण से आत्मा को आठ भेद रूप से कह दिया है।

अब यहा पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कषाय और योग भी आत्मा है ? क्योंकि कषाय और योग तो जड है, उन्हे चेतनरूप आत्मा कैसे माना जाय ? इसका उत्तर दिया गया है कि जिस समय जीव जिस प्रकार व्यवहार या व्यापार करता है, उस समय उसे उसी नाम से पुकारा जाता है। जैसे कपडे का जो व्यापार करता है, उसे बजाज कहते हैं, अनाज के व्यापारी को अन्न-विक्रेता कहते हैं, गुड-खाड किराना आदि के व्यापार करने वाले को पसारी कहते है, कादा-लहसुन आदि के बेचने वाले को कुजडा कहते है। और जूतो के बनाने वाले और बेचने वाले को मोची कहते है। कहने का भाव यह है कि जो व्यक्ति जब जैसा व्यापर करता है, तब उसे लोग उसी नाम से पुकारते है। जैसे यह लोक व्यवहार मे होता है और वैसा पुकारने पर लोग नाराज भी नही होते हैं। यदि कोई कही पर नाराज भी होता है, तो लोग कह देते है कि भाई,आपका जैसा व्यापारहै, उसके अनुसार ही आपको पुकारा जाता है, इसमे नाराज होने की कौनसी बात है ! ससार का यही व्यवहार है कि पूजा करने वाले को लोग पुजारी कहते है और राज करने वाले को राजा कहते हैं। यदि कोई पुरुप व्यापार छोडकर के सरकारी नौकरी करने लगता है, तो लोग उसके पदके अनुसार जज, मुसिफ, मुशी आदि नामो से पुकारने लगते है और तथैव व्यवहार मे कहते भी है कि जज साहब आइये, पधारिए आदि। यदि कोई व्यक्ति सरकारी नौकरी छोडकर व्यापार करने लगता है, तो लोग उसे सेठ साहब कहकर पुकारने लगते है यदि कोई इस पर नाराज होकर कहे कि भाई साहब आपने हमे व्यापारी कैसे कह दिया, तो यही उत्तर देंगे कि जब जो व्यक्ति जैसा काम करता है, तब उसे उसी प्रकार से पुकारा जाता है,यही लोक का व्यवहार है, यही लोक-रीति है। ससार मे गादी तो तीन व्यक्तियो की होती है—एक तो राजा-महाराजाओ, की दूसरी सन्त महात्माओ की और तीसरी सेठो की। चौथी कोई गादी नही होती है यदि कोई व्यक्ति पाच हजार रुपये मासिक भी वेतन पाता है, तब भी वह नौकर ही कहलाता है, गादी का धनी नही कहलाता। पर आज जमाने का रग देखो कि अच्छे अच्छे व्यापार करने वाले लखपति करोडपति भी कहते है कि हम तो अपने लडको को ऊची डिग्री पास कराके अच्छी सर्विस करावेगे और उसे जज या कलेक्टर बनावेंगे। अरे भाइयो, तुम्हारे पास तो गादी है, फिर अपने लडको को नौकर की क्यो सोचते हो ? यदि सभी ऐसा सोचकर अपने लडको को नौकर ही बनाना चाहेगे, तो उन सबको नौकरी कौन देगा ? इतने स्थान कहा से मिलेंगे, कि जिनपर सबको नियुक्त

किया जा सके ! देखो न, आज ऊची-ऊची डिग्री पास करने वाले कितने बेकार फिर रहे है।

सेठ हीराचन्द जी चोरडिया एक बार दर्शन करने को आये। उनके ड्राइवर ने भी आकर वन्दन किया। मैंने उससे पूछा कि तुम मद्रासी हो ? उसने कहा – हा महाराज ! बातचीत के सिलसिले मे उसने बताया कि मैं एम ए हू और दो विषयो मे हू। मैंने पूछा कि फिर तुम ड्राइवरी क्यो करते हो ? उसने कहा कि और कोई नौकरी नही मिलने से भूखो मरता था। भूखो मरने से तो ड्राइवरी ही अच्छी है कि कुछ न कुछ मिलता तो है। हमारे देश मे तो पढे-लिखे डिग्रिया प्राप्त सैकडो भाई बेकार फिर रहे हैं और प्रयत्न करने पर भी उन्हे कही नौकरी नही मिल रही है। आज सरकार के किसी भी विभाग से कोई आवश्यकता की विज्ञप्ति निकलती है कि अमुक कार्य के लिए हमे अमुक योग्यता-प्राप्त व्यक्ति चाहिए हैं, तो उस आवश्यकता-पूर्ति के लिए हजारो आवेदन पत्र पहुचते हैं। आज हमारे देश मे पढे-लिखे लोगो की यह स्थिति हो गई है। क्या आपने सोचा है कि इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि दुनिया दिमाग से उलझी हुई है। सारे ही गुलाम बनना चाहते है। भले ही आप किसी ऊची नौकरी को कर लेवे, परन्तु है तो वह नौकरी ही। नौकरी मे क्या है ? नौ काम कर लिए, परन्तु एक काम नही किया, तो कह दिया जाता है कि आप अपने घर जाइये। नौकरी मे भाईचारा नही है। नौकरी करते हुए यदि कोई कह दे कि यह कार्य मुझ से नही होगा, तो तुरन्त घर जाने का नोटिस दे दिया जायगा। कहावत भी है कि 'नौकरी या भाईबन्दी।' अर्थात् नौकरी करते हुए भाई-भाइयो मे भी भाईचारा नही रहता है। पहिले भी जिन लोगो ने रजवाडो की दीवानगिरी की थी, उनमे से अनेको क्या दीवालो मे नही चुनवा दिये गये ? दशहरे के दिन ज्यों पाडे को डालते हैं वैसे ही केई मनुष्यो को डालते थे तो वह क्यो डाला गया ? कुर्सी पर चढा इसलिये। आज सभी लोग कुर्सी पर बैठने के लिए भाग रहे है,शरीर से कोई भी परिश्रम नही करना चाहता। सभी परिश्रम से डरते हैं और पढ लिखकर नौकरी पाने के लिए मारे-मारे फिरते है। परन्तु दुनिया मे भेडिया चाल है। एक व्यक्ति ने जिस ओर कदम बढाया, सभी उसी के पीछे भागते हैं।

हा, मैं कह रहा था कि ससार मे दो प्रकार की वस्तुए है—सार भी हैं और असार भी हैं। यदि आप सारवाली वस्तुओ की ओर आकृष्ट होगे, तो वे भी आपको बहुत मिलेंगी और यदि असार वाली वस्तुओ की ओर आकृष्ट होगे तो वे भी आपको बहुत मिलेंगी। कहा भी है—

कबिरा मन तो एक है, भावे जहाँ लगाय ।
भावे हरि की भक्ति कर, भावे विषय कमाय ॥

चोरी करने को पहिले कौन दौडता है ? यह मन ही दौडता है और प्रेरणा करता है कि यह माल पडा है, इस उठा लो। जब उस वस्तु को उठाने के लिए हाथ लगाते है, तो मन कहता है कि तू कैसा आदमी है, तेरा कैसा घराना है ? फिर भी तू पराई वस्तु को उठाने के लिए हाथ डालता है ? तुझे शर्म आना चाहिए। तेरे जीवन को धिक्कार है ? तू यह खोटा कार्य क्यो कर रहा है ? तुझ मे तेरे कुल के विरुद्ध यह हीन आचरण क्यो हो रहा है ! तथा भगवद्-भक्ति मे भी यही मन लगता है और यहा तक लगता है कि घर-द्वार की सुध भी भूल जाता है। तो यदि मन को अपने अधीन रखा जाता है और उसे सत्कार्यों मे लगाया जाता है, तो वह वैसा आचरण करता है और यदि उस पर अकुश नही रखा जाता है तो वह बुरे मार्ग पर दौडने लगता है और हत्या-चोरी जैसे कुकर्मों को करने लगता है। मन को प्रेरणा करती है इन्द्रिया और इन्द्रियो को प्रेरित करता है मन। इस प्रकार ये पाच इन्द्रिया और छठा मन ये दोनो आपस मे एक दूसरे को प्रेरणा करते रहते है। इन छहो को काबू मे करना, अपने अधिकार या नियन्त्रण मे रखना, इसका भी उपाय ससार मे है। वह उपाय क्या है ? आचार्यों ने वह उपाय सन्तोष गुण को बताया है। जब आत्मा मे सन्तोष गुण आ जाता है, तो ससार के सभी धन धूलि के समान प्रतीत होने लगते हैं—कहा भी है—

गोधन, गज-धन वाजि-धन, और रतन धन खान ।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूलि समान ॥

सुख-दुख तो मेहमान है

मनुष्य को भारी से भारी विपत्ति के समय मे भी यही विचारना चाहिए कि सुख और दुख ये दोनो कर्मों के उदय से प्राप्त होते हैं। एक के बाद दूसरे की उत्पत्ति होती रहती है। ऐसे समय मे सदा यह भाव अपने भीतर रखना चाहिए कि—

सुख नहीं रह्यो तो दुख किम रहसी, यह भी साथ विरलाये,
घटै बधै नहि रचहु तामे, तो काहे को मनड़ो डुलावे।
चेतन तू, ध्यान आरत क्यो ध्यावे, व्यर्थ कर्म बध जावे ॥

ज्ञानी पुरुष के हृदय मे तो चारो ओर से सुख की हवा और ठडी लहर ही आती जाती है, उसके हृदय मे कोई अशान्ति या बेचैनी नही उत्पन्न होती

है। और न उसके ऐसे आसार ही हैं कि दुख हो। परन्तु दुख आता है, तो क्या उसका पता चलता है? क्या उसके आने की वार तिथि निश्चित है। लोग कहते हैं कि यह डाढ मे सांप कैसा? जो सुख चला गया और दुख आ गया? पर ज्ञानी तत्त्ववेत्ता विचार करते है कि जब सुख नही रहा, चला गया। तब दुख भी कैसे रहेगा? सुख का रिजर्वेशन (सरक्षण) नही है तो दुख का भी रिजर्वेशन नही है। यदि दुख आता है तो आजाने दो और नही आता तो न आवे, यह उसकी इच्छा है। पर मैं इसके लिए आर्त्तध्यान क्यो करूं कहा है कि—

जो जो पुद्गल फरसना निहचै फरसै सोय।

जिस समय जिस जाति के कर्म का उदय होना है, वह निश्चय से होगा ही, उसे बदलने को कोई समर्थ नही है। कहा भी है—

सौ सौ गणने क्रोड मत, कर देखो सब कोय।
अनहोनी होवे नहीं, जग होनहार सो होय॥
जो जो देखी वीतराग मे, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहू नहि होसी, काहे होत अधीरा रे॥

भाई, जीवने जिस जाति के कर्म का उपार्जन नही किया है, उस जाति के कर्म का उदय कभी आ नही सकता। और जिस जाति के कर्म का सचय कर रखा है, वह अवश्य उदय मे आवेगा, उसे कोई रोक भी नही सकता है। इसलिए ज्ञानी जन कहते है कि वीतराग केवल ज्ञानियो ने जिस जीव की जैसी कुछ भली बुरी होनहार अपने ज्ञान मे देखी है, वह अवश्य होगी। तथा जो बात उन्होने अपने ज्ञान मे नही देखी है, वह अवश्य होगी। तथा जो बात उन्होने अपने ज्ञान मे नही देखी है, वह कभी नही हो सकती। फिर भविष्य के सुख-दुख की नाना प्रकार की कल्पनाएँ करके तू क्यो अधीर होता है? होनहार के विषय मे होशियारी, चतुराई या चापलूसी नही चलती है। अनहोनी बात के विषय मे आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा करना अपने वर्तमान और भावी भव को बिगाडना है। और खोटे कर्मो का बन्ध करना है। इस प्रकार आर्त-रौद्र ध्यान कर बुरे नवीन कर्मो को बाधना तो समझदारी नही है।

समय-समय पर आप लोग सुनते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति की दशा पहिले ऐसी थी और आज ऐसी हो गई है। अमुक व्यक्ति नीचे गिरा और अमुक व्यक्ति ऐसा ऊचा चढ गया। यह तो आप लोग प्रत्यक्ष मे ही देख रहे

है। परन्तु यह सब देखते हुए भी आत्मा मे दृढता नही है। और इसलिए मन मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प पैदा करते है। इन सकल्प-विकल्पो को पैदा करना छोड दो, और आत्म-साधना मे लग जाओ एव हृदय मे सतोप धारण कर लो कि यह जो कुछ है, वह मेरे लिए अच्छा है। ससार की प्राप्त हुई सभी वस्तुए बदलने वाली है, क्योकि वे पर है। परन्तु सन्तोष नही बदलने वाला है, क्योकि वह अपना है। पर की चाहना बदलती है, परन्तु सन्तोष आत्मा का प्राकृतिक गुण है, वह नही बदल सकता। जो वस्तु नही बदलने वाली है, वह अपने पास विद्यमान है। इस प्रकार निश्चय वस्तु सन्तोप है। परन्तु कह देना तो आसान है, सरल है, पर उसे दृढ पकड कर बैठना यह वात टेढी है, बडा कठिन काम है। ससार मे जितने भी उत्तम काम है, वे विना कष्ट उठाए एक भी सिद्ध नही होते हैं। और जितने बुरे काम है, उनको करते हुए भी कष्ट कम नहीं उठाने पडते हैं। यदि कष्ट उठाना ही है, तो अच्छे कार्य के लिए ही वह क्यो न उठाया जाय ? क्यो बुरे कार्य के लिए कष्ट उठाया जाय ?

कलाकन्द या गोबर

आप किसी दूसरे गाँव जा रहे है और आवश्यक प्रतीत हुआ कि रास्ते के लिए कुछ साथ मे ले लेना चाहिए। सामने देखा कि हलवाई के यहा चूसे का गर्मागर्म कलाकन्द तैयार है, तो आपने अपने कटोरदान मे ले लिया। एक दूसरा भी आदमी गाव जा रहा था। उसने देखा कि इसने कटोरदान भर लिया है, तो अपने को भी कुछ ले लेना चाहिए। सामने एक भैस पोठा कर रही थी, उसने उससे अपना कटोरदान भर लिया। वह भी गर्मागर्म था और कलाकन्द के समान गर्म भी था। दोनो साथ चले। दोनो के पास वोझ है और दोनो के पास गर्मागर्म माल भी है। परतु ठिकाने पहुंचने पर एक ने कलाकन्द का कटोरदान खोला, तो खोलते ही उसमे से वढिया सुगन्ध आती है। पास मे पाच-सात मनुष्य वैठे है, तो वे सोचते है कि यह अच्छा माल लाया है। मनुहार करे तो हमारा भी मुह मीठा हो जाय। वह मनुष्य भी समझदार था। अत उसने कटोरदान खोलने के साथ ही उन लोगो की मनुहार की और सभी ने थोडा-थोडा खा करके अपना अपना मुह मीठा किया। इसकी देखा देखी उस दूसरे व्यक्ति ने भी अपना कटोरदान खोला और पास मे बैठे हुए लोगो से कहा कि आओ भाई, थोडा-थोडा सा हमारा भी प्रसाद स्वीकार करो। जैसे ही उसने अपना कटोरदान खोला, तो उसमे से वदवू आई। लोगो ने पूछा—यह क्या है ?

उसने कहा – देखो यह है। उसे गोवर को देखते ही लोगो ने कहा – अरे दिवालिए, गया गुजरा कही का ? यह बोझ तू क्यो उठाकर लाया ? यदि यह अच्छा लगता है, तो तू ही खाले ! यद्यपि उसके कटोरदान के भीतर पहिले व्यक्ति के समान ही नरम और गरम वस्तु थी। पर वह इतनी गन्दी थी कि न उसके काम मे आई और न दूसरो के ही काम मे आई।

भलाई और बुराई

भाईयो, गोवर के समान है बुराई और कलाकन्द के समान है अच्छाई। आप लोग प्राय कहा करते हैं कि सुपात्र की कमाई मे सब का सीर है। सुपात्र कौन है ? जिसके पोते मे पुण्यायी है, तो उसकी कमायी मे सवका सीर है। कलाकन्द मे सवकी सीर है और गोवर मे किसी की नही है, क्यो कि वह कुपात्र की कमाई है। लोग कहते हैं कि जो अपने मा-वाप के नही हुए, उनसे क्या आशा की जा सकती है वे औरो को लाभ पहुचायेगे ! कोई लडका अपने मा-वाप से लडाई करके घर से निकलता है, तो पडौसी कहता है कि मेरे घर मे आ जा, मेरे वेटा नही है। उसने उसको बुला लिया। भाइयो, जिसने अपने सगे वाप के भी पैर नही दवाए, उसकी सेवा-टहल नही की, वह क्या पडौसी को आराम देगा ? समय आने पर वही कहेगा कि इसने मुझे कोई आराम नही पहुचाया, उल्टी तकलीफे दी हैं। इसमे तो कुछ बुद्धि भी नही है। वताओ—उसमे बुद्धि नही थी, या तुझमे, जो तूने उसे अपने घर रख लिया ? भाईयो, सपूत तो गुलाव का फूल है, वह जहाँ रहेगा, वहाँ सौरभ ही सौरभ फैलायगा। अरे, विना फूल के भी गुलाव का पौधा कही फेंक दिया जाता है,तो वहाँ की मिट्टी से भी सुगन्धि निकलती है। उसका गुलाव के फूल के साथ सम्पर्क रहा है, तो सुगन्धि होगी ही। भले ही फूल चला गया हो ! इसीलिए किसी कवि ने कहा है कि—

> वासण तो विरलाय जावे,वासणा नहीं विलावे रे।
> वाल तरुण वृद्धावस्था पलटा खावे रे।
> चेतन तू ध्यान न लावे रे ॥

गुलाव या शराव

ससार मे दोनो ही वस्तुएँ है गुलाव भी है और शराव भी है। इसी प्रकार भलाई भी है और बुराई भी है। परन्तु जो सन्मान और मूल्य गुलाव के इत्र का है, वह शराव का नही है। इत्र मे गुलाव से वढकर दूसरा कोई इत्र नही है, ढाई सौ-तीन सौ रुपये तोले तक का इत्र आता है। परन्तु शराव

कितनी सस्ती और बदबूदार है । कहने का सार यही है कि भलाई मँहगी, पर सन्मान देने वाली होती है और बुराई सस्ती और अपमान कराने वाली होती है । लोग जापता (सुरक्षा) महगी वस्तु का करते है, हलकी या सस्ती वस्तु का नही करते । आप लोग भले घराने के और भले मा-बाप की सन्तान हैं,तो भलाई के काम मे आगे बढो और बुराई से सदा दूर रहो। बुराई किसी काम की वस्तु नही है, उसे किसी के यहा गिरवी रखो, तो कोई रखे नही, यदि किसी को उधार दो तो कोई लेवे नही, और ऐसे ही मुफ्त मे देना चाहो तो कोई लेने को तैयार नही । अभी आप किसी को बादाम की थैली या खाली बादाम देकर कहो कि भाई, इसे घर पर लेते जाओ, तो कोई भी ले जाने से इनकार नही करेगा । यदि कोई कौच की फलिए देवे, तो क्या कोई ले जाने को तैयार होगा ? कोई भी नही होगा । और दाख, बादाम, पिश्ते सब कोई ले जाने को तैयार है । तो भाइयो, दाख, बादाम, पिश्ते के समान भलाई है और कौच की फली के समान बुराई है । रास्ते चलते हुए हरे भरे चने का खेत आपको मिला, सेलडी का खेत मिला या जवार-बाजरे के सिट्टे मिले, मीठे मतीरे (तरबूज) मिले या छोटे-छोटे काचरे मिले अथवा चवले की फलिया या मक्की के भुट्टे भी मिल गये, तो उनको देखते ही दुनिया लेने की इच्छा करती है । और यदि ऊट कटाला या सत्यानाशी से भरा खेत मिले और उस पर कोई रखवाला भी नही हो, तो भी कोई लेता है या नही ? कोई नही लेता । दोनो के फल हैं और औषधि आदि के काम मे आते हैं फिर भी कोई नही लेता, क्योकि हाथ लगाते ही काटे लगते हैं । जैसे फला-फूला और लहलहाता खेत सबको प्यारा लगता है । यदि उसका रखवाला बैठा हो और किसी को भी खेत मे नही आने देता हो, तो भी यदि वहा पर काम की वस्तु होती है जाने वाला वहा उसे लिए बिना नहीं रहता । यदि रखवाला भलमनसाहत से दे देता है, तो कोई नुकसान नही करता । किन्तु यदि वह स्वय नही देता है, तो लोग उसका नुकसान करके भी ले लेते हैं । इस सबके कहने का अभिप्राय यही है कि खेत की भली वस्तु के समान भलाई छोडने की वस्तु नही है, वह तो ग्रहण करने की ही वस्तु है । 'भले' शब्दो मे कितना आनन्द है और 'बुरे शब्द मे कितना विषाद है ?

दो महाजन भाई किसी गाव मे रहते थे । उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर थी, परन्तु थे वे उद्योगी । उन्होंने सोचा कि चाहे जैसा परिश्रम करना पडे, पर परिश्रम करके ही अपना पेट भरेंगे, किसी के आगे हाथ नही पसारेंगे । वे दोनो जल्दी सवेरे उठकर गावो मे जाते है और वहाँ पर घी

इकट्ठा करते है और दो पीपे भरकर और बड़े शहर मे लेजाकर बेचते हैं। इस प्रकार घी बेचने से जो लाभ होता, उससे वे अपना पेट भरते है। वह जमाना भी अच्छा था, सो अभी एक दुकान से दो रेजे लेकर दूसरी दुकान पर बेच देते है तो रुपया दो रुपया पैदा कर लेते हैं। कभी मिर्ची के बाजार में से मिर्ची लेकर तम्बाकू बाजार में जाकर बेचते है और रुपया आठ आना उसी मे पैदा कर लेते हैं। आज तो जो भाव दिल्ली मे है, वही जोधपुर मे है और वही जालना मे और वही नाणन मे हैं। टेलीफोन लगे हुए हैं सो भाव सब जगह के मालूम होते रहते है, इसलिए मुनाफा नही के बराबर है, सो आज क्या कमायेंगे? इसलिए अब लोग कहते हैं कि चोरी किये बिना पैदा नही होती है। हा, तो वे दोनो भाई एक दिन गाव से घी इकट्ठा कर और पीपे भरकर वापिस शहर को रवाना हुए। दोपहर हो गयी थी, और भूख-प्यास भी लग रही थी। गर्मी के दिन थे, अत आगे चलने पर उन दोनो को बडी जोर की प्यास लगी। बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा कि भाई, प्यास तो जोर से लग रही है और समीप मे कही पानी है नही, क्या किया जावे। तब छोटा भाई बोला कि प्यास तो मुझे भी लग रही है, कोई उपाय करना चाहिए। यहाँ से गाव दूर पडता है, इतनी दूर बोझा लेकर पीछे यहा आवें, सो तो ठीक नही है। अत ऐसा करे कि बोझा यही उतार कर रख देवे और अपन मे से एक गाव मे जाकर पानी पीकर आ जावे, फिर दूसरा चला जाय। दोनो ने इस बात का समर्थन किया, बडा भाई घी की रखवाली पर रह गया और छोटा भाई पानी पीने को गाव मे चला गया। गाव न बहुत छोटा था और न बहुत बडा। मझोले परिमाण वाला था, परन्तु वहा पर बेरा (कुँआ) एक ही था और उसमे भी पूरा पानी नही था, अत बाटकी से पानी लेते थे। आज आप यह बात सुनकर आश्चर्य करेंगे, क्योंकि आप लोग बाहिर गावों मे नही गये हैं। आप सबको तो नलो से सीधा पानी मिल जाता है, परन्तु मारवाड के कई गावो मे आज भी ऐसी ही हालत है। छोटा भाई पानी के लिए गाव मे गया और वहा की वैसी स्थिति देखी। उसे देख उसको बडा दु ख हुआ और सोचने लगा कि ऐसी स्थिति मे किसी से कैसे कहू कि मुझे पानी पिला दो। अत बेरे के पास से वापिस लौटने लगा। उसे वापिस लौटता देख एक बुढिया ने कहा कि पीछे क्यो जा रहा है भाई? उसने कहा—मा साहब, यहा पानी की बडी तगी है और बडी कठिनाई से जाकर पानी मिलता है। उस बुढिया ने कहा—भाई, हमारा दु ख तो हम ही भोगेंगे, पर तू तो पानी पीकर जा। यह कह उसने नितरा हुआ पानी उसे भरपेट पिला दिया। वह पानी पीकर ठिकाने आया और बडे भाई को पानी पीने के

लिए भेजा। जाते समय छोटे ने वडे भाई से कहा—भाई साहव, आप जाइए, परन्तु आपकी बोली मे मिठास नही है। चूँकि गाव मे पानी की बहुत कमी है, इसलिये बोलने का ध्यान रखना। वडे ने पूछा - तूने क्या कहकर पानी मागा था। छोटा बोला— मैंने कहा था कि मा साहव, थोडा सा पानी मुझे पिला दो। यह सुनकर वडा भाई चल दिया।

वडा भाई वहाँ से चला तो रास्ते मे रटता जाता है कि मा साब, थोडा-सा पानी पिलादो। जब वह बेरेके पास पहुचा तो भूल गया मा साव कहना। वह सोचने लगा कि मा तो वाप की लुगाई (स्त्री) को कहते है, सो वह वेरे पर जाकर पानी भरने वाली स्त्रियो से कहता है कि 'ऐ म्हारे वाप की लुगाया, थोडा पानी पिलादो'। यह सुनते ही पानी भरने वाली जाटनियो ने उसके राडूकी लगाई और कहने लगी कि हम कव हुई रे तेरे बाप की लुगाई'। यह कह कर उन्होने दो-चार उडाई और उसके साफे से ही उसको झाड से बाधकर अपने अपने घडे उठाकर घरो को चल दी। अव वह प्यासा मर रहा है, मार पडी और बाधा गया, सो अलग।

इधर छोटा भाई उसकी राह देख रहा था। दो घटे बीत जाने पर भी जब वडा भाई नही पहुचा, तो उसने सोचा कि भाई साहव ने फूल वरसा दिए होगे और लडाई करने बैठ गए होगे। आखिर भाई की ममता भाई को होती ही है, सो उसने दोनो पीपे सिर पर उठाए और बडी मुसीवत से उस बेरे पर पहुचा। जाकर क्या देखता कि भाई साहव तो झाड से बधे हुए है और आखो से पानी बह रहा है। उसने पीपे नीचे रखकर पानी भरने वाली से कहा—मा साहव इसे क्यो बाधा ? इसका दिमाग हाथ मे नहीं है। वह बोली—कि इसने आकर कहा कि 'म्हारा वापरी लुगाया, पानी पिलाओ" सुनकर छोटा भाई बोला—मा साहव आपको समझदार की बात का विचार करना चाहिए ? पागल की वात का विचार क्यो करती हो ? यह तो जनम् का गेला है। जो नासमझी का काम करे,वह तो पागल ही है। फिर उसने बडी विनम्रता से कहा—मा साहव, इसे खोल दो। उसके इन विनम्र शब्दो को सुनकर उसने उसे खोल दिया। पुन उसने कहा—मा साहव आपने इतना वडा उपकार किया, तो अव इतना और कीजिए कि इसे थोडा सा पानी तो पिलादे, यह बहुत प्यासा है। इसके कहने पर उस बुढिया ने उसे पानी पिला दिया। अव पानी पीकर और पीपे लेकर के दोनो वहा से रवाना हो गये। रास्ते मे वडे भाई ने छोटे से कहा—अरे भाई, मुझे तो ऐसा मारा कि अभी तक सारा शरीर दर्द कर रहा है। छोटे ने कहा—आपने क्या कहकर

पानी मागा था ? बड़ा बोला—मैंने सोचा कि मा तो बाप की लुगाई कहलाती है, सो कहा था कि 'ऐ म्हारे बाप की लुगाया, थोडा पानी पिलादो।'

भाई, बात तो वही की वही है, मतलब मे अन्तर नही है। परन्तु शब्दो मे अन्तर पड जाने से सारा मामला ही उलटा हो गया। बडे ने बुरा रास्ता ले लिया और छोटे ने भला रास्ता पकडा। जो भला रास्ता लेता है, उसके लिए रास्ते के शूल भी फूल हो जाते है और जो बुरा मार्ग पकडता है, उसके लिए मार्ग के फूल भी शूल हो जाते हैं। कहा भी है—

दुनियाँ मे चीज भलाई है, इस बिन मुक्ती नाहीं है।
जाने दो जो जावे जान, होने दो अपना अपमान।
पर, परका प्राण बचाइए।

चाहे जहा जाकर देख लो, विचार कर लो ? परन्तु सबसे बढिया चीज भलाई है। भलाई करते हुए जो जान भी चली जावे, तो गई कहा ? वह तो अमर हो गई। चाहे कोई अपना अपमान भी कर दे, तो कर दे अपमान ? पर समझदार आदमी अपमान होने और प्राण जाने की परवाह नही करता है, भाई तभी भलाई होती है, खाली बातो से नही होती है। यदि भलाई ऐसे हो जाती हो तो फिर भलाई को महगी क्यो कहा गया ?

राजा विक्रमादित्य ने सौ वर्ष की उम्र तक राज्य किया, परन्तु एक दिन भी उन्होंने सुख से नीद नही ली। उन्होने प्रजा की भलाई की, तो उनको पदवी मिली 'पर दुख-काटने वाले' की। यदि वे रोजाना ढोलिए (गादी) पर सोते, खुर्राटे की नीद लेते, तो कौन लेता नाम ? उनकी भलाई के कामो से ही तो लोग आज कहते है कि सवेरे के समय विक्रम और कर्ण का नाम लेलो। अन्यथा क्या कोई उनके नाम लेने को कहता ? भाई, भले का नाम सभी कोई लेता है और भले का नाम लेने पर क्या कही कोई उपालम्भ मिलता है ? और बुराई की पद्मोत्तर ने, कीचक ने, दुर्योधन, रावण और दु शासन ने, तो इनकी सवेरे क्या कोई माला फेरता है ? यद्यपि वे बडे दानी थे, बहादुर थे और परिवार भी बहुत था। परतु बुराई के कारण उस जमाने मे भी लोगो ने उन्हें बुरी दृष्टि से देखा और आज भी वे बुरी दृष्टि से देखे जाते हैं। तो इसमे कारण क्या है ? जिन्होने बुराई के पेचा बाधे, वे बुरी नजर से देखे जाते है, और जिन्होने भलाई के पेंचा बाधे वे भली नजर से देखे जाते है। इसलिए भाइयो, आप लोग बुराई के रास्ते मत जाओ और सीधे रास्ते पर आओ। और यदि आपने भरपेट बुराई करने का विचार

ही कर लिया है, तो भाई, हमारा माथा नही दुखता है, आप अपना ही बिगाडेंगे। दुख उठावेंगे और दरिद्रता प्राप्त करेंगे।

सोचिए, दो आदमी रास्ते मे चल रहे है। उनमे जो गडबड करेगा, चलते आदमी को छेडखानी करेगा, तो दुःख पाएगा ही। किन्तु जो चलते हुए दूसरो से मीठा बोलेगा, दुखी की मदद करता और उसका दुख-दर्द दूर करता चलेगा, तो यश पावेगा ही। भाई दोनो ही आदमी हैं, फिर एक को तकलीफ क्यो उठानी पडी ? क्योकि वह भलाई के रास्ते जाने वाला नही था। जो भलाई का रास्ता लेवे, तो उसका कल्याण होता ही है। भले काम करने वाले के विचार भी भले ही होते हैं बुराई मे से भलाई ग्रहण कर लेता है।

आपको मालूम है कि सडी कुत्ती, जिससे दुर्गन्ध आ रही थी, तो सारे सरदारो ने नाक से पल्ला लगा लिया। तब वासुदेव श्री कृष्णचन्द्र ने कहा—, कि सरदारो,यह नाक मे पल्ला क्यो लगा रहे हो ? सरदारो ने कहा—महाराज बडी बदबू आ रही है। एक सडी कुत्ती पडी हुई है। श्री कृष्ण ने कहा—इसमे क्या है ? अरे ! सडने वाले,गलने वाले और बिगडने वाले जो पदार्थ हैं, उनका स्वभाव ही यही है। फिर आप लोग, इतना विचार क्यो कर रहे है ? वे लोग बोले—महाराज, हमसे तो यह बदबू नही सही जानी है। इतने मे श्री कृष्ण का हाथी आगे पहुचा, तो महावत ने हाथी को टालना शुरू किया। श्री कृष्ण ने कहा—अरे, यह क्या कर रहा है ? महावत बोला—महाराज, रास्ते मे एक सडी कुतिया पडी है, उससे भारी बदबू आ रही है। कृष्ण जी बोले—नही, हाथी को उसी ओर चलने दो। अब किसी भी साथी सरदार की इच्छा उधर जाने की नही है, परन्तु महाराज की आज्ञा को टालकर कैसे जावें ? हाथी उस मरी हुई सडी कुतिया के समीप पहुचा, तब कृष्ण जी ने कहा—महावत, हाथी को यही पर रोक दे। महावत बोला—क्या सोचा है—महाराज ! परन्तु विवश होकर उसने हाथी को रोक दिया। श्री कृष्ण जी हाथी से नीचे उतरे और कुत्ती को देखकर कहने लगे कि ओ हो, क्या शरीर की दशा है ? क्या है शरीर मे ? पुद्गल है। ये ही पुद्गल पहले शोभनीक थे और आज ये कैसे हो गये ? यह पुद्गलो का स्वभाव है, पुद्गल का अर्थ ही है गलन-मलन धर्मी ! इसके नश्वर स्वभाव को देखकर भी यदि वैराग्य न हो तो फिर कब होगा ? देखिए कवि बुधजनराय कहते हैं—

क्या देख राचा फिरै नाचा, रूप सुन्दर तन लहा,
मल मूत्र-भाडा भरा गाढ़ा, तू न जानै भ्रम गहा।
क्यो सूग नाहीं लेत आतुर, क्यो न चातुरता धरै,
तुहि काल गटकै नाहि अटकै, छोड़ तुझ को गिर परै॥

भैया भगवतीदास कहते हैं—

अशुचि देख देहादिक अग, कौन कुवस्तु लगी तो सग।
अस्थि मास रुधिर गद गहे, मल-मूत्र निलख तजहु सनेह॥

भूधरदास कहते हैं—

दिपै चाम चादर मढी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत् मे, और नहीं घिनगेह॥
अवर नहीं घिनगेह, देह सम अशुचि पदारथ कोई,
अस्थि मास मलमूत्र अशुचि सब याही तनतै होई।
चन्दन केशर आदि वस्तु तन परसत शुचिता खोवै,
ऐसे तन मे राचि रह्यो सब कैसे शिवमग जोवै॥

दौलतराम कहते हैं—

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तें मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, असि देह करै किम यारी॥

मगतराय कहते है—

तू नित पोखै यह सूखै ज्यो, धोवै त्यो नित मैली,
निश दिन करै उपाय देह का, रोग दशा फैली।
मात-पिता रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी,
मांस हाड़ नस लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी।
काना पौंडा पडा हाथ यह, चूसे तो रोवै,
फलै अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवै।
केशर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी,
देह परसते होय अपावन, निशिदिन मलजारी॥

द्यानतराय कहते हैं—

देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई,
सागर के जलसो शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई।

सात कुधातु भरी मल मूत्तर, चाम लपेटी सोहै,
अन्तर देखत या सम जग मे, और अपावन को है ।।
नव मल द्वार स्रवं निशिवासर, नाम लिए घिन आवै,
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ, कौन सुधी सुख पावै ।
पोषत तो दुख दोष करै अति, शोषत सुख उपजावै,
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ।।
राचन जोग स्वरूप न याकौ, विरचन जोग सही है,
यह तन पाय महातप कीजे, या मे सार यही है ।।

अरे भाई, ऐसे अपवित्र और सडने-गलने वाले शरीर का क्यो घमड करते हो ? क्यो इतना अरमान लाते हो कि मैं इतना सुन्दर हू और यह बदसूरत है । क्या है तेरा रूप ?

चौथो रे चक्री सनत्कुमारो, तिन कियो रूप तणो अहकारो, काई रे गुमान करे अपना,मान करेगो गुमान करेगो तो नीचीगत मे जाय पड़ेगो, सोले हो रोग हुवा ततकालो तो देख शरीर चित्त रे भोपालो ।।

चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार, उनसे तो आप अधिक सुन्दर नही है ? उनकी पच्चीस हजार देव सेवा करते थे । एक समय स्वर्गलोक मे इन्द्र महाराज ने उनके रूप की प्रशसा की । उसे सुनकर सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप-सौन्दर्य को देखने के लिए एक देव आ पहुचा । उस समय वे आयुधशाला मे व्यायाम कर रहे थे, अखाड़े की धूलि से धूसरित वदन हो रहे थे । उनके शरीर का सौन्दर्य देखते ही देव स्तम्भित रह गया । जब वे व्यायामादि से निवृत्त हुए, तो उस से आने का कारण पूछा । उसने कहा—महाराज, आपके रूप सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर मैं उसे देखने आया हू । सनत्कुमार चक्रवर्ती ने कहा, अभी क्या देखता है ? जब मे नहा-धोकर, और वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर राजसभा मे पहुचू, उस समय आकर देखना । चक्रवर्ती सज-धजकर राजसभा मे पहुचे । वह देव भी उन्हे देखने के लिए पहुचा । पर जाकर देखता है कि शरीर की जो आभा, दीप्ति, कान्ति और सौन्दर्य व्यायामशालामे धूलि-धूसरित और प्रस्वेद-रज-लिप्त देह मे था, वह अब नही है । चक्रवर्ती ने पूछा—कहो अब मेरा रूप कैसा है ? देव ने शिर को धुनते हुए कहा—महाराज, अब तो आपके रूप की और देह की दशा ही कुछ और हो गई है । भाइयो, आगे की कथा बहुत लम्बी है और आप लोगो ने कई वार सुनी भी होगी । तो कहने का मतलब यह है कि चक्रवर्ती के शरीर को विगडते क्या देर लगी ? तो फिर आप लोग शरीर का घमड क्यो करते

हो ? अरे यह शरीर तो मल-मूत्र, राध लोहू आदि से भरा हुआ है। जिसके ऊपर तू गर्व करता है और मन मे फूला नही समाता है, वह तो हाडो का माला है और उसमे ससार की सभी गन्दी से गन्दी वस्तुए भरी हुई है, जिनके नाम सुनने मात्र से ही घृणा पैदा होती है। यदि शरीर की सभी वस्तुए निकाल कर सामने रख दी जावें, तो कोई देखने का भी साहस नही करेगा। इस निद्यन्ध एव घृणित अति अपावन शरीर मे से सार निकालना हो तो निकाल लो।

हा, तो शरीर की ऐसी दशा का वर्णन कर श्री कृष्णचन्द्र ने अपने साथ के सरदारो से कहा—अरे, क्यो नाकपर कपडा लगा रहे हो ? और क्यो इस से इतनी घृणा कर रहे हो ? जरा देखो तो सही कि इसकी दन्तपक्ति कितनी सुन्दर है ? उसे तो देखते नही, और उसकी बुरी वस्तु पर दृष्टि डाल रहे हो ? अच्छे मनुष्य सदा दूसरे के अच्छे गुणो को ही देखते है। गाय का दूध आप लोग पीते हैं। परन्तु गाय के थनो मे दूध भरा होने पर भी चीचडे तो खून ही चूसते हैं। तो जिनकी प्रकृति खराव होती है, वे दूसरो की बुराई को ही चीचडो के समान ग्रहण करते है।

आप लोग शाकाहारी हैं, मासाहारी नही हैं, तो आपके दिमाग, चेहरे और वोली मे कितनी सौम्यता और सात्विकता है। परन्तु जो मासाहारी है, तो उनके वचन, उनका चेहरा, व्यवहार और आचरण सुहावना होता है क्या ? नही होता, क्योकि वे पराये प्राणो को ले रहे हैं। और उनके शरीर की गन्दी वस्तुओ को खाते-पीते हैं। जो बुरी वस्तुओ को खाते-पीते है, उनका चेहरा भी विगड जाता है। आप एक ओर तो हिरण और खरगोश का चेहरा देखो तो कितना कोमल और सुहावना लगता है और उसे गोद मे लेने को हर एक का मन होता है। परन्तु शेर, चीता और रीछ का चेहरा देखो तो कैसा भयकर और क्रूर दिखता है। किसी को वे अच्छे नही लगते हैं। क्योंकि उनके व्यवहार मे क्रूरता है, बुराई है, इसीलिए वे किसी को नही सुहाते। जिनके व्यवहार मे सरलता और भद्रता होती है, वे सभी को अच्छे लगते है।

मैंने आज प्रारम्भ मे वताया कि ससार मे अमृत भी है और विप भी है। मुख मे जो जीभ है, उसमे अमृत भी है और विप भी है। इसीमे इसके दो नाम हैं। कहा भी है—

लाली बाई और फूला बाई यह दोय नाम है थारा ए—
बिना विचारी बोल रही, मीठा अरू खारारे,
रसना सी धी बोल।
बोल बोल ए वेरिण तो संग मै दुःख पावू ए,
रसना सीधी बोल—

भाइयो. इस जीभ के दो नाम हैं – लालीबाई और फूलाबाई। जब यह मीठी बोली बोलती है, तो सुनने वाले लोगो के हृदय मे अमृत रस भर देती है। और जब कडवी बोलती है, तो हृदय मे जहर भर देती है और बाहिर लडाई के काटे बिखेर देती है। और भी कहा है—

जिह्वा जोगरू लोग जिह्वा से रोग बढावे,
जिह्वा से जस होय-जिह्वा से आदर पावे।
जिह्वा नरक ले जाय जिह्वा देव लोक पठावे।
जिह्वा करे फजीत जिह्वा से जूते खावे—
अतल तराजू जीभ है—गुण औ गुण दोनो लखे।
'वैताल' कहै विक्रम सुनो! जिह्वा खोल सभाल के॥

इस जिह्वा से ही दुनिया के लोगो मे भलाई और बुराई होती है एव यही अमृत और विष पैदा करती है। परन्तु मनुष्य का कर्तव्य है कि अमृत को ग्रहण करे और विष को छोडे। यही व्याख्यान सुनने का सार है।

जो सद् वस्तु को ग्रहण करेंगे वही आध्यात्मिक आनद को प्राप्त करेंगे।

बधुओ! आप और हम आत्म साधना के पथ पर बढ़ना चाहते हैं तो हमे ससार छोडकर भागने की जरूरत नही है, किन्तु इस ससार मे जो जहर है, विष है, उसे छोडकर अमृत ग्रहण करके रहना सीखना है। बुराई को त्याग कर भलाई देखना, पाप से दूर हटकर धर्म का दर्शन करते रहना। बस यही है ससार मे रहकर साधना करते रहने की कला। जब यह दृष्टि आ गई तो फिर साधना का मार्ग आपको मिल गया समझो, जीवन जीने की कला आपको प्राप्त हो गई।

●●

८

हमारा लक्ष्य : वीतरागता

चतुर चित्त सरोज विकासकं,
अमिजरा मरणोद्भवनाशकम् ।
अखिल-ध्वान्त विनाशनभास्करं,
जयकर प्रणमामि जिनेश्वरम् ॥

भाइयो, यह जैनधर्म अनादि-अनन्त है, इसका न आदि है और न अन्त है। आप लोग जानना चाहेंगे कि जैनधर्म का सीधा सादा अर्थ क्या है? कहा है—

'राग-द्वेषादि भावशत्रून् जयतीति जिन

अर्थात् जो राग और द्वेष रूप भाव शत्रुओ को—अपने भीतर बैठे कर्म-वैरियो को जीतते हैं, वे जिन कहलाते हैं। इस प्रकार के जिन रूप अवस्था को प्राप्त पुरुषो के वचनानुसार जो आचरण करते है, उनके द्वारा बतलाए मार्ग पर चलते हैं, वे जैन कहलाते है। जैन पुरुषो के धर्म को या जिनराजो के द्वारा बतलाए गये धर्म को जैन धर्म कहते हैं।

राग द्वेष का स्वरूप

तो भाई, मूल चीज है राग और द्वेष। अब जानने की बात यह है कि ये राग और द्वेष क्या वस्तु है? उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है—

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं'

अर्थात् राग और द्वेष ये दोनो ही कर्मो के बीज हैं बीज से ही फल होते हैं। अब देखिए कि राग कैसा है और द्वेष कैसा है? राग है दावे के

समान और द्वेष है आग समान। अब आप विचार कर लीजिए कि आग और दावा दोनो जलाने वाले हैं। परन्तु दावा ऊपर से ठडा है और आग ऊपर से गरम है। परन्तु जितना विनाश दावा करता है,उतना क्या आग कर सकती हैं ? कभी नही। आग क्या करती है ? आग एक घर को जलाएगी,दो जलाएगी और यदि हवा तेज हो, तो दो-चार घरो को, अथवा पूरे गांव को भी जला-एगी। यदि वह जगल मे लग गई, तो एक आधे पहाड को या जगल को साफ कर देगी। परन्तु दावा वह है कि हजारो कोशो के वृक्षादि को साफ कर देगा। तो दावे के समान है राग, और आग के समान है द्वेष।

अब आप देखिए कि आपका जिनके ऊपर द्वेष है और जिनको आप बिगाडना चाहते है, या मारना चाहते हैं, तो उनका बिगाड कर दिया, या नाश कर दिया, तो मामला वही समाप्त हो जाता है। क्या वह आगे बढता है ? नही बढता। परन्तु राग तो बढता ही जाता है। देखो—जब बच्चा पैदा होता है, तब उसका माता से राग होता है, क्योकि उसके सिवाय उसका किसी दूसरे से परिचय या सम्बन्ध नही है। ज्यो ज्यो वह बड़ा होता जाता है और होश आता जाता है, त्यो त्यो ही पिता से, भाई से, बहिन से, मित्र मे राग बढता जाता है, और विवाह होने पर स्त्री से राग बढ जाता है, सन्तान होने पर उनसे भी राग बढता जाता है। फिर पुत्रो और पुत्रियो के भी सन्तान होने पर पोतो, पड़पोतो से और धेवती-धेवतो से भी वह राग बढ़ता चला जाता है। यही कारण है कि हमारे महर्षियो ने द्वेष रूप कर्म का नवें गुणस्थान मे क्षय होने के पश्चात् राग रूप कर्म का दशवें गुणस्थान मे क्षय बतलाया है। द्वेष के लिए इतना प्रबल कर्मबन्ध करने की आवश्यकता नही है, परन्तु राग के लिए अठारहो ही महा भयकर पापो का सेवन करना पडता है। हम लोग जिस कुटुम्ब-परिवार आदि के राग-वश होकर जिन-जिन महापापो का सचय करते हैं, वे भले ही हमारे काम मे आवें, अथवा नही आवें, पर मोह के बश होकर और कुटुम्ब परिवार के राग से अन्धा होकर यह ससारी प्राणी महापापो का उपार्जन करता ही है।

राग और आग

अभी इसी वर्ष मैं मेवाड गया था। वहाँ के एक गाँव की बात है कि बाप की स्थिति कमजोर और बेटे की स्थिति बहुत अच्छी थी। वह मद्रास मे काम-काज करने से चार-पाच लाख का आसामी बन गया। उसके लडके का विवाह-सम्बन्ध मेवाड के ही एक गाव मे निश्चित हुआ। देशवाले लोगो

की धारणा थी कि वह मद्रास से देश मे आकर के ही लडके का विवाह करेगा और पिता के घर से बरात निकलेगी। परन्तु लडके ने सोचा कि मेवाड से विवाह करने पर वहा अधिक दिन तक रुकना पडेगा और सब लोग यही समझेगे कि यह अपने बाप और भाईयो के साथ शामिल-शरीक ही है और ऐसा समझने पर मुझे अपने भाइयो को भी अपनी कमाई सम्पत्ति मे से हिस्सा देना पडेगा। अत यही अच्छा है कि बरात मद्रास से ही सीधी जावे। ऐसा विचार कर वह बरात मद्रास से ही लाया। जब विवाह करके वह मद्रास सीधा वापिस जाने लगा तो, कितने ही भाइयो ने उसको उलाहना दिया और भला-बुरा कहा। कितनो ने तो यहा तक कह दिया कि देश मे पिता और भाइयो के होते हुए भी तुझे मद्रास से बरात लाते हुए शर्म नही आई ? अब बरात सीधी मद्रास न ले जाकर घर ले जाओ और पिताजी आदि को नमस्कार आदि करके विवाह के शेष रस्म-रिवाज घर पर जाकर पूरे करो। लोगो की यह बात सुनकर वह बोला—बाप मेरे क्या लगते हैं ? अब आप लोग ही बतलावें कि जिनके बाप ही कुछ नही लगता, ऐसे लोगो को क्या कहा जावे ? सपूत या कपूत ? वह दो मा वाला नही था, सभी भाई एक ही मा से जन्मे हुए थे, और पिता भी वही था, जिसने उसे जेठे बेटे की सार-सभाल, लालन-पालन, पढाई-लिखाई और व्यापार-धन्धे आदि मे सब भाइयो की अपेक्षा अधिक श्रम उठाया था और अधिक ही धन व्यय किया था। फिर भी चार पैसे हाथ मे आते ही कहता है कि मेरा बाप क्या लगता है ? उसके ऐसा कहने और मद्रास से सीधी बरात लाने मे एक मात्र धन का राग ही काम कर रहा था कि मेरे से छोटे दो भाई हैं और वे बाप के साथ रहते हैं। अत मुझे अपनी सम्पत्ति मे से इन भाइयो को हिस्सा देना पडेगा। अरे ऐसे धन को धिक्कार है, जिस कारण पिता के निश्छल अनुराग और स्नेह को भी तुडा देता है।

आप चार भाई हैं, सभी अलग-अलग रहते हैं। इनमे से दो भाइयों की स्थिति अच्छी है और दो भाइयो की कमजोर है, तो आप लोग मालदार भाइयो को बुलाते हैं और गरीब भाइयो को नही बुलाते। उत्तर प्रदेश के एक नगर की घटना है कि मालदार भाई के लडके की स्त्री के गर्भ का आठवा मास था, उसके हर्षोपलक्ष मे उसने नगर के लगभग एक हजार व्यक्तियो का जीमनवार किया, पर अपने गरीब सगे भाई और उसके लडको को न्योता तक नही दिया, जब कि वह पडौस मे ही रहता था। धन को धिक्कार है, जो कि भाई-भाई मे इतना अन्तर डाल देता है। दुनिया तो कहती है कि

भाई जैसा सगपण अन्य कोई नही। पर जब आपके सामने ही ऐसे ऐसे खेल खेले जा रहे है, तब कहा रहा वह भाई-भाई का सगपण ? फिर भी लोग कहते है कि 'मेरा भाई, मेरा भाई ? तो क्या मेरा मेरा कर रहे हो ? अरे, यह राग का बन्धन ही ऐसा है, जो सब को बडा मीठा लगता है और द्वेष खारा लगता है। परन्तु द्वेष की इति श्री (समाप्ति) हो जाती है, किन्तु राग की इति श्री नही होती है। प० दौलतराम जी ने ठीक ही कहा है—

यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज पद वेइये,

अरे, यह राग की आग प्राणियो के हृदयो मे सदा धधकती रहती है और उससे सन्तप्त प्राणी कभी भी शान्ति नही पाता हे, इसलिए ज्ञानी जन कहते हैं कि इन विषय-कषायो को तूने अनादिकाल से सेवन किया है, अब तो इन का त्याग कर और समता भाव रूप अमृत का सेवन करके निजपद जो शिव स्वरूप मोक्ष पद है, उसे प्राप्त कर।

राग का ऐसा प्रभाव है कि जहा एक ओर वह कदम रखता है, वही दूसरी ओर द्वेप आ धमकता है। आचार्यो ने कहा है कि—

यत्र राग पद धत्ते, द्वेषस्तत्रैव निश्चयात्।
उभावेतौ समालम्ब्य विक्रमत्यधिक मन ॥

अर्थात् जहा पर राग अपना पैर रखता है, वही पर द्वेप निश्चय से आ जाता है। और इन दोनो का आलम्बन पाकर मन और भी अधिक क्षोभ को प्राप्त होता है।

पाप का मूल-राग

आप कितने ही अच्छे से अच्छे कर्त्तव्य कर लो कि हमारे कर्म हल्के हो कर्म हल्के हो जावेंगे और कर्मों की निर्जरा हो जावेगी। परन्तु भाइयो, जब तक अन्तरग मे राग और द्वेप के तीव्रतम भाव है, तो चाहे जो कर लो, परन्तु याद रखे कि उन से आपको कुछ भी लाभ होने वाला नही है। आप अपने प्रेमी बन्धु के लिए झूठ, कपट, दगाबाजी, विश्वासघात और नहीं करने योग्य भी अनेक कार्य इस राग के पीछे ही करते है। आपका एक मित्र है, जिसकी आयु पचास वर्ष की है और दो तीन बाल-बच्चे भी हैं। यदि उसकी स्त्री मर जाती है और वह चाहता है कि मेरा दूसरा विवाह जल्दी हो जावे,

तब आप लडकी वालो के यहा जाते हैं और उसका सम्बन्ध कराने के लिये झूठ बोलते हैं और उसकी आयु तीस वर्ष की बतलाते हैं। कहते हैं कि छोटी उम्र मे शादी हो गई थी, इसलिए बाल-बच्चे बडी उम्र के हैं, आदि। अब देखो कि मित्र के राग के पीछे आप उसको पचास का न कहकर तीस का बताते हैं, तो क्या यह उस लडकी के साथ गद्दारी नही है, क्या यह उसके साथ धोखा नही है और क्या उस बेचारी के जीवन के साथ खिलवाड नही है? पर यह सब पाप आप क्यो करते हैं क्योकि आप मित्र के राग मे बधे हुए है। उसके बाल बच्चे हैं, उनके भी भविष्य का आपको कुछ ध्यान नही है कि यह विमाता आकर उनके साथ कैसा सलूक करेगी, कैसा दुर्व्यवहार करेगी? इसका भी आपको कुछ होश-हवास नही है? फिर भी आप अपने मित्र को सोने का बनाकर के उसकी शादी का प्रयत्न करते हैं और उसकी शादी कराके रहते हैं। यदि किसी के साथ मे आपका द्वेष है, वह यदि मोती के समान भी निर्मल हो, तो भी आप उसकी सैकडो बुराइया करके काच के समान हीन बना देंगे? भाइयो, यह कोई कम पाप नही है, बडा सगीन पाप है। यह सब इस राग और द्वेष की ही करामात है कि इनके पीछे आप भले को भी बुरा बना देते है और बुरे को भी भला बना देते हैं। राग और द्वेष के चक्र मे आप बडे होशियार हैं, कभी किसी से मात खानेवाले नही है। सबको उल्टा-सीधा समझा कर, उल्लू बना सकते हो। भले और बुरे का ज्ञान होते हुए भी आप राग-द्वेष से अन्धकार मे फस जाते हैं। आपकी आखें बराबर है, उनकी ज्योति भी बराबर है, परन्तु जरा सी भी आधी आ जाती है, तो अपना हाथ भी दिखाई नही देता है। तो क्या नजर नही है? नजर तो है, परन्तु आधी आ जाने से जैसे आप को कुछ भी नही सूझता है इसी प्रकार भले-बुरे का ज्ञान होते हुए भी राग-द्वेप की आधी आ जाने पर आपको कुछ नही सूझता है और आपका वह सारा विवेक गायब हो जाता है। यदि कोई बोलता है और आपके उस अनुचित कार्य मे हस्तक्षेप करता है, तो आप भोले बन जाते हैं और कहने लगते हैं कि मुझे तो कुछ भी मालूम नही है। भाइयो, जैसे इस बाहिरी आधी का अधड अच्छी नजर वाले को भी अन्धा बना देता है, वैसे ही यह राग-द्वेप का भीतरी अधड भी बडे-बडे समझदारो और ज्ञानवान पुरुषो को भी अन्धा बना देता है।

शिष्यो का मोह

राग की प्रबलता बताते हुए आचार्यों ने कहा है कि—

'मध्ये मध्येहि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्'

अर्थात् आत्मा के भीतर जब तक मोह कर्म बना रहता है, तब तक बड़े-बड़े योगियो के हृदयो मे भी चपलता आ जाती है और वे उसके प्रभाव से नही करने के योग्य भी कार्यो को कर बैठते हैं। देखो, हरिभद्रसूरि को, जो परम ज्ञानी, त्यागी, सयमी और तपस्वी थे, तथा जिनके शिष्य बड़े विद्वान्, ऊचे त्यागी, तपस्वी और महान् उत्साही थे, वे चीन, भूटान, तिब्बत आदि देशो मे जहा कि बौद्ध धर्म फैला हुआ था—जैन धर्म का प्रचार करने को गये। वे लोग महाविद्वान् थे, अत जो भी उनके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए सामने आता, उसे वे लोग हरा देते थे। इस प्रकार वे बौद्ध धर्म के बड़े-बड़े विद्वानो को वाद-विवाद मे परास्त कर सर्वत्र जैन धर्म का प्रचार कर रहे थे। उनके इस प्रचार से द्वेष को प्राप्त हुए बौद्ध लोगो ने उन सब को कत्ल कर दिया। जब हरिभद्रसूरि को एक लम्बे समय तक भी अपने शिष्यो का कोई कुशल-समाचार नही मिला, तो उन्हे बड़ी चिन्ता हुई। वे बड़ी श्रद्धा वाले थे, उनको अनेक देविया सिद्ध थी, जो उनकी सेवा उपासना मे सलग्न रहती थीं। अत हरिभद्रसूरि ने उनसे पूछा कि क्या बात है कि शिष्यो के कोई कुशल-समाचार नही आ रहे है? तब एक देवी ने प्रकट होकर और नमस्कार करके कहा—गुरुदेव! आपके शिष्यो को तो बौद्ध लोगो ने वहा पर कत्ल कर दिया है। हरिभद्रसूरि यद्यपि बड़े सयमी और ज्ञानवान् थे, कोई सामान्य व्यक्ति नही थे, तथापि उनके हृदय मे शिष्यो का राग जाग उठा और प्रतिशोध की ज्वाला जल उठी—अरे मेरे शिष्यो को उन लोगो ने कत्ल कर दिया है? क्या समझा है, उन लोगो ने। बस, इस प्रकार वे शिष्यो के राग मे ऐसे अन्धे बन गये कि उसका बदला लेने को उतारु हो गये। उन्होने उपाश्रय का द्वार बन्द किया और विद्या के बल मे एक भट्टी सुलगाई, उस पर एक बड़ा कढाव रखा, तेल भरा और उसका उबालना शुरू किया। जब तेल उबल कर लाल सुर्ख हो गया, तो जैसे पक्षी उड कर आते हैं, वैसे ही उन बौद्ध देशो के वादियो को उड़ाना शुरु किया और एक एक करके १४४४ व्यक्तियो को विद्या के बल से उड़ाकर के उस खौलते हुए तेल मे तल डाला। देखो—एक कीडी की भी विराधना नही करने वाले हरिभद्रसूरि ने शिष्यो के राग से अन्धे होकर १४४४ व्यक्तियो के प्राण ले लिये! उस समय उनका ज्ञान और विवेक कहा चला गया। सारी पढी हुई विद्याए कहा चली गई, जो वे यह सब भूल कर इतना भारी नर-सहार कर बैठे? भाइयो यह सब शिष्यो के

राग का प्रभाव है कि उनके हृदय मे इतना भारी द्वेष जागा और इतना बडा नर-सहार कर डाला !!!

इसी समय की बात है कि वहा की एक श्राविका—जो कि बडी धर्मात्मा थी, जीव अजीव की विवेक वाली थी और उनकी रक्षा में सदा सावधान रहती थी। वह अपने घर पर रसोई कर रही थी कि इतने मे एक बिल्ली आई और उसने दूध का बर्तन उघाड करके दूध पी लिया। उसे एकबार सिसकार करके उसने भगा दिया। वह दूसरी बार आई और सिसकार करके उसे फिर भी निकाल दिया। वह तीसरी बार आई। अब की बार उस श्राविका ने कुछ रीसकर एक छोटा चीपिया उसके ऊपर दे फेंका। यद्यपि उसका भाव बिल्ली को भगाने का था, मारने का नही, परन्तु होनहार की बात, कि वह चीपिया उसके मर्मस्थान पर लगा और वह वही ढेर हो गई—मर गई। जैसे ही उसे मरते देखा कि वह श्राविका घबराई कि अरे, मेरे हाथ मे एक पचेन्द्रिय जीव की हत्या हो गई। मेरे मारने के भाव नही थे—भगाने के ही थे। पर यह क्या गजब हो गया। हाय मैं बिल्ली की हत्यारिणी हो गई। यह विचार कर उसने रसोई बनाना तो छोडा और सोचा कि गुरुदेव के पास जा करके प्रायश्चित ले आऊ ? भाइयो, इसी का नाम धर्म है और यही जिनमार्ग है कि यदि प्रमाद से, या आवेश से कोई भूल हो जाय और नही करने योग्य भी कार्य बन जाय, तो उसको तुरन्त सुधार लिया जावे। जिसमे इतनी क्षमता हो और इतना विवेक हो, तभी वह जैनधर्मी कहला सकता है। अन्यथा फिर पाप बन्ध करने मे आगे और दूसरो की निन्दा करने मे ही आगे रहते हैं, और अपनी आलोचना नही कर सकते हैं। किन्तु वह श्राविका तो परम धर्मात्मा थी, अत अपनी आलोचना करने और प्रायश्चित लेने के लिए उपाश्रय को गई। वहा जाकर उसने देखा कि उपाश्रय के द्वार बन्द हैं। देखो—यह तो बिल्ली की हत्या का प्रायश्चित लेने आ रही है और उपाश्रय के भीतर बौद्ध साधुओ का होम हो रहा है। द्वार बन्द देखकर उस श्राविका ने किवाडो को खटखटाया। भीतर से आचार्य ने पूछा—कौन है ? इसने कहा—आपकी श्रमणोपासिका है।

आचार्य ने पूछा—कैसे आई—इसने कहा, भगवन्, सेवा मे कुछ निवेदन करने आई हूँ।

आचार्य ने द्वार खोल दिया और पूछा कि क्या कहना है ? जल्दी कहो, मुझे समय नही है। उसने कहा—महाराज, बडा अनर्थ हो गया। मैं रसोई बना रही थी कि एक बिल्ली आई। मैंने उसे भगाने के लिए एक छोटा सा

चिमटा फेंक दिया और बिल्ली की जान चली गई। अब इस पाप का जो प्रायश्चित हो, वह आप मुझे दो।

यह सुनते ही आचार्य के ऊपर मानो हजारो थप्पडे लगी कि अरे, तू क्या कर रहा है? तेरी श्राविका—जा तेरे पैरो की धूलि लेने वाली है, और बिना इरादे के जिसके हाथ से एक बिल्ली की हत्या हो गई वह तो प्रायश्चित लेने को आई है और तूने तो १४४४ मनुष्यो को इस कढाव मे होम दिया, यह कितना बडा घोर पाप कर डाला। अब तो तेरा साधुपना नही रहा। देखो, उन्होने कितना अन्याय कर डाला। परन्तु अन्दर मे ज्ञान था, तो अपनी भूल समझते देर नही लगी। वे उस श्राविका से बोले—बाई, अब तुझे दण्ड देने के योग्य नही रहा। क्या बताऊ, मैंने तो शिष्यो के व्यामोह मे आकर १४४४ द्वेपियो को होम दिया है। मैं इतना हत्यारा और पातकी बन गया हूं? अब तुझे क्या दण्ड देऊँ? तब श्राविका कहती है कि आप तो रत्नो के व्यापारी है, यदि दो चार रत्नो का घाटा पड गया, तो क्या है? मैंने तो दो-चार रत्न ही इकट्ठे किये हैं, इसलिए मुझे तो अपनी पूजी सभाल करके रखनी है, अत मुझे प्रायश्चित दीजिए। मेरा आयुष्य यदि समाप्त हो जाय, तो मैं विराधक ही रहूंगी और मेरा पर भव बिगड जायगा। अत मुझे विराधक नही रहना है। भाइयो, यह कहलाता है धर्म का पालन, कि जिसके प्रभाव से मनुष्य की आत्मा इतनी सरल हो जाती है।

आचार्य ने उसे दण्ड दे दिया और उसे घर रवाना कर दिया। पर भीतर आकर सोचने लगे—हाय, हाय!! मैंने कितना बडा अनर्थ कर डाला। इस महापाप से मेरा कैसे छुटकारा होगा! इस प्रकार वे अपनी निन्दा और गर्हा मे सलग्न हो गये। अपने गुरुदेव का स्मरण करते हुए उनके नेत्रो से अश्रु धारा बह निकली। जब पश्चात्ताप करते हुए हृदय कुछ शान्त हुआ, तब आत्म शुद्धि का उपाय सोचने लगे। उन्होने वह भट्टी, कढाव का सब पपाल मिटाया और १४४४ व्यक्तियो की हत्या के प्रायश्चित्त में आत्मवाद के पोषक १४४४ ही ग्रन्थ बनाने का सकल्प किया। और प्रतिज्ञा ले ली कि जब तक ये ग्रन्थ नही बन जावेंगे, तब तक अन्न नही खाऊगा। उनके बनाये हुए उक्त ग्रन्थो मे आज प्राय सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जो कि बडे सुन्दर है और जिनको पढते हुए बडे से बडा दुराग्रही भी उनकी प्रशसा किये बिना नहीं रह सकता। उन्होने प्रभु के सामने अपने पापो की शुद्ध हृदय से आलोचना की कि हे प्रभो, शिष्यो के राग के वशीभूत होकर मैंने यह घोर पाप किया है। अज्ञान से मैंने यह अकरणीय भी कार्य कर डाला। इससे

छूटने का मुझे मार्ग बताओ, जिससे कि मैं इस महापाप से विमुक्त हो सकू ।

यद्यपि हरिभद्र सूरि रागावेश मे यह महापाप का कार्य कर बैठे, परन्तु दुर्गति आयुबन्ध नही पड़ पाया था । यदि खोटी गति की आयु का बन्ध पड़ जाता, तो फिर उनके भाव आलोचना और प्रायश्चित्त के नही होते । अत दुर्गति की आयु का बन्ध नही हो पाया था अत उन्होंने प्रायश्चित्त लेकर अपना सुधार कर लिया ।

आप लोग पूछेंगे कि इतना महापाप करके भी उन्होने अपना सुधार कैसे कर लिया और कैसे वे उस महापाप से छुटकारा पा गये ? अरे आप लोग प्रतिदिन सुनते हैं फिर भी आपकी स्मरणशक्ति इतनी कमजोर क्यो हो गई है ? पर्युषण पर्व के दिनो में आप लोग हमेशा से अतगड सूत्र मे सुनते आ रहे हैं कि अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता था । उसका यह क्रम छह मास तक चलता रहा और इस अवधि मे उसने कुल ११४४ मनुष्यो की हत्या की । फिर भी वे मुक्ति को गये, या नही ? छह महीने तक पाप उपार्जन किया और छह महीने ही सयम और तप की आराधना करके कर्मबन्ध से छूटकर मोक्ष मे चले गये ।

अब बताइये कि मोक्ष मे क्यो गये ? क्योकि उन्होने अपने शुद्ध अन्त करण से अपने पापो की आलोचना की और पश्चात्ताप किया । सयम अगीकार करके घोर से घोर उपद्रव आने पर भी समता भाव धारण किया और क्षमा रक्खी, तब वे अपने उपार्जित कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष मे गये । आपको पता है कि जब वे साधु जीवन मे नगर के भीतर घर-घर गोचरी को जाते थे, तो क्या होता था ?

मुनि बेले-बेले जावजीव ठावे—
नरनारी मिलकर मुनि को बहुत सतावें ।
मुनि कर क्षमा को कर्म पुंज उड़वाये ॥
मुनि कर्म क्षपाके शिव नगरी को पाये ।
सुन चेतन रे तुम गुणवत मुनि को ध्यावो ॥
एक भजो निरंजन गुणवत का गुणगावो ॥ १ ॥

अर्जुनमाली ने साधु बनते ही बेले-बेले की तपस्या प्रारम्भ कर दी । वे जब पारणे के दिन नगर मे जाते हैं, तो उन्हे देखते है लोग लकडी-पत्थरो से मारते हुए यह कहते कि यह हमारे बाप का हत्यारा है, कोई मामा का

हत्यारा कहता, तो कोई, बहिन और माता, नानी आदि का हत्यारा कह कर उनको मारने के लिए दौडता । लोगो के परस्पर मे अनेक सम्बन्ध और रिश्ते होते है । तदनुसार सभी लोगो का कोई न कोई कुटुम्बी, सम्बन्धी या रिश्तेदार अर्जुनमाली के द्वारा मारा ही गया था । अत जिसे जब जैसा मौका लगता, वह उसी प्रकार से अर्जुनमाली साधु की पिटाई करता, कोई गालिया देता और कोई दुतकारता-धिक्कारता । कोई कहता—आगे आओ, मैं आहार देता हूं और ऐसा कहकर, उन्हे घर के भीतर बुलाकर उनकी डन्डो से मरम्मत करता । कोई कहता कि अरे हत्यारे, मुझे तो आहार देना भी महापाप है । लोगो के ऐसे ऐसे कटु, कठोर, मर्मभेदी और निन्द्य वचन सुनकर अर्जुनमाली सोचता है कि ये लोग सत्य ही तो कहते है । मैं वास्तव मे ऐसा ही पापी हूं । परन्तु ये लोग तो बडे दयालु हैं, जो मुझे जीवित तो छोड रहे है । मैंने तो इनके सगे सम्बन्धियो को मारा है, फिर भी ये लोग मुझे थोडी ही सजा दे रहे हैं । इस प्रकार अर्जुनमाली ने अपने ऊपर प्रतिदिन आने वाले बडे से बडे सकटो, उपसर्गों और परीषहो को बडी शान्ति पूर्वक सहा और समता भाव को बनाये रखने मे कोई कोर-कसर नही रखी ।

इसी प्रकार हरिभद्र सूरि ने भी अपनी भरपूर निन्दा-गर्हा की और अपने पापो की आलोचना करके अपने को जीव घात के गुरुतर पाप-भार से हलका किया और आत्म-शुद्धि के लिए १४४४ ग्रन्थ बनाये । भगवान तो घट-घट के अन्तर्यामी है । हम जो स्वार्थ से वशीभूत होकर भगवान की प्रार्थना करते हैं, वह भी भगवान को मालूम है, भय और लोभ के वशीभूत होकर जो उपासना करते हैं, वह भी उन्हे मालूम है, तथा श्रद्धा एव भक्ति से जो प्रार्थना करते है, वह भी वे जानते हैं । परन्तु भगवान न तो निन्दा करने वाले या स्वार्थ-प्रेरित होकर प्रार्थना करने वालो को उपालम्भ ही देते हैं और न श्रद्धा-भक्ति से प्रेरित होकर गुण-गान करने वालो को कोई वरदान ही देते हैं । वे तो समभावी वीतरागी है । उन्हे न पूजक पर राग है और न निन्दक पर द्वेष । प्रसिद्ध स्तुतिकार समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न पुनातु चित्त दुरिताञ्जनेभ्यः ॥

अर्थात् हे नाथ, आप वीतराग है,—राग-द्वेष से रहित है, अत न अपको पूजक की पूजा से प्रयोजन हैं, और आप वैर भाव से रहित हैं, अत न आपको निन्दक की निन्दा से ही प्रयोजन है । तथापि आपके पवित्र गुणो की स्मृति हमारे चित्त को पापरूप अजन से पवित्र करती है ।

आगे वे ही समन्तभद्रस्वामी भगवान की स्तुति करते हुए फिर भी कहते हैं—

सुहृत्त्वयि श्री सुभगत्व मश्नुते द्विषन् त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते ।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो, पर चित्रमिदं तवे हितम् ॥

हे प्रभो, यह परम आश्चर्य की बात है कि आप तो पूजक और निन्दक शत्रु और मित्र मे अत्यन्त उदासीन रहते है, फिर भी आपके प्रति सद्भाव रखने वाला सहृद् तो लक्ष्मी के सौभाग्य को प्राप्त करता है और आपके प्रति दुर्भाव रखने वाला शत्रु प्रत्यय के समान प्रलय को प्राप्त हो जाता है ।

भाइयो, बात यह है कि भगवान् तो दर्पण के समान स्वच्छ निर्मल हैं, दर्पण मे यदि कोई प्रसन्न होकर अपना मुख देखेगा, तो सुन्दर प्रतीत होगा । और यदि भयावनी बुरी सूरत बनाकर देखेगा - तो वह बुरा ही दिखेगा । इसमे दर्पण का क्या दोप है । वह तो आपके स्वरूप को जैसा का तैसा दिखा देता है । भगवान तो सर्व—प्राणिमात्र के—हितैपी हैं । जो उनके उपदेशानुसार चलते हैं और प्राणिमात्र पर सद्भाव रखते हैं, करुणाभाव रखते हैं, वे ऐसा पुण्य उपार्जन करते हैं कि उन्हे उत्तरोत्तर उत्तम लक्ष्मी और ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती रहती हैं । किन्तु जो भगवान पर श्रद्धा नही रखते हैं, प्रत्युत द्वेप भाव रखकर उनकी निन्दा करते हैं और उनके बतलाए हुए दया मार्ग पर नही चलते हैं, वे ऐसे पापो का उपार्जन करते हैं, कि समार मे नाना दु खो को उठाते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं । वास्तव मे भगवान तो किसी का भी भला या बुरा नही करते हैं, वे तो सब पर समभाव के धारक है और सबको समान दृष्टि से देखते हैं ।

इस प्रकार के वीतरागी प्रभु को लक्ष्य करके हरिभद्र सूरि ने जब अपने पापो की पुन पुन आलोचना की, आत्म-निन्दा और गर्हा की, तब वे उस महाहत्या के पाप से रहित हुए । कहने का सार यह है कि शिष्यो के राग के वशीभूत होकर हरिभद्रसूरि ने और द्वेप के वश होकर अर्जुनमाली ने जीव-हत्या का महापाप कर डाला था । किन्तु जो ज्ञानी और विवेकी होते है, वे पहिले तो ऐसा अविवेक पूर्ण कार्य करते ही नही है । यदि कदाचित् राग या द्वेप के आवेश से कभी कोई अनर्थ कर भी डालें, तो वे शीघ्र ही सभल जाते हैं । यह आत्म-सभाल ही मनुष्य के उत्थान का उपाय है, इसी को मुक्ति का मार्ग कहते हैं ।

साधु-सन्त भी राग-द्वेष के चक्कर मे

बडे बडे ज्ञानी ध्यानी, समझदार लोग भी जब राग-द्वेष के चक्कर मे आ जाते है, तब सारी धर्म-कर्म की बाते भूल जाते हैं। हम आप लोगो को उपदेश दे रहे हैं, कि समता रखो, भाव धारण करो। यदि किसी के साथ वैर भाव हो गया हो, तो उसकी जल्दी से जल्दी माफी माग लो और विकार भाव को दूर कर दो। जो लघुकर्मी होते हैं, वे इसे छोडते भी हैं। कोई लिहाज से, कोई दवाव से और कोई मन मे छोडते है। परन्तु हम जो उपदेश देते हैं और हमारे मुनि सघ मे—श्रमण सघ मे—इस प्रकार की कोई वैनस्यता खडी हो गई, तो क्या वे भी इसी प्रकार से क्षमा-याचना करते हैं? कई सवत्सरिया निकल गईं, परन्तु क्षमा-याचना नही की। शास्त्र मे तो कहा है कि दिन मे यदि कोई भूल हो जाय तो, शाम को प्रतिक्रमण करके शुद्धि करलो। और यदि रात्रि मे भूल हो जाय, तो प्रात काल प्रतिक्रमण कर क्षमायाचना कर लो। यदि प्रतिदिन करना सभव न हो, या न कर सको, तो पन्द्रह दिन मे पाक्षिक प्रतिक्रमण कर क्षमा माग लो। यदि पाक्षिक प्रतिक्रमण मे भी चूक हो जाय, तो चार मास में चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करके माफी माग लेना चाहिए। यदि चार मास मे भी द्वेष की आग शात नही हो सकी हो, तो वर्ष की समाप्ति पर सावत्सरिक प्रतिक्रमण के समय-सवत्सरी के दिन तो क्षमा-याचना कर लेना चाहिए। परन्तु एक नही, अनेक सवत्सरिया निकल रही हैं तो भी क्षमायाचना का पता नही है। जब इतना प्रबल तीव्र क्रोध है, तब इसको क्या कह सकते हैं? ऐसे क्रोध को तो अनन्तानुवन्धी क्रोध ही कहा जायगा। इसी तीव्र वासना के कारण शास्त्रो में इसकी स्थिति यावज्जीवन की कही है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय हो, तो बारह मास की स्थिति होती है, प्रत्याख्यानावरण कषाय की स्थिति छह मास की होती है और सज्वलनकषाय की स्थिति एक पक्ष की कही गई है। परन्तु जिनका द्वेष भाव इतना तीव्र हो कि अनेक सवत्सरियो के बीत जाने पर भी जो एक दूसरे से मिलने को तैयार नही, उनकी कषाय को अनन्तानुबन्धी के सिवाय और क्या कहा जाय?

आज जिधर देखो उधर ही प्रतिदिन कषाय की आग बढ रही है, परतु शान्त करने को तैयार नही हैं। क्षमा तो बडों के होती है, छोटो के नही। जो बडे होते हैं, वे ही दूसरो को क्षमा करते हैं और स्वय क्षमा धारण करते हैं। यथार्थ मे ऐसे क्षमाशील व्यक्ति को ही सच्चे सयमी और त्यागी जानना चाहिए।

राग-द्वेष को जीतने से-क्षमा

एक बार की बात है कि यही सिंहपोल है और संवत् उन्नीस सौ अस्सी की साल में यहीं पर कुछ सन्त उतरे थे। यह स्थान सम्भवतः उन्नीस सौ बहत्तर की साल में खरीदा गया है। उस समय रामनाथजी मुणोत श्रावकों में अग्रणी थे। उनका मुसद्दियों में भी अच्छा नम्बर था। और तामीजी भी थे। वे अच्छे गुणी पुरुष थे। एक दिन मुनि महाराज व्याख्यान दे रहे थे। प्रकरणवश उनके मुखसे निकल गया कि आज तो क्षमा ठाकुर साहब के हृदय में एक नम्बर की आ रही है। सभा में सभी प्रकार के लोग होते हैं। किसी ने कहा—महाराज साहब तो बड़े आदमियों को खुश करने के लिए मुख देखी तारीफ कर देते हैं। यहा तो कोई चू टिए भरने वाला जब तक नहीं मिला, तब तक ही क्षमा है, नहीं तो बिना पिए हुये ऊगती है। जब व्याख्यान पूरा हुआ, तब रामनाथ जी वहा से रवाना हुए और अचलनाथ जी की जहा गली है, वहा जाकर खडे हो गए। और अपने आदमी से कहा कि भाई, मडी म से साग-भाजी ले आ। आदमी तो साग-भाजी लेने चला गया और जिसमें मन मे गड़बड़ थी वह पीछे के पीछे ही था गली के भीतर ठाकुर साहब खड़े थे। किसी को वहा पर नही देखकर उसने ठाकुर साहब को एक थप्पड मार दी। मारते तो उसने थप्पड मार दी, परन्तु उसका कलेजा धूजने लगा। तब ठाकुर साहब ने कहा—कि भाई, इस दूसरे गाल में एक थप्पड और मारो, नही तो वह नाराज हो जायगा। उसे चुप देखकर ठाकुर साहब बोले—अरे भाई, तेरे हाथ के तो कहीं चोट नहीं लगी?

ठाकुरसाहब कितने बडे आदमी थे, सभी मे उनका आदर-सम्मान था, सभी उन्हें जानते और मानते थे। वे चाहते तो उसे दण्ड दिलवा सकते थे। वह जमाना ही उनका था और फिर राठौरी राज्य। उस जमाने मे तो मुसद्दियों के पत्थर पानी मे तैरा करते थे। परन्तु उन्होंने क्षमा रखी और थप्पड मारने वाले से मीठे ही बोल बोले। वह उनकी यह अद्भुत क्षमा को देखकर शर्म के मारे पानी-पानी हो गया। उसने ठाकुरसाहब के पैर पकड़ लिए और गिड़गिड़ाकर बोला—ठाकुरसाहब! मुझसे भूल हो गई। और वह भी इस कारण हुई कि महाराज साहब ने आज व्याख्यान के समय फर्माया था कि आप मे अपार क्षमा है। मुझे महाराज की बात पर विश्वास नहीं हुआ और परीक्षा करने के लिए ही मैंने आपको थप्पड मारा है।

ठाकुरसाहब बोले—भाई, तूने बहुत अच्छा किया। परन्तु बता कि अब तेरी शका निकली या नही? अरे मुझमे तो इतनी क्षमा नही है। परन्तु

बडे पुरुषो ने जब फर्माया है, तो कुछ विचार करके ही फर्माया होगा। भाइयो, कितना बडप्पन था उनमे। क्षमा उसी की मानी जाती है, जिसमे शक्ति और सामर्थ्य होते हुए भी बदला लेने की भावना नही हो। जिसमे कोई शक्ति नही, सामर्थ्य नही है, गरीब है, असहाय है और उसे यदि कोई दो थप्पड मार दे और वह कहे कि मैंने क्षमा रखी, तो भाई कुदरत की ही उसके क्षमा है। वह तो है कमजोर, और आप है ताकतवर। फिर वह क्षमा रखने की बात कहे, तो व्यर्थ ही है। भाई, क्षमा तो वीरो के होती है और वह उनको ही शोभती है कि जो बदला लेने की शक्ति और सामर्थ्य रखते हुए भी बदला लेने की भावना भी मनमे नहीं आने देते है। इसीलिए तो महापुरुषो ने कहा है कि 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' अर्थात् क्षमा धारण करना वीर पुरुषो का आभूषण है।

एक बार की बात है—स्थानक मे चार-पाच सन्त विराजे हुए थे। उनमे एक सन्त सबसे छोटे थे। गोचरी को जाते समय उनके मन मे लहर आई कि कोई मीठा पदार्थ गोचरी मे मिले तो ठीक रहे। वे मिठाई बाजार मे गये और इधर से उधर तक एक बार, दो बार चक्कर लगा आये। हा उन्होने इतनी साधु-मर्यादा अवश्य रखी कि मैं साधु हूँ, अत मुझ मागना नही है। हा यदि कोई हलवाई उठ कर कहे और लेने के लिए प्रार्थना करे, तो ले लेना। भाई, उन्होने यह मर्यादा क्यो रखी ? क्योकि वे उत्तम जाति और कुल के थे। सो कुल की लाज तो रहती ही है। उसी बाजार मे रामनाथ जी भी खडे थे। जो श्रावक पुण्यशील होते हैं, वे गुरु की निरन्तर उन्नति चाहते हैं। वे उन सन्त पर बराबर दृष्टि रख रहे थे और अपने आपको उनमे छिपाये हुए थे। उन्होने देखा कि छोटे मुनि है और हलवाई गली मे दो तीन चक्कर लगा दिये है, तो मालूम होता है कि इन्हे किसी न किसी मीठी वस्तु की आवश्यकता है। जब वे मुनि दूसरी ओर गये, तब आपने हलवाई को इशारा किया। भला, जोधपुर मे रामनाथजी को कौन नही पहिचानता था। उन्होने हलवाई से कहा कि यदि कोई सन्त-महात्मा इधर से निकले, तो जरूर हाथ फरसना और लाभ लेना। अपन लोग गृहस्थ हैं। वैसे जोधपुर मे सारी कौमे (जातिए) सुलभ हैं। किसी भी जाति के घर मे सन्त-महात्मा पधार जाते हैं, तो सभी लोग लाभ लेते हैं। वे किसी के भी यहा जावें, सभी भक्ति से आहार देते है। जैसे दान देने मे श्रावको को आनन्द आता है, वैसे ही सभी को आता है। वे महात्मा जैसे ही पुन उधर से निकले, तो वह हलवाई झट उठकर आडा फिरा। सन्त को जैसी

खपत थी, वैसा ले लिया और उपाश्रय मे आकर एव गुरु महाराज को दिखा करके खा लिया। दोपहर को रामनाथजी आदि अनेक बड़े आदमी स्थानक मे आये, उन्होने बडे सन्त के पास जाकर नमस्कार किया और सेवा करके अर्ज की कि छोटे मुनिराज की भी सेवा कर लेवे। गुरुजी ने कहा कि हा ठाकुर साहब, जरूर लाभ लें। ठाकुर साहब छोटे मुनिराज की सेवा मे गये। वे यो ही नही गये थे, परन्तु मन मे उनके प्रति कुछ शका थी, इसलिए गये थे। भाई, सन्त की शका श्रावक के और श्रावक की शका सन्त के रहती ही है। ठाकुर साहब को आया हुआ देखकर छोटे मुनि ने विचारा कि ठाकुर साहब आज मेरे पास क्यो आये हैं? ठाकुर साहब ने वन्दना करके कहा कि धन्य है आपको, जो इस उम्र मे साधुपना लिया और आप धर्म को खूब दिपा रहे हैं। आपको लाख-लाख धन्यवाद है।

मुनि ने कहा—नही ठाकुर साहब, यह तो गुरुदेव की कृपा है।

ठाकुर साहब बोले—गुरुदेव की कृपा तो है ही, परन्तु माल रखने वाले तो आप हैं। वलिहारी तो आपकी हैं।

ठाकुर साहब ने जरा रुककर कहा—महाराज, मैं एक वात पूछना चाहता हूं।

छोटे सन्त ने कहा—हा ठाकुर साहब पूछो। उन्होने कहा—आज आप कदोई (हलवाई) की दुकान पर पधारे और आपको कंदोई गली मे दो तीन वार फिरना पडा, तो भिक्षा मिली कि नही मिली? साधु बोले—क्या? वे हृदय के बहुत सरल थे। पहिले तो वोले कि कोई कार्य था। फिर बोले—"हा ठाकुर साहब, थोडा जीभ के रसने सताया, इसलिए वहा गया था। ठाकुर साहब ने पूछा कि महाराज, अन्तराय टूटी या नही? नही तो मैं आपके साथ चलता हूं। जैन मार्ग मे कोई कमी नही है।"

मुनि ने कहा—अन्तराय टूट गई है। ठाकुर साहब ने कहा—धन्यवाद। आप मे कितनी सरलता है, निरभिमानता है, लाख-लाख रग हैं आपको। इधर तो ठाकुरसाहब आपकी स्तुति कर रहे है और उधर आपमे क्या भाव जागे? वे उत्तराध्ययनसूत्र पढते थे। उसमे एक गाथा आती है कि—

दुद्ध दही विगईओ आहारेई अभिक्खण।
अरए य तवोकम्मे पावसमण त्ति वुच्चई॥

दही, दूध, घी, तेल और गुड ये पाच विगय जो सत प्रतिदिन लगाता है, दिन मे वार वार आहार करता है, तपस्या करने मे जो अरति असन्तोष

और दु ख मानता है, वह पापी श्रमण कहा जाता है । मुनि ने विचारा कि ओ हो ! मै साधु होकर पापी श्रमण बना । मुझे रस की आवश्यकता नही है । यह विचार उन्होने कहा ठाकुर साहब, मैं अभी पाछा आता हू । वे तुरन्त वहा से उठकर गुरु के पास गये और कहा—गुरु महाराज, आज से मुझे पाचो विगय का त्याग करा दीजिए ! गुरु ने पूछा—अरे भाई ये भाव कैसे आये ? मुनि ने कहा आगये गुरु महाराज ! गुरुदेव, अब मुझे रस का लोलुपी नही रहना है ।

भाइयो, जितने भी प्रत्याख्यान होते हैं, वे सभी महत्वपूर्ण है । यदि बडे जन दे दे, तो उनका आगार है । उपवास, नीवी, आयबिल आदि जितने भी तपस्या के भेद है, उनमे महत्त्वपूर्ण बडो का आगार मानना है । यदि गुरुजन व्रत को तुडावे, तो वह भी बडो की आज्ञा है । उन मुनि ने इस प्रकार सर्व विगयो के त्याग का नियम ले लिया और वापिस अपने स्थान पर आ गये । ठाकुर साहब ने पूछा—कहा पधारे थे ? मुनि ने कहा · कि हृदय मे उज्ज्वल भाव आये, सो गुरुदेव के पास जाकर सारे विगयो का त्यागकर आया हूँ । यह सुनते ही ठाकुर साहब दग रह गये । उन्होने कहा कि मैंने तो सहज भाव से पूछा था और आपने तो नियम ही ले लिया । मुनि ने कहा—कि मैंने आपके कहने से विगयो का त्याग नही किया है । परन्तु उत्तराध्ययनसूत्र की गाथा याद आ गई, इसलिए नियम ले लिया है ।

देखो—एक सन्त थोडा-सा रस की ओर झुका, तो उसे रास्ते पर लाने के लिए श्रावक ने कौन-सा रास्ता लिया ! आप लोग भी तो श्रावक है, सो आपके भी क्या ऐसे भाव रहते हैं मुनियो की ओर ! हा, निन्दा करने मे अवश्य रहते हैं । परन्तु गुण-ग्रहण करने मे और सहारा देने मे नही रहते हैं । इसका एक ही कारण है कि राग-द्वेष के पलीते मे फसे हुए हैं । उसी मे बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो रही है । कहा है कि—

> कहियक मलशेरे, श्रावक एहवा, धर्मि दृढव्रत रागी जी ।
> पर गुण लेवारे निसदिन ताकडा, पाले शील सौभागीरे ॥१॥
> सेवा सारे रे चारो सधनी—डिगतो ने थिर राखेरे ।
> अल्पारभीरे बंभी वे नही—भाषा निर्वद्य भाखेरे ॥२॥

जयमलजी महाराज के पाटवी रायचन्दजी ने ढाल बनाई और कह रहे है कि हे भगवन्, ऐसे श्रावक कब मिलेगे, जो धर्म के सुदृढ रागी, धर्म के पूरे प्रेमी और उसके मच्चे भक्त एव अनुयायी हो । जो धर्म की अवहेलना करते हुए किसी को देखता है, उसे तुरन्त दूर कर दे । विवेकवान, आगा-

पीछा सोचने वाले और अपनी निन्दा-गर्हा करने वाले ऐसे सच्चे श्रावक कब मिलेंगे ?

आप लोगो को मालूम है, स० १६६० की साल का जिक्र है कि जोधपुर मे एक बकरे को हिन्दुओ ने पकड लिया। पहिले उसे छोटी धर्मशाला मे रखा, फिर उसे सिंहपोल मे डाल दिया। अब मिया भाइयो का जोर बढा। परन्तु मूथा चन्दनमलजी श्रावक कैसे थे ? यह आप लोगो को ज्ञात है। उन्होने सोचा—अरे जुल्म हो जायेगा ? और ताला तोडते कितनी देर लगती है। फिर यहा पर सतिया विराज रही हैं। यदि हम यहा पर बकरे को रखेंगे, तो भारी जुल्म हो जायेगा। उन्होने बारी मे से सावधानीपूर्वक बकरे को निकाला और उसे सिटी पुलिस स्टेशन ले गये। पुलिस वालो से कहा कि इसे ऐसी मोटी जगह भेजो, जहाँ पर कोई झगडा फिसाद की नौबत न आवे। वैसी जगह भिजवा देने से वह बकरा फला-फूला रह गया और अत्याचारियो को दण्ड भी मिला। यदि वे उस समय विवेक न रखते और यही सिंहपोल मे रहने देते, तो क्या हाल होता ? आज आप लोग टीका-टिप्पणी करते है कि समाज मे कुछ नही है, धूल उड रही है। तो तू भी पीछे नही रहा है। भाई, ऐसा मत कहो। अरे, समाज तो ज्योतिमन्त है और कुल भी ज्योतिमन्त है। इनकी धूल मत उडाओ और इनका आभार मानो। कहा है कि—

> बकवाद हरामपनो तज के निज नाम घड़ी भर लेवो करो।
> अपना घर जैसो परायो चहो परमारथ मारग देवो करो।
> "विमलेश" सला मत मानव की परपूठ बुरी मत केवो करो।
> अपनो निज सज्जन हैं उनको—नित शीख नसीच को देवो करो ॥

भाई, यद्वा-तद्वा बकने मे कुछ नही है, किन्तु कुछ करके दिखाने मे मजा है। एक आदमी ने मनवार की और घर पर ले गया, पर उसने नही जिमाया। इधर पडौसी ने कहा कि जीमो साहब ! और उसने जिमाया। तो बताओ मनवार खोटी हो गई, या बडी ? भाई साहब, यह क्या है ? ऐसे तो धर्म के रागी बहुत मिल जावेंगे। पर धर्म के द्वेषी मत बनो। कभी कोई भाई आकर कहते हैं कि तेरी मुहपत्ती मे धूल पडे। अरे भोले, ऐसा वैसा क्यो बोलता है ? धर्म का यह एक उपकरण है और तू उसमे धूल डालता है ? परन्तु जो धर्म के प्रेमी नही हैं, द्वेषी हैं, तो उनमे बोलने का

विवेक नही है। वह तो धर्म का सपना भी नही जानता है। उसको धर्म और मुहपत्ती का क्या भान है ? वह बक-बक कर रहा है, तो उसके सिर पर धूल डालो, तो कोई बात नहीं है। परन्तु धर्म पर क्यो धूल डालते हो ? बोलो—लोग ऐसे शब्द निकालते हैं, या नही ? दूसरे लोग क्या निकालेगे, घर के ही लोग निकालते है। वे धर्म का अपमान कर रहे है और धर्म की आशातना कर रहे है। जो धर्म के दृढरागी है, क्षमा करने मे, इन्द्रियो को दमन करने मे, और मन को शुद्ध रखने मे बडा जोर लगाते है, जिन्होने निन्दा का त्याग कर दिया और विकथा का त्याग कर दिया है, ऐसे जो श्रावक है, वे जिन मार्ग के स्तम्भ के समान है। उन्हे ही सच्ची श्रावक की सज्ञा दी गई है और उनके विषय मे कहा गया है कि 'अम्मा पिया समाणे।' ऐसे श्रावक ही माता, पिता और भाई के समान हैं। धर्म की रक्षा का असवर आने पर जो कहते हैं कि गुरुदेव, आप यह काम करावें, हम आपके साथ मे है। आप पीछे पैर मत रखो। मेरा तन, मन, धन सब कुछ आपके लिए अर्पित है। उनको धर्म का प्रेम है।

धर्म का अनुराग

सन् १९२३ की बम्बई की बात है कि एक कसाईखाने मे से एक गाय निकल भागी और वह त्रिभुवन भाई के घर मे घुस आई। कसाई उसके पीछे-पीछे ही भागा आया और बोला कि मेरी गाय तुम्हारे घर के भीतर आ गई है, उसे मैं ले जाऊ ? त्रिभुवन भाई बोले—माफ करो भाई, जब वह मेरे आश्रय मे आई है, तब मैं उसे छोड दूँ, वह नही हो सकता। इसकी जितनी कीमत लेनी हो, वह ले लो। कसाई बोला- -नही, हम तो गाय लेंगे। तब उन्होने मुनीम को इशारा किया कि फोन कर दो। फोन के करते ही पुलिस आगई और घेरा लगा दिया। अब वे लोग आगे बढे और दावा किया। मजिस्ट्रेट ने सोचा कि त्रिभुवन भाई बडे आदमी हैं। यदि मामले को यही शान्त नही किया गया, तो हुल्लड मच जायगा। अत उन्होने कहा—कि यह गाय त्रिभुवनभाई की नही और कसाइयो की भी नही। परन्तु सरकार की गाय है। अत वे उसे मैदान मे ले गये और नीलाम किया, तथा कहा कि जो बोली बढेगा, वही पाएगा। इधर त्रिभुवन भाई भी खडे थे। जैसे ही यह समाचार दूसरे लोगो ने सुना, तो वे भी आगये। अब बोली बढनी गई। वे कसाई लोग सब मिलकर बोली बोलते थे और त्रिभुवन भाई अकेले बोली बोलते थे। अब बोली बढती ही गई। दो, चार, छह, दस हजार हो गये। बढते-बढते एक लाख भी हो गये। और दो लाख

की भी बोली बोलदी गई। अब लोगो ने उनसे पूछा कि यदि बोली और भी ऊपर चली गई, तब क्या होगा ? त्रिभुवनभाई ने कहा— व्यापारियो, मेरे पास चालीस लाख की पूंजी है, वह सारी न्योछावर कर दूंगा और एक करोड तक भी नही छोडूंगा। मैं अपने भाइयो से भीख मांगूंगा, परन्तु गाय को नही छोडूंगा। भाई, जैन बच्चो को कोई नही पहुंच सकता है। आखिर वह गाय तीन लाख सोलह हजार मे छूटी और त्रिभुवनभाई ने बोली बोलकर गाय की रक्षा की। वे धर्म के सच्चे अनुरागी थे। उन्होने सोचा कि पूंजी तो कमाने के अवसर अनेक बार आगे आवेंगे। मगर गाय की रक्षा का ऐसा मौका बार-बार नही आने वाला है।

आज कोई कहे कि समाज कैसी निकम्मी है, तो निकम्मी कैसे है ? कहता है कि समय गया गुजरा है, मैं अकेला हू, अकेला ही बोलता या मरता हूं। भाई, काम तो तू करता है और लोगो की राय भी नही लेता, तो काम कैसे बने ! यदि तेरे दिमाग मे औरो का खयाल होगा, तो उनके दिमाग मे तेरा भी खयाल होगा। और जो तू कहता है कि धूल उड गई, तो भाई, तू भी तो समाज मे है। इसलिए समाज को दोष नहीं देना चाहिए। यह तो प्रत्येक व्यक्ति के जिम्मे का काम है।

इस प्रकार सर्व कथन का साराश यह है कि ये राग और द्वेष कर्मबन्ध के कारण है। परन्तु ये ही कभी किसी विवक्षा से कर्मो के बध को तोडने के लिए भी कारण हो जाते है। किसी कवि ने कहा है—

> 'क्रोध भलो कर्म छेदवा मान भलो पच्चखाण।
> सुद्धकरण माया भली—ज्ञाने लोभ बखाण ॥१॥

कवि कहता है कि क्रोध, मान, माया और लोभ खोटे हैं। परन्तु मैं तो अच्छा मानता हूँ कि जितना क्रोध करना हो, इन कर्मो के ऊपर करो। ये कर्म तुझे लूट रहे हैं, ये महापापी है, दुरात्मा है इसलिए जितनी जल्दी इनका नाश करूं, उतना ही अच्छा है। कर्मो के ऊपर ऐसा क्रोध करना भी अच्छा है। और पच्चक्खाण करते है मान का, यदि उन्होने दो किये है, तो मै तीन करूंगा। परन्तु आज तो आप लोग ऐसा पच्चक्खाण करते हैं कि इनके एक हवेली है, तो मैं दो बनाऊगा। मैं पाच हजार का माल दूंगा और बींदी दस हजार की दूंगा। तो जैसे यह घोडे दौडाता है वैसे यहा दौडावें, तो सब प्रकार के विचार और कार्य सुन्दर बन जायें। परन्तु धर्म के रागी बने बिना पल्ला छूटना कठिन है। पर आप राग रखते कैसे है ?

देख लिया कि आसामी अच्छा है, तो दस हजार खर्च करके वीस हजार खीच लेता है। होस्यारी की भारत मे एक ही गुटकी है और वह तुम्हारी ही मा के हाथ आई है। भाई, विना मतलब तो महाजन पूरा नही देखता है।

मैं डीडवाणे गया, वहा चारणो की वस्ती है। सब चारण हैं, परन्तु हैं सरल। बोले – महाराज, पधारो। फिर वे कहने लगे कि महाजन भी बडे होशियार हैं। गुरु भी ढूढते-ढूढते ऐसा ढू ढा कि दमडी-छदाम भी नही लगता है। और, हमारे गुरु आते है, तो ढोलिए लाओ, प्रसाद लाओ, कथा बचाते है फिर कठी बधाते हैं। और भेट पूजा लेते है, परन्तु जैनियो के गुरु तो ऐसे हैंकि 'पैसा लगे न टक्का, ढू ढिया धर्म पक्का'।

न्यात जीम रही है और गुरुजी आगये, तो भूखे ही मरो। न्यात का दिया खाते नही,मटकी का ठण्डा पानी भी पीते नही। परन्तु जो रूखा सूखा गाव मे मिला, वह ले जाते हैं। तो ऐसे गुरु महाजनो ने बनाये है। घर घर की होड नही कर सकता है। एक आदमी माल लेने को गया और उसने तराजू उठाई तो ग्राहक ने देखा कि है तो झुकता पलडा, तो वह तुरन्त ले लेता है। भाई जो जितना ही झुके, उतना ही अच्छा है। कहा है—

जानी थारी जात—धर्म राज ठिगीयो जिणे।
मनुष्य कितियक बात, डाचो भरियो लाखिया॥

ये धर्मराज से भी नही चूके कि दस के सौ कर दिये, तो दूसरो से कैसे चूक सकते हैं ?

भाइयो, राग और द्वेष बुरा है, मगर मनुष्य मे धर्म का राग होना चाहिए और पापसे द्वेष होना चाहिए। किसी व्यक्ति विशेष से स्वार्थ के वश राग और द्वेष नही होना चाहिए। जैनो के किसी भी शास्त्र के प्रारम्भ मे, या कार्य के प्रारम्भ मे 'नम श्री वीतरागाय' ही बोला या लिखा जायगा, उसका अभिप्राय ही यह है कि राग-द्वेष से रहित पुरुष ही ससार मे सर्वश्रेष्ठ होता है, वह स्वय पवित्र है और दूसरो को पवित्र करता है, वह स्वय ससार से पार उतरता है और दूसरो को भी पार उतारता है। ऐसे राग द्वेष से रहित वीतरागी पुरुषो को हमारा नमस्कार है।

●

१

आत्मा की खोज

मैं कौन हू ?

श्री वीर परमात्मा ने जैनागमो मे जो भाव प्रदर्शित किये हैं, उनमे एक ऐसी सरल वात सवके लिए कही है जिसे कि प्रत्येक छोटे से छोटा और अदना से भी अदना आदमी स्वीकार कर सके। वह वात देखने मे तो छोटी है, पर परमार्थ से वहुत मोटी है। वह वात क्या है ? भगवान ने फर्माया कि ऐ प्राणी, तू निरन्तर ऐसा विचार कर कि 'मैं कौन हूं' ? तो कितनी सीधी सादी वात वताई। 'अम्मे कुण भवई'। 'मै कौन हू, अव यह विचार ने मे किस को क्या परिश्रम करना पडता है ? क्या कोई जोर पडता है ? शक्ति या ताकत लगानी पडती है ? नही कुछ भी परिश्रम नही करना पडता है और न शक्ति ही लगानी पडती है। भगवान ने कहा कि यदि और कुछ भी तेरे से न वन पडे, तो वैठा-वैठा यह विचार कर कि ? के अहु मैं कौन हू ? गहराई से देखा जाय तो इस छोटे से वाक्य का अर्थ वहुत गहरा है। मैं कौन हू, इसका उत्तर भगवान ने वताया कि मैं आत्मा हू, चेतन स्वरूप हूं, परम ब्रह्ममय हूं, आनन्दघन हूं, अर्थात् सच्चिदानन्द हू। मेरे समान ससार मे कोई अन्य वस्तु नही है। इसमे आत्मा का समस्तस्वरूप आ गया।

भाई, आत्मस्वरूप का चिन्तन करना कोई साधारण व्यक्ति का काम नही है। यह काम वहुत ही मेधावी, कुशल और बुद्धिशाली मनुष्य का है। और बुद्धि भी कैसी, कि ऊची से ऊची—तत्वो मे से तत्व निकाले जैसी। लोग कहावत मे कहते हैं कि इसकी बुद्धि का क्या ठिकाना है ? यह तो वाल

की खाल निकालने वाला है। यदि इसके सामने सूक्ष्म बात आ जाय, तो यह उस पर भी विचार करता है कि इसमे तथ्य क्या है ? क्योकि बिना तथ्य के कोई भी वस्तु नही है।

बुद्धि गहराई तक पहुँचती है

चुटकी भर धूल हाथ मे ली और कोई कहे कि इसमे क्या है ? काठ का एक सूखा टुकडा लिया और कहे कि इसमे क्या है ? कपडे की एक चिन्धी ली और कहे कि इसमे क्या है ? भाई, जो तत्त्ववेत्ता है, पदार्थ विज्ञान के जानकार हैं और मानस-शास्त्र के ज्ञाता हैं,वे उसमें से भी अभीप्ट सार वस्तु निकाल लेते हैं। आप कहते हैं कि मक्खन का घी करने मे क्या लगता है ? मक्खन मे घी है, यह सारी दुनिया जानती है। यदि मक्खन मे घी है, तो दही मे नही है क्या ? और यदि दही मे है तो क्या दूध मे नही है ? भाई, मक्खन मे घी का आविर्भाव है और दही मे उसका तिरोभाव है। यदि दही मे आविर्भाव है, तो दूध मे तिरोभाव है। गाय और भैस के स्तनो मे भी दूध है, परन्तु उसका तिरोभाव है। घास-पात मे भी घी है, परन्तु इस समय उसका तिरोभाव है। स्तनो मे दूध का आविभाव है तो घास-पात मे तिरोभाव है तत्ववेत्ताओ के लिए। आप पहिले नही मानते थे कि वनस्पति मे घी है, तृण-घास मे घी है। परन्तु आज आप की समझमे यह आ गया है कि वनस्पति मे घी है। जब वनस्पति मे घी है, तभी तो वह बनकर सामने आ रहा है। आज आपके सामने नकली दूध, दही, मक्खन और घी है। नकली तेल आपके पास है और उसके लिए दुनिया कह रही है कि जैसे असली घी-तेल को काम मे लेते है, वैसे ही हम नकली घी-तेल को भी काम मे ले रहे हैं। आज दही-विलोवने का घी खाने वाले आप को कितने मिलेंगे ? और डालडा खाने वाले कितने मिलेंगे ? जितने सरकारी कर्मचारी और अफसर हैं, वे तो इसे ही अधिकाश मे काम मे लेते हैं वे सोचते हैं कि असली घी के दाम तो बहुत अधिक है, इतने पर भी शुद्ध घी मिलता नही है, तो फिर यही काम मे क्यो न लेवें ? मरता तो इससे भी नही हैं, परन्तु हाथ तो चिकने होते हैं। भाई, जब इन वनस्पति आदि मे शक्ति है, तो वह सामने आ रही है। यदि उनमे शक्ति नही होती, तो वह कैसे सामने आती। परन्तु वैज्ञानिको ने निरन्त अनुसन्धान किया और एक वस्तु का अन्य वस्तु से मिश्रण किया, तब एक नई वस्तु प्रकट होकर हमारे सामने आई। आपके सामने हल्दी का रग पीला और साजीका रग काला है। दोनो को शामिल घिसने पर लाल रग प्रगट हो जाता है। यह लाल

रग कहा से आ गया ? रग तो पाच ही हैं,—काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। परन्तु आज आपके सामने कितने रग हैं ? इन पाचो ही रगो के मेल से हजारो प्रकार के रग बन गये। ये रग बने कैसे ? एक वस्तु का जब दूसरी वस्तु के साथ मिश्रण होता है तब एक नये प्रकार की तीसरी ही वस्तु उत्पन्न हो जाती है। आज भी रगरेज हैं और पहिले भी थे। पहिले क्या उनके पास दिमाग नही था, और आज उन्ही ने कितने ही नये रग बना लिये। भाई यह सब आज के भौतिक विज्ञान का प्रभाव है, जो प्रतिदिन नये रग और नये ढग देखने मे आ रहे है। खरे रग मे जितनी मोहकता नही,जितनी कच्चे रग से है। इसी प्रकार वैज्ञानिको ने सभी तत्त्वो की छान-बीन की, जिससे आज हमे नये-नये चमत्कारपूर्ण आविष्कार दिखाई दे रहे हैं। यह सब बुद्धि की ही देन है। इसकी बदौलत ही हम आये दिन नये-नये करिश्मे देख रहे हैं।

इसी प्रकार बुद्धि ने अपने लिए भी छान-बीन शुरू की और विचारा कि मैं कौन हूँ ? जब वह इस विचारणा पर आरूढ हो गई, तब उसके सामने भी पुन्य-पाप, स्वर्ग-नरक, इहलोक और परलोक के नये-नये तत्त्व सामने आने लगे और इसी विचार-बल से उसने जाना कि मैं इन जड अचेतन दृश्य जगत् से सर्वथा भिन्न चेतन, अदृश्य, अमूर्त, सच्चिदानन्द घन रूप हू। जब कोई विचारक अपने भीतरी रहस्यों का जानने के लिए एकाग्र होकर चिन्तन करता है, तब उसके सामने अनेक नए-नए और अनेक नई-नई समस्याएँ खडी होती हैं। परन्तु जैसे जैसे विचारक उनका समाधान करता हुआ आगे बढता है, वैसे वैसे ही अनेक आत्मिकशक्तियो का उसे पता चलता जाता है। जब कोई साधक साधना मे पथ पर आगे बढेगा तब ही नई-नई बाते उसे ज्ञात हो सकेगी।

इतिहास को ही देख लीजिए कि कुछ वर्षों तक पहिले अमेरिका का लोगो को पता तक नही था। उसकी खोज के बाद मानव आगे आगे खोज करता गया और आज उसने अनेक नए देशो का पता लगा लिया है। और आगे लगाते जा रहे हैं। अपने जैनसिद्धान्त मे कहा है कि ढाई द्वीप १४ क्षेत्र हैं, तो अपन लोगो ने तो पढ लिया-सुन लिया, परन्तु ढूढ निकालने का प्रयास नही किया। परन्तु विदेशी अन्वेषको ने शास्त्रो की बातो को कल्पना मात्र ही नही समझा, अपितु वे विभिन्न देशो को खोजने के लिए निकल पडे। कितनी ही आपत्तिया और सकट उन पर आए और कितने ही तो खोज करते-करते मर गए। परन्तु अन्वेषको का मिशन ऐसा मजबूत है कि

वे एक के पीछे दूसरा और उसके पीछे तीसरा व्यक्ति आगे बढता ही गया और आखिर अपने उद्देश्य मे सफल हो ही गए और ससार को दिखा दिया कि हमने अमुक नवीन खोज की है। बडी से बडी खोज करने के बाद अपने को कृतकृत्य मान कर बैठ नही गए, किन्तु नई-नई शोधो और खोजो मे आज भी वे लोग सलग्न है। जो नवीनता के अन्वेषक होते हैं, वे कुछ न कुछ अन्वेषण करके दिखा ही देते है।

आत्मबोध

पुन मैं आज के प्रकरण पर आता हू कि 'मैं कौन हूँ' इस छोटे से वाक्य मे इतना सार भरा हुआ है कि सारे जैन सिद्धान्त का सार इसमे आ जाता है। जगत के सभी चेतन-अचेतन तत्त्वो का रहस्य इसके अन्तर्गत है। कौन तत्त्व चेतन है और कौन तत्त्व जड या अचेतन है ? जड और चेतन का मिश्रण क्यो हो रहा है और इनको पृथक् पृथक् कैसे किया जा सकता है, इत्यादि गूढ तत्त्वो का रहस्य भी इस एक वाक्य मे छिपा हुआ है। आज यदि कोई अनेक धातुओ को गलाकर एक गोला बना लेवे, तो दुनिया को तो वे धातुए अलग अलग नही दिखती है कि इस एक गोले मे इतनी धातुए हैं। परन्तु जब वही गोला कारीगर लुहार या सुनार के पास आयगा और उसे अग्नि का पुट लगेगा, सुहागा आदि डाला जायगा, तो सारी धातुए भिन्न-भिन्न हो जायेंगी और दुनिया नजर आने लगेगी। इसी प्रकार की विचार-धारा से मस्तिष्क को जोर देकर हम यदि अपनी शोध एव छानबीन करें, तो पता लग जायगा कि हमारे भीतर भी कितने विजातीय द्रव्य सम्मिलित हो रहे हैं। किसी कवि ने कहा है—

> "हूं कौन छूं क्या थी थयो छू, शूं स्वरूप छे म्हारूं खरू।
> कौन। सम्बंधे वर्गणा छे, राखूं के एह परिहरूं।"

मैं कौन हू ? किससे बना हूँ और किन साधनो से बना हूँ। मेरा स्वरूप क्या है और मैं किस रूप मे विचरण कर रहा हू। अभी मेरा सम्बन्ध किस-किस वस्तु से हो रहा है और इन वस्तुओ को मैं अब और मजबूत पकड कर बैठ जाऊ, या छोड दू ? इस प्रकार जब हम इस बात का विचार करेंगे, तो अपना स्वरूप अपने सामने आ जायगा। आपके विचार यदि उनसे नही बैठे तो खोज के लिए कोई न कोई कारण मिल जायगा। यदि आपकी आख मे कोई तिल है या लसनिया है, तो वह स्वय को दिखता नही है। परन्तु दूसरे को तो दिखता है और वे बतलाते भी हैं। परन्तु हमे अपनी आत्मा पर, विश्वास नही है। अब यदि उस विश्वास को दृढ करना है, तो सामने कांच

(दर्पण) ले लो तो पता चल जायगा कि हाँ, इनका कहना सत्य है और इसमे झूठ की जरा भी गुजाइश नही है। जो बात जग-जाहिर है, सबको दिखाई देती है, पर हम जब तक अपने रूप को दर्पण मे देखेंगे नही, तब तक हमे निश्चय कैसे हो सकता है और चित्त मे शान्ति कैसे आ सकती है ? यथार्थ बात पर पहुँचने के लिए हमे अपनी आँख दर्पण मे देखनी होगी, तभी हम सचाई पर पहुँच सकेंगे।

किसी नगर मे एक व्यापारी था। उसका लडका बडा चतुर और होशियार था। बडा चलता-पुर्जा, अक्लमन्द और सूझ-बूझ का धनी था। परन्तु भाग्य की बात निराली है। वह जितना होशियार था, उतना ही वह दरिद्री भी था। समय-असमय उसे कभी-कभी भोजन से भी वंचित रह जाना पडता था। उसे स्त्री बडी सौभाग्यशालिनी मिली थी, इससे उसको कुछ मानसिक शान्ति मिल रही थी। व्यापार करते-करते एक बार बडी भयानक स्थिति आ गई। ऐसी ही भयानक स्थिति मे उसकी स्त्री के गर्भ रह गया। अब और भी बुरे दिन निकट आ गये। वह पढा लिखा होशियार था। उसने विचार किया कि अब यह नैया कैसे पार लगेगी—जब कि खाने के लाले पड रहे हैं और फिर ऊपर से सिर पर यह आपत्ति आ गई है। अब कुछ करू, तो भी बुरा। ऐसा विचार कर वह स्त्री से बिना कहे ही विदेश को चल दिया। जाते समय सोचा कि अब स्त्री का भाग्य उसके साथ है और मेरा भाग्य मेरे साथ है। मैं इसके भाग्य को नही सभाल सकता और यह मेरे भाग्य को नही सभाल सकती। जब सन्ध्या तक पति घर नही आया, तब स्त्री को बडी चिन्ता हुई। उसने इधर-उधर ढूँढा, खोजबीन की और इसी मे दो तीन दिन निकल गये, परन्तु पति का कही पता नही चला। जब वह वहा था ही नही, तो कैसे पता चलता। आखिर निराश होकर बेचारी रह गई और बडी मुसीबत मे फस गई। वह भगवान से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवान् ! ये दुष्कर्म मैंने ही किये हैं और मेरे किये हुए ये कर्म अब मुझे ही भोगने पडेंगे। किसी ने कहा भी है—

न दोषं दीयते स्वामिन् न दोषो दीयते परे।
न दोषो दीयते आत्मन् कर्म दोषोहि दीयते ॥

न तो आत्मा को दोष दो, न दुश्मन को दोष दो और भगवान को भी दोष मत दो। यह सारा खेल तो अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का ही है। आचार्य अमितगति कहते हैं कि—

'निजार्जित कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानस परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥

अर्थात् अपने पूर्वोपार्जित कर्म को छोडकर किसी भी प्राणी को कोई भी जीव कभी कुछ भी सुख-दुख नही देता है । दूसरा सुख या दु ख को देता है, यह धारणा ही झूठी है, ऐसा विचार कर मनुष्य को अपना चित्त शान्त करना चाहिए ।

ऐसा विचार कर वह स्त्री भी किसी पर कोई दोषारोपण न करके अपने ही कर्मों को कोसने लगी और विचारने लगी कि यह सारा खेल मेरे ही पूर्वोपार्जित कर्मों का है, अत इन्हें ही दोप देना चाहिए । मेरे भाग्य मे जव ऐसा ही लिखा है, तब मुझे साहसपूर्वक ही इस विपत्ति का सामना करना चाहिए । यदि मैं रो-रो करके मर जाऊ, या आत्मघात कर लूँ, तो उससे क्या लाभ है । अरे, अजना तो जगल मे थी और वही पर उसने अपने गर्भ-काल के दिन निकाले । सती सीता और द्रौपदी पर कैसी-कैसी आपत्तिया नही आई । उनकी आपत्तियो के सामने मेरी आपत्तिया तो नगण्य सी हैं । ऐसा विचार कर उसने साहसपूर्वक सकट के दिन निकालने शुरु कर दिये और अपने शील धर्म पर अडिग बनी रही । धीरे-धीरे वह स्त्री अपनी विपदा से पार हो गई । यथासमय प्रसूति हुई और पुत्र का जन्म हुआ । अब वह वुद्धि बल और साहस के साथ अपनी रोजी भी कमाती है और बच्चे का पालन-पोपण भी करती है, तो कोई न कोई सहायक भी मिल ही जाता है । हिम्मत हारने पर कुछ नही होता है । कहा है कि—

हिम्मत जो होयतो हरेक करी सके नर,
हिम्मत सू नहार म्होटा हाथी ने विडारे छै ।
हिम्मत सु नारि पिण हाथ तरवार गही,
महावन माय म्होटा मर्द ने मारे छै—
हिम्मत सु मंत्रवादी सारो के देखत अहा ।
मोटा फणीधर भणी गला मांय धारे छै ॥
हिमत सु मुनिराज ज्ञान क्रिया सुध राखी ।
भव ससार सेती तिरे अरु तारे छै ॥

दलपत कवि कहते हैं कि यदि मनुष्य मे हिम्मत होती है, तो वह छोटे-बडे, सरल और कठिन सभी प्रकार के कामो को कर सकता है । सिंह है तो छोटासा, और हाथी पहाड सा बडा है । सिंह के साथ सामना होने पर हाथी तो अपनी हिम्मत भूल जाता है, परन्तु सिंह उसे नही भूलता । बल्कि हाथी

के साथ मुकावला के समय अपनी और भी हिम्मत को प्रगट करता है छलाग मारकर, हाथी के मर्मस्थान कुम्भस्थल को पजे से चीरकर उसे खत्म कर देता है ।

लोग कहते है कि स्त्रिया अबला हैं, चूडिया पहिनने वाली हैं, फिर ये क्या कर सकती है। परन्तु जब हाथ मे तलवार लेकर हाडीरानी निकली तो क्या हुआ ?

हाडी रानी के तन उपरे—लगा तीन सौ बान,
औरंग रे आडी रही—घणो कियो घमसान ॥

उसके शरीर पर तीन सौ तीर लगे, परन्तु उसने हिम्मत नही हारी और दुश्मन को धरती पर सुला दिया। और जो लालशाही किला टूटा नही था, वह उसने तोड़ दिया। झासी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अग्रेज सरकार के छक्के छुडा दिये थे। आज भी बुन्देलखण्ड मे उसके गौरव की यशोगाथा गाते हुए लोग कहते हैं—

खूब लड़ी वह तो मर्दानी झांसी वाली रानी थी,
बुन्देले हर-बोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।

भाई, जिनको हम अबला कहते हैं, समय आने पर वे सबला बन जाती हैं और बडे-बडे मर्दों को ठोकर मारकर पानी पिला देती है। काले साप उनको देखकर ही भागते है, तो कौए तो क्यो नही डरेंगे ? परन्तु गारुडी मत्रवादी उसको अपने गले मे डाल लेते हैं। दुनिया उन्हें देखकर कहती है कि साप मत्र से कीला हुआ है। परन्तु यदि उसी को आपके गले मे डालने लगे तो आप दूर भाग खडे होगे। यदि मनुष्य विचार लेवे और दृढ सकल्प कर लेवे कि यह काम मुझे करना है, तो फिर उसके लिए कोई भी काम कठिन नही है। हिमालय की चोटी पर चढना कोई मामूली बात नही है। किन्तु ये पर्वतारोही और पर्यटक लोग चढे, या नही ? जबकि सर्दी मे और बर्फ में आदमी धूजने लगता है, तब वे पर्वत और उनकी चट्टानें तो बर्फ के ही हैं। वहाँ चढना और वहाँ की स्थिति को देखना, यह सब काम भारी हिम्मत के बिना नही हो सकता।

सन् १९६५ मे जब भारत और पाकिस्तान का युद्ध हुआ, तब हमारे भारत के नौजवानो ने हिम्मत के साथ अमेरिका के चारसौ टैंक तोड दिए जो अभेद्य समझे जाते थे। तोडने वाले भी हम और आप जैसे ही मनुष्य थे, परन्तु उनमे अपार हिम्मत और अदम्य साहस था। उन्होने सोचा कि हमारे

देश की शान न जाने पावे। वे हर समय यही एक मात्र लक्ष्य सामने रखे रहते थे कि—

'सर जावे तो जावे, पर देश की शान न जावे।

उन्होने युद्ध के मोर्चे पर डटे रहते हुए यही सोचा कि भले ही हम मर मिटेंगे, पर काम पूरा करेंगे और शत्रु को अपनी भूमि पर नही फटकने देंगे। यह सब उनकी हिम्मत का ही सुफल था।

हाँ, तो उस स्त्री ने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह हिम्मत से किया। बच्चे का पालन-पोषण भी करती रही और अपने पेट का गुजारा भी करती रही। पति के समय घर की जो इज्जत थी, उसे उसने घटाया नही, बल्कि उसे बढा दिया। धीरे-धीरे उसका लडका भी पढ-लिखकर होसियार हो गया। उसकी माँ ने उसे उत्तम शिक्षाए देकर सर्व प्रकार से योग्य बना दिया। इधर तो इस प्रकार वह स्त्री अपना समय व्यतीत करने लगी। उधर उसका पति जो व्यापार के लिए परदेश गया था, अनेक देशो मे घूमा, अनेक धन्धे भी किये, परन्तु भाग्य ने साथ नही दिया। अनेक ठोकरें खाने के पश्चात् उसके भी भाग्य ने पलटा खाया और वह एक शहर मे पहुचा। उसने वहा एक बडे सेठ की दुकान देखी, जहाँ पर अनेक मुनीम और गुमास्ते काम कर रहे थे, आडतिये भी बैठे थे। सेठ गादी पर बैठा सबके काम पर निगाह डाल रहा था। इसने दुकान पर जाकर सेठ को नमस्कार किया। इसका सारा शरीर धूलि-धूसरित हो रहा था, कपडे फटे हुए थे और मानसिक स्थिति बडी दयनीय हो रही थी। सेठ ने इसे देखकर विचार किया कि लडका तो खानदानी और अच्छे घराने का है, परन्तु परिस्थिति-वश इसकी ऐसी दशा हो गई प्रतीत होती है। सेठ बडा बुद्धिमान् और दयालु स्वभाव का था, उसने गादी से उठकर उसका हाथ पकडा और गादी पर अपने पास बैठाने लगा। वह बोला—सेठ साहब, मैं आपकी बराबरी मे बैठने के योग्य नही हू। यदि गादी पर बैठने योग्य होता, तो बैठता। इस समय तो मैं विपत्ति का मारा एक दीन मनुष्य हूं, यह कह कर वह गादी के नीचे बैठ गया। कुछ देर तक बात चीत करने के पश्चात् सेठ ने उठकर कहा कि मेरे साथ घर पर चलो। उसे घर ले जाकर स्नान करवाया, नये कपडे पहिराए और साथ बैठ कर अच्छी तरह से भोजन कराया। फिर पूछा कि भाई, तुम कैसे आए ? वह बोला—सेठ साहब, मैं नौकरी के लिए आया हू, तो जब साथ मे फूटी कौडी भी नही है, तो कौन विश्वास करता और कहना भी व्यर्थ जाता। उसने कहा कि आप बडे आदमी है, और यदि आपको आदमी

की आवश्यकता हो तो मुझे रखने की कृपा करें। सेठ ने कहा—भाई, मैं तुझे रखने को तैयार हू और मेरे पास सब खटते हैं। परन्तु एक बात बता कि तेरी साहूकारी की शिनाख्त देने वाला भी कोई है या नही ? वह बोला—यहा पर तो क्या, परन्तु मेरे गाव मे भी शिनाख्त देने वाला कोई नही है। क्योकि कहा है कि—

"बनी बनी के सब साथी-बिगडी के नहीं कोई।
फिरि अजना पीहर घर-घर-घटना पढलो जोई॥

सब लोग अच्छी दशा के साथी होते है, परन्तु बिगडने पर कोई साथ नही देता है। यदि समय पर अपने पास कुछ है तो सब अपने है, और यदि अपने पास कुछ नही है, तो कोई भी अपना नही है। वह बोला—सेठ साहब, मेरी शिनाख्त मैं स्वय देता हू। नीति भी कहती है कि—

"देखे कारोबार और मनुष्य को परख के।"

"सोना जानिए कसे और आदमी जानिए बसे।"

यदि कोई मनुष्य अपने पास कुछ दिन रह जाय, तो पता चल जाता है कि वह कैसा है ? सेठ ने सोचा कि आदमी दिखता तो ठीक है और उन्होने काम पर रख लिया। उसे जो काम सौपा गया, वह तो करता ही है, किन्तु मुनीम के काम मे, रोकडिया के काम मे और नौकर चाकरो तक के काम मे उन्हे सहायता देने लगा। इस प्रकार दुकान का काम निबटा करके घर पर आ जाता और सेठानी के काम मे हाथ बटाने लगा। इस प्रकार वह सब का प्यारा बन गया।

भाइयो, दुनिया मे चाम व्हाला नही, परन्तु काम व्हाला है। कितने ही लोग फटे हाल फिरते हैं और कहते हैं कि हमारी कोई सार सभाल नही करता है। भाई, बताओ—तुमने कितनो की सार-सभाल की। तुम भी मनुष्य हो और दूसरे लोग भी मनुष्य हैं। जब तुमने दूसरो का कुछ किया नही, तब दूसरा तुम्हारा कैसे कुछ कर देगा ? यदि तुम दूसरो की चिन्ता करोगे तो दूसरे तुम्हारी भी करेंगे। इस प्रकार वह सबके काम मे सहायता देने से सब का प्यारा बन गया। और मुनीम, रोकडिया वा नौकर-चाकर सब उससे राजी रहने लगे। उसने छह माह मे ही वह तरक्की की कि वह सब के हृदय का हार बन गया। सेठनी भी उसकी प्रशसा करने लगी। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

एक दिन सेठ साहब भोजन कर रहे थे, तब अवसर देखकर सेठानी

बोली—सेठ साहब, यह धन इकट्ठा ही इकट्ठा करना सीखा है, या पीछे का भी कोई ध्यान है आपको ? इस धन की रखवाली कौन करेगा ? अपने सन्तान तो है नही, जो अपने पीछे सभाल करे। इसलिए या तो इस धन को जाति बिरादरी के लिए देदो, अथवा दान-पुण्य मे लगा दो। यदि ममता नही छूटनी हो, तो किसी रखाने वाले को ही ले आओ। सेठ बोला—सेठानी साहब, विचार तो मेरा भी ऐसा ही है। परन्तु कोई ठीक सुपात्र मिले तो उसे रखा जावे। तुम भी प्रयत्न करो। तुम्हे यदि कोई सुपात्र जच जावे, तो मै भी विचार करूगा। सेठानी बोली– मेरी सुनता भी कौन है ? सेठ बोला–श्रीमती जी, यह क्या बात कह रही हो ? अभी तो मैं जीवित हूं। पति तो स्त्री की सब कुछ सुनता है। सेठानी ने कहा—यदि मेरी राय मानो, तब तो आप भटकते क्यो हैं ? अपने यहा जो यह नये मुनीम जी आये है, उन जैसा तो सुपात्र ढू ढने पर भी नही मिल सकता है। आप तो इनको ही खोले (गोदी) लेलो। सेठ ने पूछा क्या यह तुम्हारे जच गया है ? सेठानी बोली कि मुझे तो यह सवा सोलह आने जच गया है। सेठ जी ने भोजन करने के बाद बडे मुनीम जी को दुकान से घर पर बुलाया और आप अपने खास अन्तरगी चार-पाच मित्रो को भी बुलाया। कुछ खास निकट सम्बन्धियो को भी बुलावा लिया। जब सब लोग आ गये तब उन्होंने कहा कि सेठ साहब, आज आपने हम सबको कैसे बुलाया ? सेठ ने कहा—भाइयो, मैंने आप लोगो को इसलिए कष्ट दिया है कि सेठानी जी प्रतिदिन कहती है कि कोई इस गूदडी का रखवाला लाओ। इसलिए मैं आप लोगो से पूछता हू कि किसे गोद लेना अच्छा रहेगा ? इस विषय मे मैं आप लोगो से परामर्श करना चाहता हूं। सभी उपस्थित लोग बोले – सेठ साहब, आप जैसी बुद्धि हम लोगो मे नही है। आप दूरदर्शी हैं और सदा ही हम सबको उचित सलाह देते है, तथा हमारा मार्ग-दर्शन करते है, तब फिर हम लोग आपको क्या सलाह दे सकते हैं और आपके लिए क्या मार्ग दिखा सकते हैं ? आप ही बतलाइये कि कौन सुपात्र आपको जचा है ? फिर उस पर हम लोग भी जैसा जचेगा, कह सकेगें। सेठ ने कहा—भाइयो, सेठानी कहती हैं कि जो अभी नया मुनीम रखा है, उसे ही गूदडी सभला दो। अब आप लोगो की क्या राय है ? सेठ की बात सुनकर सब एक स्वर से बोले—सेठानी साहब की बात सोलहो आने ठीक है। हमे भी उनकी राय जच गई है। सब के द्वारा सेठानी के सुझाव का समर्थन पाकर सेठ बोला—जब आप लोग सेठानी के मत से सहमत हैं, तब मेरा अलग मत नही रह सकता है। सेठ होशियार आदमी था, वह जोखम अपने ऊपर क्यो लेने लगा ? उसने दूसरो पर ही

जोखम डालना उचित समझा। सेठ ने विलम्ब करना उचित नही समझा और उसी समय नगर के प्रसिद्ध ज्योतिषी को बुलवाया। उसने आते ही पूछा—कहिये सेठ साहब, क्या आज्ञा है ? सेठ बोला मुझे लडका गोदी लेना है, उसका यह नाम है। अब आप उसके गुण, लक्षण आदि बताओ ग्रह आदि कहो—कैसे हैं ? हमारी कुडली से मिलान खाते हैं, या नही ? ज्योतिषी ने लग्न निकाल कर दृष्टि डाली और कहा—सेठ साहब, चूको मत, बडा होनहार हीरा हाथ मे आया है। इसे आप भूलकर के भी हाथ से मत जाने देना। यह आप से भी अधिक आपके कुल को रोशन करेगा और खानदान का नाम बढायगा। सेठ ने कहा—गोद लेने का मुहूर्त्त निकालो। ज्योतिषी जी ने गणना करके कहा—सेठ साहब 'शुभस्य शीघ्रम्।' आज का ही मुहूर्त्त सर्वोत्तम है। कहा भी है—

द्विप्रहरो घटिका हीन-द्विप्रहरो घटिकाधिक।
विजयनाम योगोयं सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति॥

आज विजय योग है, इसी मे गोद लेना सर्वोत्तम रहेगा। आज ही यह काम सम्पन्न कर लीजिए। सेठ ने उसी समय सभी दूसरे रिश्तेदारो और समाज के अन्य व्यक्तियो को बुला लिया और बडी धूम-धाम के साथ उस लडके के शिर पर मोलिया बधवा दिया और जाति मे नारियल बटवा दिये। धीरे-धीरे सेठ ने अपनी सारी सम्पत्ति भी उसके नाम रजिष्ट्री भी करा दी। अब वह मुनीम के स्थान पर कवर साव कहलाने लगे। कवर साव ने काम को ऐसा हाथ मे लिया, ऐसी अच्छी तरह सभाला कि सेठ साव को अवकाश मे कर दिया और वे पूर्ण विश्राम के साथ धर्म साधन मे लग गये। कवर साव ने दुकान का कारोबार खूब बढाया। उनके व्यापार कौशल की चारो ओर धूम मच गई। अब क्या था ? बडे ठिकाने उनकी शादी भी हो गई। नई स्त्री मिल गई बडे घराने की और धन भी भरपूर मिला, सो वे इसी मे मस्त हो गये और अपनी पहिली स्त्री को भूल गये। अब वह उन्हे याद ही नही आती है। यही तो बात है कि—

धन आया तीनों से खार-घर घरणी ने जूलायार।
धनरो नशो जान अनपार-चढ्यो रहै उतरे नहीं तार॥

वैभव बढने पर मनुष्य का दिमाग भी आसमान पर जा पहुँचता है। घर पुराना हो, तो नया बनाता है। पुराने आभूषणो को तुडाकर नये किस्म के बनवाता है और पुराने मित्रो को छोडकर नये मित्र बनाता है। पुराने मित्र भी उसके पास आते हुए कतराने लगे। यह भी अब उन पुराने

मित्रो की याद नही करता है। इस प्रकार यह धन-वैभव के मद मे ऐसा भूला कि अपना देश, अपना गाव, अपने स्वजन-सम्बन्धी और अपने मित्र सबको भूल गया। अपनी स्त्री और घर-बार को भी भूल गया। अरे, यही पर देखो—इस मारवाड के हजारो लोग दिसावर गये और वही बस गये। अब वे देश का नाम तक भी नही लेते हैं और अपने गावो को घरो को सूना कर गये अब वे क्या यहा आवेगे ? वे तो वही परदेश मे ही मग्न है। अब उनका मातृभूमि से क्या नाता रह गया। वे सब नाते गोते वालो को और मित्रो को भूल गये है। कहा है—'अच्छी म्हारी टाटी कि मिले घी ने बाटी।' इसी प्रकार वे कवरसाव नई स्त्री के फन्दे मे आ गये और अपनी स्त्री, घर और गाव सबको भूल गये। लक्ष्मी खूब बढ रही थी, भाग्य साथ दे रहा था, अत कवरसाव ने नगर के बाहिर एक बगीचे मे नया महल बनवाना शुरू किया। बाहिर से सैकडो कारीगर और मजदूर बुलाये गये। अब कवरसाव, एक-एक, दो-दो महीने से जब कभी उसे देखने को जाते है और बना हुआ जो हिस्सा उन्हे पसन्द नही पडता है, उसे गिरवा देते है और नई डिजाइन से बनवाने का हुक्म देकर चले आते है। इस प्रकार उस महल को बनते हुए अनेक वर्ष निकल गये, परन्तु कारीगरो की टाकी चलना बन्द नही हुई। महाराज उम्मेदसिंह जी जब तक मौजूद रहे, तब तक उनके यहा भी कभी टाकी बन्द नही हुई। उन्होने कितने ही कल-कारखाने बढाये। जिनके यह प्रताप योग पड जाता है, उनके सदा ही कुछ-न-कुछ नया निर्माण होता ही रहता है। इसी प्रकार उन कवर साव के महल बनने का भी काम वर्षों तक चलता रहा।

इधर पहिली स्त्री भी अपने पुरुषार्थ के बल पर अपने पैरो खडी हो गई। उसका वह लडका—जो पिता के परदेश जाने के बाद पैदा हुआ था—पढ-लिखकर सर्व प्रकार से योग्य हो गया। जौहरियो के यहा काम करते हुए वह जवाहिरातो का अच्छा पारखी बन गया। अब वह भी कमाई करने लगा। घर की आर्थिक स्थिति भी बहुत कुछ सुधर गई। एक दिन की बात है कि राज-दरबार मे विदेशी सौदागर आये और उन्होने महाराज को अनेक प्रकार के जवाहिरात दिखाये। राजा ने परीक्षा के लिए नगर के जौहरियो को बुलवाया। उनके आने पर राजा ने उन लोगो से कहा—ये व्यापारी जवाहिरात लेकर आये हैं, इनके माल को देखो और परखो। हमे माल लेना है। उन जौहिरियो के साथ वह लडका भी आया था। जौहरियो के सामने सब जवाहिरात डाल दिये गये। वे लोग देख-देख

करके कहने लगे कि यह नगीना अच्छा है, वह भी अच्छा है। इसकी इतनी कीमत है और इसकी इतनी कीमत है। देखते-परखते उनके सामने एक बडा हीरा आया। जौहरियो ने जाच करके कहा—महाराज, यह सर्वोपरि नगीना है और यह आपके मुकुट मे जडवाने योग्य है। इस प्रकार व्यापारियो से उसका मोल कराके राजा उसे लेने को तैयार हो गया। लेने के लिए सभी जौहरियो ने मजूरी दे दी। परन्तु उस लडके ने नये जौहरी ने सिर हिला करके अपनी असहमति प्रकट की। महाराज ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि तूने सिर क्यो हिलाया। उसने कहा—महाराज, यह हीरा नकली है और आपके खरीदने योग्य नही है। राजा ने पूछा—क्या तू हीरे की परीक्षा करना जानता है? उसने कहा—हा महाराज, अपनी अवस्था के अनुसार हीरे की परीक्षा करना जानता हूँ। राजा ने पूछा—कि इसमे क्या खोट है। उसने कहा—यह खरा नही, किन्तु खोटा है। तब महाराज ने जौहरियो से कहा—यह लडका क्या कह रहा है? उन्होने कहा—महाराज, यह एक गरीब का लडका है, नया-नया सीखा है और अभी तो इसके होठो का दूध भी नही सूखा है। यह अभी कुछ जानता पहिचानता नही है। यह अभी क्या समझे कि इस जवाहिरात मे क्या विशेषता है। महाराज, हमने तो हजारो बार माल दिलाया है। यह सही हीरा है और इसमे कोई खोट नही है। तब महाराज ने उस बाल-जौहरी से कहा—बाबू, मेरे पुराने जौहरी तो इसे सच्चा बतला रहे हैं और तू ऐसा कह रहा है। उसने कहा—महाराज, ये तो बडे हैं, दाने है और सरदार हैं। मैं इनकी क्या बराबरी कर सकता हूँ। परन्तु उन जौहरियो के व्यवहार से उसके हृदय मे बडी ठेस लगी कि जाति-बिरादरी का होते हुए भी मुझे इन लोगो ने अपमानित किया है और मेरी सच्ची बात को भी झूठी बताया है। इन लोगो को ऐसा करते हुए लज्जा नही आई? इनको चाहिए तो यह था कि मेरी सही बात की पुष्टि करके मेरा साहस और हौसला बढाते। मगर इन्होंने तो भर-पूर निन्दा करके मेरे हौसले ही पस्त कर दिये है और मेरी ही कीमत घटा दी है। जब इन लोगों ने मेरी इज्जत-आबरू नही रखी, तो मैं ही क्यो रखू। यह सोचकर वह बाल जौहरी बोला—महाराज, हाथ-कंकण को आरसी की क्या जरूरत है? प्रत्यक्ष वस्तु को अन्य प्रमाणो से सिद्ध करने की आवश्यकता नही। यद्यपि ये सब लोग बडे-बूढे है, अनुभवी हैं और मैं इन लोगो के सामने छोटा-सा अबोध बालक ही हूँ। परन्तु मैं डंके की चोट से कहता हूँ कि यह हीरा खोटा है। और यदि आपको मेरी बात पर विश्वास

नही है और परीक्षा ही करनी है, तो घन मगवा करके इस पर चोट लगवाइये। यदि वह असली हीरा होगा, तो टूटेगा नही। और काच का होगा तो घन पडते ही चूरा-चूरा हो जायगा। यह सुनकर उन जौहरियो के मुख नीचे हो गये और विचारने लगे कि यह तो हमारा गुरु बनकर आया है। महाराज ने उसी समय घन मगवाया। भाई, ये राजा लोग हैं, वे हजारो-लाखो रुपये की वस्तु की भी परवाह नही करते हैं। घन के आते ही महाराज ने उस पर चोट करने की आज्ञा दी। घन के लगते ही वह चूर-चूर हो गया। यह देखकर वे सब जौहरी बडे लज्जित हुए। तब राजा ने कहा—अरे बेईमानो, मक्कारो, मुझे भी धोखा देते हो! इन व्यापारियो से रिश्वत खाकर तुम लोग इस लडके की क्या होड कर सकते हो? राजा ने क्रोधित होकर सन्तरियो को कहा—धक्के देकर इन लोगो को यहा से बाहिर निकाल दो।

भाई, राजा के क्या है? राजा हमारा मित्र है, यह कभी सुना है क्या? फिर वह कौडी मोल का भी हीरा नही था, तब तो राजा का रुष्ट होना ठीक ही था। सब जौहरी निकाल बाहिर कर दिये गये और वे अपने-अपने घर चले गये। मन मे विचारने लगे कि आज तो इस लडके ने हम सबको ही नीचा दिखा दिया है। राजा ने प्रसन्न होकर उस लडके को राज-जौहरी बना दिया और इनाम देकर विदा किया। जब बाजार मे वे जौहरी इससे मिले, तब बोले—अरे दुष्ट, तेरे बाप का तो पता तक नही है और हम लोगो के साथ हुज्जत (होड) करता है? लडके के दिल मे उनका यह शब्द तीर के समान चुभ गया कि बाप का तो पता तक नही है। वह राज-दरबार मे जीतने और इनाम पाने की सब खुशी भूल गया और चिन्तातुर होकर घर पहुँचा। उसकी मा को आज के दरबार की सारी बात पहिले से ही ज्ञात हो गई थी। अत उसके घर पहुँचते ही हर्षित होकर वह बोली—अरे बाबू, तू तो बडा जौहरी हो गया है? वह बोला—मैं जो कुछ हो गया सो हो गया। परन्तु मा, सच बता कि मेरा बाप कहा है? यदि मेरा बाप जीवित है, तो उसकी क्या पहिचान है और वह कहाँ है? यदि नही है तो क्या मैं दोगला हू? तब मा ने कहा—बेटा, तुझे कौन दोगला कहता है। तू तेरे बाप का ही है। जब लडके ने हठपूर्वक सारी बातें खुलासा कहने को कहा, तब उसकी आखो मे पानी आ गया। यह देखकर लडके ने कहा—मां, तू अब रोना बन्द कर और मुझे अपने पिता के विषय मे सारी बातें बता दे। मा ने कहा—बेटा, बात यह है कि तेरे बाप घर की परिस्थिति से दुखित होकर

तेरे पैदा होने के पूर्व ही परदेश को चले गये थे। जाने के बाद से आज तक भी उनका कुछ पता नही चला कि कहा गये हैं। और, यह तू निश्चय रख कि तेरे वश मे कोई मेल नही है, रत्ती भर भी इसमे शका मत कर। तब लडके ने कहा—कि मा, अब यह बता कि मैं बाप को ढूढने जाऊ, तो उनकी पहिचान क्या है ? उसकी मा ने उसके सामने एक दर्पण रख दिया और कहा कि जो तेरा चेहरा है, वही तेरे बाप का है। जो समझदार स्त्री चतुर्थ स्नान करके सर्व प्रथम जिसका मुख देखती है, तो गर्भ मे भी ठीक वैसा ही फोटो उतर जाता है। इसलिए सती पतिव्रता स्त्रिया चतुर्थ स्नान के बाद अपने पति का मुख देखती हैं। अथवा यदि वह कही बाहिर गया हो, तो फिर अपना मुख दर्पण मे देखती है। इसलिए जो तेरा रूप है, ठीक यही रूप तेरे बाप का है।

माता से अपने पिता की पहिचान सुनकर वह उन्हे ढूढने के लिए तैयार हो गया और मा को नमस्कार कर बोला - यदि बाप मिल गया, तो मैं वापिस आ जाऊगा। अन्यथा जैसे धनी का पल्ला लेवे, वैसे ही मेरा भी ले लेना। तब मां ने कहा—बेटा, ऐसा मत कह। तू उसी बाप का बेटा है, अवश्य ही तू उनका पता लगा लेगा। पर मैं तुझे अकेले नही जाने दूगी, मैं भी तेरे साथ चलूगी। यहाँ रहकर मैं अकेली क्या करूगी। लडका बोला—अच्छी बात है, तू भी साथ चल। अब मुझे पेट भरने की चिन्ता नही है। मैं जहा भी जाकर बैठूंगा, वही मेरे लिए रोजगार तैयार है। अब मुझे रोजी कमाने की कोई चिन्ता नही है। इस प्रकार माता और पुत्र दोनो ही साथ घर से निकले। अनेक ग्रामो और नगरो मे छान-बीन की मगर उसे अपने बाप का पता नही चला। इस प्रकार पूरा एक वर्ष बीत गया। यह लोग भी सोचने लगे कि कही उनका जीवन तो समाप्त नही हो गया है, क्योकि उन्हे घर से निकले लगभग बीस वर्ष हो गये थे। फिर भी मा-बेटे ने हिम्मत नही हारी और बराबर ग्रामानुग्राम घूमते और ढूढते हुए वे दोनो उस नगर मे पहुँचे जहा वह महल बन रहा था और हजारो आदमी काम कर रहे थे। यह वहा जाकर काम कराने वाले मैनेजर से मिला और पूछा कि यह महल कौन बनवा रहा है ? उसने कहा कि हमारे सेठ साहब के कँवर साहब गोद आये है, वे बनवा रहे हैं। इसने पूछा कि वे कहाँ से गोद आये हैं, तो उसने बताया कि लोग कहते हैं कि वे अमुक गाव से आये हैं। उनके पास कुछ भी नही था। भाग्य से वे सेठजी के गोद बैठ गये हैं और करोडो की पूजी हाथ आ गई है। इसने पूछा कि उनका नाम क्या है ? मैनेजर ने नाम बताया

उसने अपनी मा से पूछा कि क्या यही नाम है ? उसने कहा—हाँ यही नाम है। अब इसे गाँव का और पिता का नाम तो मिल गया। परन्तु जब तक चेहरे का मिलान न हो जाय, तब तक कैसे कहा जाय कि तुम मेरे बाप हो। लडके ने मैनेजर से कहा कि हमको भी यहा नौकर रख लो। यद्यपि है तो वह जौहरी, परन्तु पिता को ढूढने और मन की शका को दूर करने के लिए नौकर हो गया, क्योंकि किसी प्रकार अपने बाप को ढूढना था। अब वह दिनभर अन्य मजदूरो के समान काम करने लगा और धर्मशाला मे रहकर मजदूरी से अपनी माँ की गुजर करने लगा। लडके ने मैनेजर से पूछा कि कवर साहब कब पधारेंगे ? मैनेजर ने कहा कि इसी आने वाली पूनम को आवेंगे। उसने यह भी बताया कि कवर साहब जब आते है, तब सब कारीगर और मजदूर लोग रास्ते के दोनो ओर पक्ति बाधकर खडे हो जाते हैं और उन्हे नमस्कार करते हैं। वे आकर सब काम देखते हैं। जो बना हुआ भाग पसन्द आता है उसे खडा रहने देते है और बाकी को गिरवा देते हैं। धीरे-धीरे पूनम भी आ गई। सब लोग सडक के दोनो किनारो पर पक्ति बाधकर खडे हो गये। एक ओर पुरुष खडे हुए और दूसरी ओर स्त्रिया खडी हो गई। ठीक समय पर कवर साहब आये। ज्यो-ज्यो उनकी सवारी समीप आती है, लोग उनका अभिवादन करते हैं। लडके ने उनको देखकर उनका चेहरा बनाकर अपनी दृष्टि मे जमा लिया। अब वे कंवर साहब लडके के सामने आये, तब उसने दर्पण मे अपना मुख देखकर मिलान किया कि चेहरे पर की सब चीजे बराबर है। देखने वाले दूसरे लोग सोचते है कि क्या यह पागल हो गया है जो बार-बार दर्पण मे अपना मुख देखता है और फिर कवर साहब का चेहरा देखने लगता है। इस प्रकार धीरे-धीरे कवर साहब की सवारी लडके के समीप आ गई। कवर साहब ने भी लडके की हरकत देखी और विचारने लगे कि यह ऐसे क्या कर रहा है। जब वे लडके के बिलकुल सामने ही आ गये, तब उन्होने पूछा कि अरे लडके बार-बार इस दर्पण मे क्या देख रहा है ? उसने कहा कि मेरा बाप खो गया है, अत उसे ढूढ रहा हू। कवर साहब ने सोचा कि यह पागल मालूम पडता है जो दर्पण से बाप को ढूढता है। दर्पण मे क्या कही पर बाप बैठा है ? फिर पूछा अरे, बाप मिला, या नही ? लडके ने कहा—हा मिल गया है। कवर साहब ने कहा—अच्छा, यह दर्पण मुझे दे। मै भी तो देखू कि इसमे क्या करामात है ? उन्होने लडके से दर्पण अपने हाथ मे लिया और उसमे अपना चेहरा देखा, तो वे बहम मे पड गये। अरे, इसका चेहरा तो मुझसे मिलता-जुलता है। वे

बार-बार अपना चेहरा दर्पण मे देखने लगे और उस लड़के का चेहरा निहारने लगे । जो स्थिति पहिले लडके की थी,अब वही स्थिति कवर साहब की हो गई । जब मुनीम साहब ने देखा कि कवर साहब भी चक्कर मे पड गये हैं, तब उनसे कहा कि यह काच काम का नही है, इसे फैंक दो । जब उनके मन मे सब बात जम गई, तो उन्होने वह कांच लडके को देकर फिर पूछा कि बाप मिल गया है । लडके ने दृढतापूर्वक कहा कि हाँ, मिल गया है । आगे थोडी सी दूर पर सामने पक्ति मे उसकी मा खडी थी । इसने उसे इशारा किया, कि तू भी जाँच कर ले । उसने भी इशारे मे ही कहा—हा, यही तेरे बाप हैं । पुन मुनीमजी ने लडके से पूछा—कि तेरे बाप मिल गये हैं ? लडके ने कहा—हा मिल गये है । उन्होने पूछा—अरे, बता कहा हैं तेरे बाप ? लडके ने कहा—अन्दर हैं । मुनीम साहब ने कहा—कि क्या बात है ? लडके ने कहा कोई बात नही है । मै तो गरीबी मे था और पिताजी हमको छोडकर चले आये और यहा आकर श्रीमन्त सेठ की गोद मे बैठ गये । परन्तु उनको ढूढने के लिए मेरी मां ने उपाय बताया कि इस तरकीब से तुम अपने बाप को देख सकते हो । यह तरकीब मुझे जँच गई और उसी से मैंने अपने बाप को पा लिया । कवर साहब ने विचार किया कि अरे, मैंने बडी भूल की—जो इस श्रीमन्ती के सुख मे आकर मैं अपनी स्त्री और बच्चे को भी बिसर गया । उन्होने लडके को अपने पास बुलाया । लडके ने बुलाने वाले आदमी से कह दिया कि मुझे वहा जाने की कोई जरूरत नही है । मुझे तो केवल उन्हे पहिचानना था, सो पहिचान लिया है । यह बात सुनकर मुनीम साहब को बहुत बुरा लगा कि मैंने इसे गोद दिला दिया । अरे, जो आदमी अपनी स्त्री का और बच्चे का नही हुआ, तो वह सेठ साहब का कब होगा ? वह गाडी मे बैठकर सीधा सेठ साहब के पास पहुंचा और उनसे कहा कि जो लडका आपने गोद लिया है, उसमे तो बडी खोट निकली है यह कह कर उन्होने सारा हाल सेठ को सुना दिया और कहा कि यदि असली चीज को लेना हो तो अब हाथ आई हुई है । सेठ सब हाल सुनकर बोला—अरे, यह इतना कुपात्र है जो कि अपनी स्त्री और लडके को भी भूल गया, अपनी जन्मभूमि को भी उसने भुला दिया है । ऐसा कुपात्र मेरे बुढापे मे क्या सेवा करेगा ? और उसका लडका कितना सुपात्र और चतुर है कि इतनी परेशानियां उठाकर भी अपने बाप को ढूढने निकला और आखिर तरकीब से उन्हें ढूढ भी लिया है । जिसने अपने बाप की शक्ल-सूरत देखने की बात तो दूर, नाम तक भी आज के पहिले नही सुना था. उसने उन्हें ढूढा और आकर के मिला

तो वह कितना सपूत है ? अब देखो मुनीम जी, हमे तो उसी लडके को गोद लेना है। यह कहकर सेठ साहब अपने मुनीम जी के साथ ही सवारी पर बैठ कर वहा गये, जहा पर वह लडका अपनी मा के साथ ठहरा हुआ था। उन दोनो ने सेठ साहब को रामा-सामा किया। सेठ साहब ने उससे पूछा कि तुम कहाँ से आये हो ? और कैसे आये हो ? उस लडके ने कहा—कि मेरा बाप खो गया था, अत उसे ढूढने को आया हू। सेठ ने पूछा—क्या वह मिल गया है ? लडके ने कहा– हा साहब मिल गया है। सेठ ने पूछा—वह कहा है ? लडके ने कहा - वे कमरे मे बैठे हुए हैं। सेठ ने कहा—अरे, ये तो हमारे गोद लिए हुए लडके हैं। लडका बोला—इस बात से मुझे कोई मतलब नही है। मैं तो केवल अपने बाप को ढूंढने आया था, और वह मिल गया है। अब सेठ ने उसके बाप को बुलाया और मुनीम जी को लक्ष्य करके बोले—याद है मुनीम जी, उस दिन मैंने कहा था कि घर की गूदडी का रखवाला चाहिए है ? तब आपने इसको चुना। आपने तो कपूत को चुना है कि जिसने अपनी स्त्री और बच्चे को भी छोड रखा है। यह हमारी क्या सेवा करेगा ? एक दिन यह धन-माल लेकर हम लोगो को भी छोडकर भाग जायगा ? इस लिए इस गोद को कैंसिल (रद्द) करो और इस नये लडके को मौलिया बधवा दो। सेठ जी की बात सुनकर मुनीम जी ने भी 'हा' भर दी, कि यही होना चाहिए। भाई, सेठ जी के सामने कौन बोले ? वे राजा की मान्यता वाले हैं। इस सम्पत्ति का प्रभाव ही ऐसा होता है कि जब वह आती है, तब अच्छे-अच्छे विचारवान् मनुष्यो का भी दिमाग आसमान चढा देती है। तुलसीदास जी ने भी कहा है 'प्रभुता पाय काहि मद नाही ?' सस्कृत नीति भी कहती है कि—'धनं मदाय प्रभवति।' धन प्राप्ति गर्व का ही कारण बनती है।

इस प्रकार सेठ जी के कहने पर मुनीम जी ने नये लडके को गोद लेने की सारी तैंयारी कर ली और आवश्यक सभी सामग्री भी मगवा ली। यह देखकर उन कवर साहब का मुख नीचा हो गया। सेठ ने उसके लडके की ओर देख कर कहा—आओ बेटा, बाजोट पर बैठो, गोद का दस्तूर कराओ और माथे पर मोलिया बधवाओ। सेठ की बात सुन कर वह लडका बोला—नही सेठ साहब, मुझे तुम्हारे गोद बैठने की आवश्यकता नही है। और फिर ऐसी जगह, जहा से कि मेरे बाप को तो नीचे उतारा जाय और मुझे उनकी जगह पर बैठाया जाय। मैं इसे स्वीकार नही कर सकता। गोद तो वे जावें, जिनमे स्वयं कमाने की शक्ति नही हो। मेरे मे तो कमाने की

शक्ति है। जो शूरवीर है अपनी रोटी आप कमा करके खाते हैं, उन्हें दूसरो के द्वारा दी गई रोटी नही रुचती। क्या आपने यह नही सुना है—

'रोचते नहि शौण्डीरा, पर पिण्डादि दीनता'।

अर्थात्—शौण्डीर पुरुष को पराया अन्न पिण्ड आदि खाने की दीनता अच्छी नही लगती है। जो कायर है, कमाना नही जानते, वे ही पराई रोटी पर निर्भर रहा करते हैं।

उपस्थित सभी लोगो ने उसे बहुत समझाया, मगर वह माथे मोलिया बधवाने को तैयार नही हुआ। उसने कहा—सेठ साहब, आपने जो परीक्षा की है, वह ठीक है। खोले तो मेरे बाप ही रहेंगे। खूटा खोटा नही, किन्तु लगाम खोटी है। आप अब इनकी भूल निकालते हैं, परन्तु तब गोद लेने के समय भी तो आपको इनसे पूछना चाहिए था कि तुम्हारी शादी हुई है, या नही? यदि हुई है, तो बाल-बच्चा है, या नही? तो भूल तो आपकी ही है। मगर आपको बेटे की और इनको धन की भूख थी, जिससे यह ऐसा सयोग बना है। इन सब बातो का आपको पहिले ही निणय करना चाहिए था। अब यह सब करने से क्या लाभ है? मैं तो अपने पैरो पर खड़ा हूँ और आपकी गोद मे जाने को तैयार नही हूँ।

भाइयो, यह एक दृष्टान्त है। इसे दार्ष्टान्त पर घटाइये। भगवान ने कहा—यह विचार करो कि 'मैं कौन हू?' जिसे हम जानना चाहते हैं, उसके विषय मे पहिले जानकारी हासिल करना चाहिए। जैसे उस लडके की मा ने उससे कहा कि यदि तू अपने बाप की जानकारी चाहता है तो दर्पण मे अपना मुख देखकर उसको पहिचानना। इसी प्रकार भगवान की वाणीरूप मा ने हम लोगो को ज्ञानरूपी दर्पण दिया है और कहा है कि इसमे तो तू देख कि मैं कौन हूँ। ज्ञानरूपी दर्पण मे देखने पर तुझे मालूम हो जायगा कि मैं चेतन हू, जड नही हूँ। नित्य हू, अनित्य नही हूँ। और यही आत्मा का स्वरूप है। यह जानकारी हमे भगवान की वाणी से मिली। जड-चेतन का, नित्य-अनित्य का और सत्य-असत्य का पता इस जिन वाणी से ही चलेगा, अन्य प्रकार से नही चल सकता है। जैसे उस लडके को उसकी मा ने दर्पण देकर कहा कि तेरे बाप की शक्ल-सूरत बिलकुल तेरे ही समान है, चेहरे मे रत्ती भर भी फर्क नही है। तेरे पिता हू-बहू तेरे ही समान है। और यह जानकारी पाकर नाना देशो मे घूमते हुए अनेक कष्ट उठाये, ठिकाने पहुँचने पर भी मिट्टी-गिट्टी की टोकरिया सिर पर उठाई

और अपने बाप की खोज मे बराबर सावधान रहा, तो एक दिन उसने अपने बाप को पा ही लिया। यदि वह अपनी मा की बतलाई तरकीब के अनुसार न चलता। अनेक कष्ट न उठाता और घर पर ही पडा रहता, उससे बाहिर न निकलता, तो क्या वह अपने बाप को पा सकता था? इसी प्रकार जो अपने स्वरूप को जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूं, तो उन्हे भी बार-बार छोडना पडेगा, सयम पालना होगा और अनादिकाल से लगे हुए इन विषय-कषायो से अपनी प्रवृत्ति को दूर करना होगा। यह आत्मा अनादि काल से अपने स्वरूप को भूला हुआ है और सिंह से सियार बना हुआ है। कहते है कि एक बार एक सिंह का बच्चा अपने मा-बाप से बिछुड गया और सियारो की टोली मे जा मिला। वह अपना सिंहपना भूल गया और सियारो जैसी ही सब क्रियाए करने लगा। एक बार जंगल मे सियारो के उस झुड को सिंह की गर्जना सुनाई दी—तो उसके सब सियार-साथी भाग खडे हुए। सिंह-गर्जना सुनकर उसे आत्म-भान हुआ और वह भी सिंह के समान ही गरजने लगा और सिंह के साथ जाकर मिल गया। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य की आत्मा वीर भगवान के समान ही वीर और सिंह के समान ही पराक्रमी है। परन्तु आज तक उसे आत्म-भान नही हुआ है, इसलिए यह दर-दर के भिखारी के समान सर्वत्र ठोकरे खाता हुआ ससार मे जन्म-मरण के दुख भोगता परिभ्रमण कर रहा है।

पं० दौलतराम जी ने बहुत ही ठीक कहा है—

'मैं भ्रम्यो अपन पो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निजको परकौ करता पिछान, पर में अनिष्टता-इष्ट ठान॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यो मृग मृगतृष्णा जान वारि।
तन-परिणति मे आपौ चितार, कबहूं न अनुभव्यो स्व-पद सार॥

यह जीव अपना स्वरूप भूल करके, पर पदार्थो को सुख-दुख का दाता मान करके अज्ञान वश शरीर की परिणति को आत्म-परिणति समझ कर आकुलित हुआ ससार मे भटक रहा है। जैसे कि ग्रीष्म ऋतु मे प्यासा मृग मृग मरीचिका को ही जल समझकर दौडा फिरता है,पर जल नहीं मिलता। आत्मा ने सारभूत अपने पद का कभी अनुभव नही किया।

आत्मा के इस अनुभव को करने के लिए ही जिन वाणी रूपी माता ने यह उपदेश दिया कि अपने पिता के पद के स्वरूप को समझने के लिए तुझे अपने ही ज्ञान रूपी दर्पण मे अपने स्वरूप को देखना होगा। और यह तभी

संभव है, जबकि तू सर्व ओर से अपनी मनोवृत्ति को हटा कर अपने भीतर अपनी खोज करेगा। खोज करते हुए तुझे पता लग जायगा कि मेरा स्वरूप भी अरिहन्त-सिद्ध भगवान के समान ही अनन्त ज्ञान-दर्शन मय है। यदि तुम्हे भी भगवान के समान बनना है तो भोगो से ममता दूर करो और भगवान की आज्ञा के अनुसार तप सयम मे आगे बढो। जो उनके कहे अनुसार चलेगा, उसे आत्मस्वरूप दिख जायगा और वह उन्ही के समान बन जायगा। तथा सदा-सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से विमुक्त हो जायेगा।

१०

उत्साह : उन्नति का द्वार

सर्वारिष्टप्रणाशाय सर्वारिष्टनिवारिणे ।
सर्वलब्धिनिधानाय श्री गौतम स्वामिने नम ।

यदि मनुष्य के हृदय मे उमग है, उत्साह है, तो वह कीडी से कु जर बन सकता है, वह एक रज कण से पहाड बन सकता है लोहे से सोना बन सकता है, परन्तु उसमे होना चाहिए उत्साह । उत्साह एक ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य मे अद्भुत शक्ति उत्पन्न कर सकती है। आप सब जितने लोग यहा पर बैठे है, यदि उत्साह को छोडकर आप कहे कि अब हम लोग क्या करें ? साहब हमारा तो कोई नही है, हाथ-पैर ठडे हो गये है, उन्हे लकवा मार गया है आदि । ऐसी निरुत्साह की स्थिति मे यदि कोई आकर उत्साह-वर्धक शब्द कहे कि इस प्रकार उत्साह-हीन होकर क्यो पडे हो ? तुम मे कौनसी शक्ति नही है ? सभी कुछ तुम मे है । उठो, घबडाने की बात नही है, तुम लोग सब कुछ करने की क्षमता रखते ही हो और सब कुछ कर सकते हो वह सम्बोधित करे कि—

'न हो सकेगा यह काम भाई, कभी न बोले यह हीनताई ।
न क्यो सकोगे कर, सो विचारो, अधीरता को दिल से निकालो ।।

तो उसके ये जोश भरे वचन सुनकर सारे शरीर मे, हर एक अवयव मे जोश पैदा हो जायगा और विचारने लगेगा कि मैं, अवश्य ही सब कुछ करू गा । ऐसे उत्साह-वर्धक शब्द कौन कह सकता है ? जिसके हृदय मे उत्साह उल्लसित हो रहा है । उत्साह के आते ही, जोश के पैदा होते ही

मनुष्य बडी से बडी चट्टानें तोड सकता है, बडे बडे पहाड लांघ सकता है, उनको रेगिस्तान बना सकता है, जहा रेगिस्तान है, वहा पानी के सरोवर कर सकता है और किये हैं। इसके उदाहरण आपके सामने हैं। इसके विपरीत उत्साह-हीन के पास सब कुछ होते हुए भी वह कुछ नही कर सकता। कितने ही लोग कहा करते हैं कि यह भी क्या आदमी है जो धान के घर मे होते हुए भी भूखा मरता है। भूखा वही मरता है जो घर मे अनाज की बोरिया भरी रहने पर भी, घी, शक्कर के होते हुए भी और ईधन आदि सर्व सामग्री के रहते हुए भी यह विचारे कि कौन खाना बनावे ? जब सब कुछ घर मे होते हुए भी भोजन बनाने के परिश्रम से डरता है और इतनी भी वह मेहनत नही कर सकता है, तब उसे भूखा मरना ही पडेगा क्योंकि उत्साह की उमग की और परिश्रम करने की कमी है। परन्तु जिसके हृदय मे उत्साह है, उमग है, वह किसी न किसी प्रकार अपना काम कर लेता है। इसलिए हमे जरूरत है उत्साह की।

उत्साह और उद्योग

उत्साह और उद्योग मे अन्तर है। उद्योग तो करने की वस्तु है। जैसे आज पानी बरस रहा है, स्थानक तक आने की स्थिति या अवसर नही है, फिर भी आपने विचार किया कि नही, कुछ भी हो, परन्तु हम तो स्थानक मे जाकर महाराज का व्याख्यान सुनेंगे ही। और आप लोग आकर व्याख्यान सुन रहे हैं। परन्तु जिसने उत्साह भग कर दिया कि आज पानी बरस रहा है ऐसे मे काहे का व्याख्यान होगा ? तब उसे क्या व्याख्यान सुनने को मिलेगा ? इस प्रकार उत्साह मनुष्य का एक आभूषण है। यदि मनुष्य मे उत्साह है, और उससे प्रेरित होकर उद्यम करो तो नियम से सर्व कार्य सिद्ध होवे है। कहा भी है—

> उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै।
> नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

मनुष्य के उद्यम करने से ही कार्य सिद्ध होते हैं। केवल पडे-पडे मनोरथो से कार्य सिद्ध नही होते हैं। देखो-सिंह कितना बलवान है, पर यदि वह उद्योग नही करता है और अपनी माद मे ही सोता रहता है, तो मृग स्वय आकर उसके मुख मे नही घुस जाते हैं।

जब कुछ मनुष्य उत्साहित होकर किसी कार्य विशेष के करने का उद्यम करते हैं, तब लोग उन पर हसते हैं और कहते हैं कि ये लोग क्यो माथा

कूट करते है ? इनसे कुछ नही होगा। परन्तु जिनके मन मे उत्साह होता है, वे किसी के हसने की या कुछ भी कहने की रत्ती भर भी परवाह नही करते और अपने कार्य मे लगे रहते हैं। ऐसे ही लोग अपने कार्य मे नियम से सफलता प्राप्त करते है।

सफलता का मूल मंत्र

वि० स० १९७०-७२ मे जब मैं गुरुदेव के पास अध्ययन कर रहा था, तब किशनलाल जी और माधवमुनिजी की काव्यकृतिया सामने आईं। मेरे मन मे भी उमग आई कि हम भी कभी कवि बनेगे। इन्होने कैसे बनाई ? क्या इन लोगो के भीतर कोई दैवी शक्ति है ? जब कभी बड़े प्राचीन कवियो की कविता देखता, तब मन मे विचार आता कि इन लोगो मे कोई दैवी शक्ति है, तभी तो ऐसी कविताएँ और रचनाएँ वे कर सके हैं। क्या हम भी कभी कविता बना सकेंगे ? इस प्रकार कविता करने का उत्साह मन मे आया। वि० स० १९७४-७५ मे कुछ कडिया बनाना प्रारम्भ किया। यहा एक बात बताना जरूरी है कविता बनाने के लिए गुरुदेव की मनाई थी। परन्तु मन मे उत्साह था और कविता बनाने की धुन लग रही थी। इसलिए हमने चुपचाप कुछ न कुछ बनाना शुरू कर ही दिया। यह सरासर गुरुदेव की आज्ञा की अवहेलना थी, क्योकि चोरी छिपे कविता बनाया करता था। उस समय मैं लम्बा कागज लेकर उस पर छोटे छोटे अक्षरो से कविता लिखा करता था। अत विचार आया कि इन्हे कहा रखू ? पहिले गुरुजन फाउन्टेन पेन भी नही रखने देते थे, और थोडी सी भी बची स्याही को शाम के समय प्रतिदिन सुखा देना पडता था। इसलिए जो कलम का अट होता था, उसमे उस कविता के कागज को डाल देता था। इस प्रकार चोरी-छिपे मैंने कई भजन और ढालें बनाईं। जब बनाता तब मन मे खुशी होती थी। आज भाव कैसे हैं और उस समय भाव कैसे थे ? परन्तु यह ख्याल अवश्य था कि कविता करना बुरी बात नही है। एक बार ऐसा मौका बना कि मेरा गुरुदेव के साथ जैतारण मे चौमासा था। एक दिन मे पडित जी के पास पढाई करके पचमी चला गया। उसी समय गुरुदेव को कलम की जरूरत पडी, तो उन्होने वह कलम उठाई। उठाते ही उन्हे कुछ बोझा सा लगा। यह बोझा क्यो ? यह मन मे विचार आते ही उन्होने देखा कि कलम मे तो कागज है। उन्होंने वह कागज निकाला और उसे पढा। उन्होने जान लिया कि यह कविता कर रहा है। पढ कर कागज उन्होने वापिस भूगली बनाकर उसी कलम मे डाल दिया। जब मे वापिस आया,

तब गुरुदेव व्याख्यान दे रहे थे। मैं अन्य कार्य मे लग गया। बाद मे गोचरी ले आया। आहार करने के बाद जब मैं बारह बजे अपना काम कर रहा था, तब गुरुदेव ने कहा कि कलम लाओ। मैं दूसरी कलम लेकर उनके पास पहुचा। उन्होने उसे देखकर कहा—यह नही, वह कलम लाओ। यह सुनते ही मेरे मन मे शका उठ खडी हुई कि हो न हो, गुरुदेव ने सब कुछ देख लिया है। मैंने पूछा—क्या आपने कलम मे रखे कागज को देख लिया है ? यह सुनते ही रुष्ट होते हुए उन्होंने कहा—अरे कुपात्र मैंने तुझे मना किया था कि कविता मत बनाना और फिर तू कविता कर रहा है ? भाई, प्रत्युत्तर मे एक शब्द भी नही कह सका। वह जमाना ही और था। उन्होने कलम मे से कागज निकाले और सबको फाडकर फेंक दिया। इस घटना से मेरे दिल को बडी ठेस लगी, मैंने हताश होकर विचार किया कि 'अब मैं कविता नही लिखूगा। पर जब व्याख्यान देता, तब कोई न कोई टिप्पा घर ही देता था। इस प्रकार अनेक वर्ष बीत गये और मैंने कविता बनाना बिलकुल ही छोड दिया।

वि० स० १९८४ मे हमारा चौमासा सोजत रोड मे था। उस समय आर्य समाज का दगल होता था और जल्से होते थे। उस समय एक-दो अवसर पर मैं भजन बना करके बोला। सुनकर गुरुदेव ने देखा कि इससे तो कविता बनाये बिना नही रहा जाता है। इसलिए बोले—इस विचार पर दो चार भजन बना दे। यह सुनते ही मेरे अन्तरग मे हर्ष की लहर दौड गई और एक दिन मे ही मैंने पाँच भजन बनाकर गुरुदेव के चरणो मे रख दिये। भजन देखकर बोले—कि अब तुझसे रहा नही जाता है, तब ठीक है, कविता किया कर। मगर इससे लाभ कुछ नही है। इस प्रकार गुरुदेव की आज्ञा मिल जाने पर मैं उनके सामने कविता करता रहा और इस प्रकार कई चीजे निर्माण हो गईं। भाई, उत्साह था, तो यह सब हो गया। जब मैं उस समय के कवियो को देखता था, तब मन मे बडा आश्चर्य होता था। वे कवि तो अच्छे थे, सिद्धहस्त थे, उनकी होड तो मैं नही कर सकता हू। परन्तु दिल मे अरमान अवश्य थे। कहने का सार यह है कि चाल, ढाल, चतुराई आदि कोई भी कार्य क्यो न हो, यदि मनुष्य उमग के साथ करना चाहे तो कर सकता है।

उमग दो प्रकार की होती है—एक तो उमग है ससार के वैभव को बढाने की और दूसरी उमग है अपनी आत्मा को ऊपर चढाने की —निर्मल बनाने की। उसके लिए भी ऊचा चढना है और इसके लिए भी ऊचा चढना है। परन्तु दोनो के भिन्न-भिन्न उपाय है। परन्तु उमग एक ही प्रकार की

है। आपने उपवास किया और मन मे उमग लाये कि अवकी वार अठाई करनी है। अव यदि आपमे उमग आ गई, तो अठाई अवश्य होगी। यदि मन जरा भी मुरझा गया, तो अठाई नही होगी। इसलिए प्रत्येक सत् कार्य मे उमग अवश्य रखनी चाहिए। अव आप चाहे इसे उमग कहो, उत्साह कहो, या जोश कहो, सव एक ही वात है।

कीड़ी का उद्योग

भारत के ऊपर मोहम्मद गोरी ने सात वार चढाई की, परन्तु वह सातो ही वार हार गया और उसे लँहगा और चूडिया पहिननी पडी। क्योकि पृथ्वीराज चौहान उसको वडी-वडी टक्करें देता रहा। अन्त मे वह निराश होकर तुर्किस्तान चला गया। उसके हृदय मे विलकुल भी हिम्मत नही रही कि मैं कभी भारत को जीत सकू गा। इस प्रकार निराश होकर एक दिन वह अपने महल मे वैठा हुआ था कि उसकी दृष्टि एक कीडी पर पडी। वह एक वाजरी का दाना लेकर दीवाल पर चढने लगी। वह चार अंगुल ही चढी होगी कि पीछे नीचे गिर पडी। वह दुवारा दाना लेकर चढी और हाथ भर ऊपर चढकर फिर नीचे गिर पडी। वह तीसरी वार ऊपर चढी और दो हाथ ऊचे तक चढ करके भी फिर गिर पडी। वादशाह उसके इस उत्साह को टक-टकी लगाकर देखने लगा और विचारने लगा कि यह कीडी कितनी मूर्ख है जो इतना वडा दाना लेकर वार-वार चढने का प्रयत्न करती है? कही यह इतना वडा दाना लेकर दीवाल पर चढ सकेगी? यह इसका अति दु साहस है, जो वार-वार गिरने पर भी दाना लेकर ऊपर चढने का प्रयत्न कर रही है। इस प्रकार वादशाह गौरी के देखते हुए वीस वार नीचे गिरी। परन्तु इक्कीसवी वार वह दाना लेकर दीवाल को पार कर गई। उस कीडी के इस अदम्य उत्साह को देखकर वादशाह के मन मे भी उत्साह का सचार हुआ और उसने विचार किया कि एक वार तो भारत पर चढाई और करू गा। अवकी वार मैं भारत पर अवश्य विजय प्राप्त करू गा। इस प्रकार दृढ निश्चय करके उमग और उत्साह के साथ उसने पुन भारत पर चढाई कर दी। इस वार उसके भाग्य का उदय आया और इधर भारत मे फूट पड गई जयचन्द और पृथ्वीराज के वीच मे वैमनस्य ने घर कर लिया। इस फूट का लाभ उठाया मोहम्मद गोरी ने और उसने भारत पर विजय प्राप्त करली। और फूट की लूट मे उसकी मनोकामना पूरी हुई। मोहम्मदगोरी के भाग्य रूप उत्पादन के लिए पृथ्वीराज-जयचन्द की फूट निमित्त वन गई और भारत पराजित हो गया। विना निमित्त के

अकेला उपादान कारण कोई कार्य नही कर सकता। निमित्त मिलने पर ही उपादान कारण अपने कार्य को करने मे समर्थ होता है।

उत्साह ही उन्नति का द्वार

भाइयो, जिस मनुष्य मे उत्साह है, उमग है, वही पूर्ण मनुष्य है। वह देवताओ के द्वारा पूजा जाता है। उसके मस्तिष्क मे नई नई बातें उत्पन्न होती हैं। और नये नये आविष्कार करने की योजनाए हिलोरे मारने लगती है। वह अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए उद्यत होता है और उन्हे कार्यरूप मे परिणत करके दिखाता है और एक नये आविष्कार को करके ससार मे यश और धन का उपार्जन करता है। आज तक ससार मे जितने भी आविष्कार हुए है, वे सब एक साथ बटन दबाते ही नही हुए है किन्तु उनके होने मे अनेक लोगो की सैकडो वर्षों की तपस्या है, उसी का यह सुफल है कि हम आये दिन एक से बढकर एक नया आविष्कार देखते हैं। ये सब बातें पहिले दिमाग मे एक कल्पना के रूप मे आई। फिर उन्हे प्रयोग के लिए छोटे रूप मे आजमाया गया। धीरे-धीरे उनमे जो जो खामियाँ नजर आई, उन्हे दूर किया गया। इस प्रकार आज हम सभी दिशाओ मे उत्तरोत्तर उन्नति होती हुई देख रहे हैं। यह सब उत्साह और उमग का ही फल है कि आज हम भौतिक उन्नति के अनेक नये नये आश्चर्य-कारक कार्यों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यदि मनुष्य की उमग ठण्डी पड जाय, तो फिर उससे कुछ भी नही हो सकता है। उमग एक आन्तरिक ज्योति है, प्रज्वलित अग्नि है, जो नये नये तत्त्वो का मिलान कराती है। लोहे के सरिये का एक छोर इधर है और दूसरा छोर उधर है। अब आपने उन्हे मिलाने के लिए तपाया, तो उनमे एक ज्योति प्रगट होती है। फिर सरिये के उन दोनो सिरो को एरन पर रखकर हथौडे से चोट लगाते हैं, तो दोनो के मुख आपस मे मिल जाते हैं, या नही ? मिल जाते है। परन्तु यदि सरिये का एक सिरा तो ठडा हो और दूसरा गरम हो, तो क्या वे दोनो आपस मे जुडेगे ? नही जुडेंगे। इसी प्रकार यदि उत्साह हृदय मे उत्पन्न हो जाय और उसमे अभिवृद्धि करने वाले भी सामने आजाये, तो कार्य-सिद्धि होने मे देर नही लगे।

आज आपका छोटा भाई या लडका बाजार मे चला गया और आपसे पूछे बिना ही उसने माल खरीद लिया, या कोई सौदा कर लिया और उसमे नुकसान हो गया। अब वह घर आया और नुकसान को देखकर बाप लडके को फटकार लगावे और कहे कि तू बडा नालायक है, इतना नुकसान कर

दिया। जा, घर से निकल जा। तू घर मे रखने के योग्य नही है। इस प्रकार डाट-फटकार लगाने पर वह घर से ही नही गया, अपितु सारे जीवन से भी चला गया समझना चाहिए। आपकी फटकार से उसका हृदय टूट गया और सदा के लिए उत्साह नष्ट हो गया। दूसरी ओर नुकसान करने पर भी यदि पिता कहता है कि वेटा, कोई बात नही आज तूने यह सौदा किया तो वडी हिम्मत के साथ है। फिर भी यदि उसमे नुकसान हो गया, तो रज की कोई बात नही है। तू इसकी चिन्ता मत कर, क्योकि व्यापार मे नफा और नुकसान ये दोनो तो भाई-भाई हैं। अब की बार यदि नुकसान हुआ है, वह मैं भर दू गा। परन्तु धन्धे मे जो तूने कदम आगे बढाया है, वह पीछे मत हटाना। मारवाडी मे कहावत भी है कि 'जो गवाएगा, वह कमाएगा भी।' यदि पहली बार नुकसान लगते ही आपने उसका उत्साह नष्ट कर दिया, तो वह भविष्य मे क्या कमाएगा! भाई, व्यापार-धन्धा करते कभी हानि भी उठाते हैं, तो कभी लाभ भी प्राप्त करते हैं। यह काम है उत्साह बढाने का।

आपके पास कोई आदमी किसी कार्य को करने के लिए सलाह लेने को आया, तो आपका कर्त्तव्य है कि एक बार उसकी पूरी बात शान्ति से सुन लेवें। यदि आपको उसकी बात ठीक जचे, तो उसे उसको करने की सलाह देवे और उत्साह बढावे। सहसा उत्साह भग न करें। यदि आपको उसकी बात ठीक नही जचे, तो जो आपको मार्ग ठीक जचता हो, उसे बतावें और कहे कि भाई मेरी समझ मे यदि तू इस प्रकार से काम करेगा, तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी यदि तुम इस समय यह चाहते हो कि मैं तुम्हारी कुछ मदद करू ? तो यदि सामर्थ्य हो, तो अवश्य मदद करें। अन्यथा कहे कि भाईसाहब, अभी मैं ऐसी परिस्थिति मे नही हू कि आपकी कुछ सहायता कर सकू। किन्तु समय आने पर अवश्य ही सहायता करूगा। यदि आप उससे इस प्रकार सहानुभूति पूर्वक बात करेंगे, तो उसकी हिम्मत बढ जावेगी। हिम्मत बधाने पर मनुष्य मे उत्साह जागृत होता है और वह अपने सकल्प को कार्य रूप से परिणत करने मे समर्थ हो जाता है। पर यदि कोई व्यक्ति उत्साह बढाने के बजाय उत्साह भग कर देवे तो वह सदा के लिए ठडा हो जाता है।

कल्पना कीजिए—आप किसी गाव को जारहे हैं, अपने किसी साथी के साथ। कुछ दूर जाने पर वह साथी थककर आगे चलने के लिए लडखडाने लगता है और उसके पैर आगे नही बढते है। ऐसी दशा मे यदि आप कहते

हैं कि अरे भाई, क्यो हिम्मत हारते हो ? क्यो घवराते हो ? गाँव थोडा ही दूर है, अभी पहुचे जाते है, तो आपके इतना कहते ही उसे हिम्मत वध जाती है। दूसरी ओर उसके थक जाने पर उसके रुकते ही आपने कहा कि अरे, अभी तो तीन कोस चलना वाकी है और तू अभी से लडखडाने लगा है, तेरे पैरो मे क्या इतनी भी शक्ति नही रही, तो क्या गाव को पहुचेगा। इन शब्दो को सुनते ही उसका उत्साह भग हो जायगा। फिर उससे पैर एक कदम भी आगे नही वढेगे और वह वही बैठ जायगा। इसलिए भाइयो, किसी का भी कभी उत्साह भग मत करो। जहा तक वने दूसरो के उत्साह को वढाओ। उत्साह का सचार करने पर वह भी एक दिन महापुरुष वनकर आपके सामने आयेगा और आपके गुणो को गायेगा।

ससार के जितने भी वडे पुरुप हुए है, वे भी एक दिन स्कूल मे पढते थे। और हलकी स्थिति मे दूसरो से प्रोत्साहन पाकर वडे वने। एक पाठ आता है कि नेपोलियन वौनापार्ट एक गरीव मा का लडका था। उसके पास आगे वढने के लिए साधन नही थे। परन्तु उसके मित्र निरन्तर उसकी हिम्मत वढाते रहे। एक दिन वही नेपोलियन ऐसा वना कि सारे योरोप मे उसकी धाक जम गई। इसका एक मात्र कारण था उसका निजी उत्साह और मित्रो का उत्साह-सवर्धन। इसलिए भाइयो, आप लोगो को निरन्तर उत्साह और उमगो से अपने हृदय को भरते रहना चाहिए और दूसरो को वढावा देते रहना चाहिए।
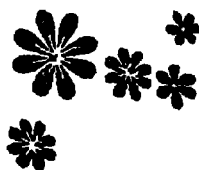
११
अपना स्वरूप पहचानिये !

एगो मे सासदो अप्पा णाणदसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा ॥

भगवान ने कहा है कि हे आत्मन्, तू ऐसा विचार कर—कि ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला मेरा आत्मा शाश्वत नित्य है,एक है अजर और अमर है। इसके अतिरिक्त जितने भी बाहिरी पदार्थ हैं, वे सब तुझ से भिन्न हैं और सयोग लक्षण वाले हैं, ऊपर से उनका सयोग हो रहा है, पर वे तेरे स्वरूप नही हैं। इसलिए तू अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूप को पहिचान। अब तू पराए आश्रय मे मत रह और स्व-आश्रय को सभाल। जो स्व वस्तु है, वह आत्मा की है और और जो पर वस्तु है, वह दूसरे की है। आगम मे स्वसमय और पर समय ये दो बातें बतलाई गई हैं। आचार्य कुन्दकुन्द इन का स्वरूप इस प्रकार कहते है—

जे पज्जयेसु णिरदा जीवा परसमयमि त्ति णिद्दिट्ठा।
आद सहावम्मि ठिदा ते सग समया मुणेदव्वा ॥

अर्थात् जो जीव नर-नारकादि पर्यायो मे निरत हैं—उन पर्यायो को ही आत्म द्रव्य मानते हैं, वे परसमय कहलाते है और जो आत्म-स्वरूप मे स्थित हैं, अर्थात् शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वरूप आत्मा को अपना स्वरूप मानते हैं, उन्हे स्वसमय जानना चाहिए।

आत्मा का स्वरूप ज्ञान-दर्शन अर्थात् जानना और देखना है। यह आत्मा-स्वरूप नित्य है, अखड है, अव्यय है, ध्रुव है और निश्चल है। आत्मा के इस ज्ञान-दर्शन स्वभाव का विनाश न भूतकाल मे कभी हुआ है, न वर्तमान काल मे कही हो रहा है और न भविष्य काल मे ही कभी विनाश होगा। आत्मा

का ज्ञान-दर्शन स्वभाव सदा से अनादि काल से चला आ रहा है और आगे अनन्त काल तक चला जावेगा। इसीलिए उसे अव्यय, ध्रुव और नित्य कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ससारी जीवो को सबोधन करते हुए कहते हैं कि हे जीव, तू ऐसा विचार कर कि—

> अहमिक्को खलु सुद्धो दंसण-णाणमइयो सदाऽरूवी।
> ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥

निश्चय नय से मैं एक हू। पर भावो से रहित शुद्ध चिन्मात्र हू, दर्शन-ज्ञानमय हू, सदा अरूपी हू। परमाणुमात्र भी अन्य कोई वस्तु मेरे मे नही है। मेरी आत्मा कृष्ण, नील, रक्तादि रूपो से रहित है, तिक्त,मधुर आदि रसो से भी रहित है, सुगन्ध-दुर्गन्ध से भी रहित है और स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्णादि स्पर्शों से भी रहित है। इसीलिए इसे अरूपी और अमूर्तिक कहा गया है। आत्मा का यह स्वरूप तीनो कालो मे सदा उसके साथ ही रहता है, चाहे वह एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय पर्याय मे हो चाहे, पचेन्द्रिय पर्याय मे हो। चाहे भव्य हो और चाहे वह अभव्य हो और चाहे वह मिथ्यात्वी हो, परतु उसका उक्त स्वभाव सदा ही उसके साथ रहेगा।

स्वरूप मे सब एक हैं

अब यहा पर आप कहेंगे कि महाराज, जब कोई मिथ्यात्वी है अथवा अभव्य है, तब उनका स्वरूप सम्यक्त्वी के समान ही कैसे माना जा सकता है ? तो भाई, तुम्हारी शका का समाधान यह है कि देखना जानना जो आत्मा का स्वरूप है, वह भव्य मे, अभव्य मे, और सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी मे सदा ही पाया जाता है। हा, कर्मों का आवरण जिसके जैसा तीव्र या मन्द होगा, उसके कारण उक्त जीवो के ज्ञान-दर्शन की मात्रा हीनाधिक पाई जावेगी। फिर भी नाभि के नीचे जो गोस्तनाकार आठ रुचक प्रदेश हैं, वे भव्य और अभव्य, तथा सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी के निरन्तर देदीप्यमान रहते हैं, उसके ऊपर अज्ञान और मोह का लेशमात्र भी लेप नही है। यदि उन रुचक प्रदेशो के ऊपर अज्ञान और मोह का आवरण आ जाय, तो 'जीवो अजीवोमविस्सइ' अर्थात् जीव फिर तो अजीव ही हो जायगा। परन्तु उन प्रदेशो पर न कभी कर्मों का परदा पडा है, न पड रहा है और न कभी पड़ेगा ही। उन रुचक प्रदेशो के विषय मे भगवान कहते हैं कि वे तो सदा 'णिच्चुग्घाड णिरावरणं' ही बने रहेगे। अर्थात् उन प्रकाशो का स्वरूप नित्य ही उद्घाटित (उघडा हुआ) और आवरण-रहित निरावरण ही रहेगा। जो इन रुचक प्रदेशो का स्वरूप है, वास्तव मे वही आत्मा का स्वरूप है।

पर, इन रुचक प्रदेशो के सिवाय शेष सर्व आत्म-प्रदेश कर्म लेप से लिप्त हैं। उन प्रदेशो पर कर्मों का गाढा लेप चढ रहा है, अत आत्मा का वह असली स्वरूप कर्मों से प्रच्छन्न हो रहा है, ढक रहा है, अत हम ससारी जीवो के अनन्त ज्ञान-दर्शन रूप जो आत्मा की स्वाभाविक शक्ति है, वह प्रकट नही हो पा रही है। जिस जीवके कर्मों का यह लेप क्षीण होता जाता है, उसके ज्ञान-दर्शन गुण का विकास उतना अधिक होता जाता है और जिन वीतराग सतो के यह कर्मो का आवरण सर्वथा दूर हो जाता है, वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिन भगवान कहलाने लगते हैं।

कर्मों का लेप

ससार मे जो अभव्य जीव है, उनकी आत्मा के ऊपर यह कर्मलेप अति सघन और गाढा है। जो जीव अभव्य तो नही हैं, किन्तु भव्य होते हुए भी मिथ्यात्वी हैं, उनके ऊपर यह कर्मलेप अभव्यो की अपेक्षा कम गाढ़ा है और जो भव्य सम्यक्त्वी जीव है, उनके ऊपर यह कर्मलेप और भी हलका है। सम्यक्त्वी जीवो का कर्मलेप सहज मे ही अल्प प्रयत्न से साफ हो जाता है। भव्य मिथ्यात्वी जीवो का कर्मलेप प्रबल पुरुषार्थ करने पर दूर होता है और अभव्य जीवो का कर्मलेप तो इतना सघन और चिक्कण होता है कि बडे से बडा पुरुषार्थ करने पर भी वह कभी दूर नही हो सकता है। कर्मों की ग्रन्थी को समझने के लिए तीन प्रकार की गाठो का उदाहरण दिया जा सकता है—रेशमी वस्त्र की गाठ, सूती वस्त्र की गाँठ और ऊनी वस्त्र की गाठ। रेशमी वस्त्र की गाठ यदि कस कर लगा दी जावे, तो वह खुल नही सकती, इतनी मजबूत और दुर्भेद्य होती है। इसी प्रकार अभव्य जीवो की कर्म-ग्रन्थि बहुत दृढ होती है। सूती वस्त्र की गाठ कस कर भी लगा दी जावे तो भी प्रयत्न करने से खुल जाती है। वह रेशमी वस्त्र की गाठ के समान दुर्भेद्य या अभेद्य नही होती है। भव्यमिथ्यात्वी जीवो की कर्म ग्रन्थि भी वस्त्र की गाठ के समान होती है, जो पुरुषार्थ करने पर खुल जाती है। ऊनी वस्त्र की गाठ कस कर लगाने पर भी ढीली ही रहती है और वह सहज मे ही खुल जाती है। इसी प्रकार सम्यक्त्वी जीवो की कर्म-ग्रन्थि अल्प पुरुषार्थ से ही खुल जाती है। अभव्य जीव की कर्म-ग्रन्थि इतनी दृढ होती है कि उसे कभी यह विचार ही उत्पन्न नही होता कि मैं भव्य हू, या अभव्य हू। भव्य और अभव्य की यही पहिचान है और वह प्रत्येक पुरुष को अपने आप हो जाती है।

भेदविज्ञान से सम्यक्त्व

जब आत्मा पर-द्रव्यो से, और इस बाहिरी जगत से मुख मोडकर अपने आपको जानने का प्रयत्न करता है और अन्तर्मुख होकर अपने परिणामो की छान-बीन करता है, तब उसके हृदय मे विवेक प्रकट होता है और वह बोधि के बीज सम्यक्त्व को प्राप्त करा देता है। जब तक आत्मा स्वरूप मे विचरण नही करता है, तब तक भेद विज्ञान नही होता है और भेद विज्ञान के प्रकट हुए बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नही हो सकती है। अरे, होवेगी भी कैसे ? जिसकी आँखो पर गहरी पट्टी बधी हुई है, यदि उनसे पूछा जाय कि बताओ हमारी कितनी अगुलिया खडी हैं, या हमारा मुख कैसा है ? तो क्या वह बता सकता है ? नही बता सकता। वह तो पट्टी के दूर होने पर ही बता सकेगा। अभव्य जीव के ऊपर अज्ञान और मोह की पट्टी बडी दृढ बधी हुई है, फिर प्रतिक्षण जो नये-नये कर्म बाध रहा है उससे वह और भी दृढ-तर होती जाती है। वह उत्तरोत्तर इतनी दुर्भेद्य होती जाती है कि कभी भी वह नही खुलेगी अर्थात् अभव्य जीव कभी भी कर्म बन्धन से नही छूट सकेगा। किन्तु भव्य की ये कर्मग्रन्थि पुरुषार्थ करने पर खुल जाती है। भव्यात्मा के लिए शास्त्रो मे यह प्रेरणा दी गई है कि हे भव्यात्मन्, अपने स्वभाव मे आ, और जो स्वस्वभाव के साधन हैं, उन्हें जुटा, जिससे कि तेरा कल्याण हो जाय।

सिंह बहुत बलवान प्राणी है, परन्तु जब वह पराधीन हो जाता है और अपने स्वरूप को भूल जाता है, उस समय उससे कुछ भी नही बनता है।

एक समय की बात है कि शाम का समय था और जब धूप का थोडा-सा चिल्का रह गया था, तब एक बुढिया पानी भरने के लिए गाँव के बाहिर जाने लगी। उसका पाच-सात वर्ष का एक छोटा पोता भी उसके पीछे आने लगा, प्राय बच्चो का यह स्वभाव होता है कि माँ-बाप यदि घर से बाहिर कही जावे, तो वे उनके पीछे चलने लगते हैं। फिर उनको आप कितना ही डराओ, धमकाओ और चाहे मारो पीटो भी पर वे पीछा नही छोडते हैं। उस बुढिया ने भी उसको बहुत कुछ डराया, धमकाया, परन्तु वह लडका नही माना और पीछे पीछे हो लिया। कुआ जरा दूर था और उसके चारो ओर सघन झाडियाँ थी। वह बुढिया झाडियो को लाघती हुई कुए पर गई और जब पानी भर कर लौटने को हुई, तब तक अधेरा हो चला था। बुढिया ने अपने पोते से कहा—जरा जल्दी चल। परन्तु बच्चो का स्वभाव होता है कि यदि मार्ग मे किसी चीज पर उनका दिल लग जाय, तो वे वही रम

जाते है। यदि धूल पर भी चित्त चला गया, तो वे वही पर खेलने लग जावेंगे। चलते हुए झाडी की डाली पत्ते ही तोडने लग जावेगे। बुढिया ने सोचा कि यह साथ तो आगया, पर अब घर चलने की जल्दी ही नही कर रहा है। यहा पर तो शेर-चीतो का डर है, यदि वह कही से आगया, तो क्या होगा। अत उसने लडके को डराने के लिए आवाज लगाई कि अरे, रात की फौज आने वाली है, जरा जल्दी चल। बुढिया ने तो अपने बच्चे को डराने के लिए यह कहा कि जिससे वह जल्दी जल्दी चलने लग जावे। सो बच्चा तो उसकी बात सुनकर डरके मारे भाग कर बुढिया के आगे चलने लगा। वही समीप की झाडियों मे कही पर एक शेर मस्ती मे पडा हुआ था। उसके कानो मे भी ये शब्द पडे कि रात की फौज आने वाली है। वह मन मे विचारने लगा कि मैंने वीर-बहादुरो की फौजें तो बहुत देखी है, परन्तु यह रात की फौज क्या बला है ? यह तो नाम आज ही सुना है। और जब यह बुढिया चिल्लाकर कह रही है, तब तो यह बडी सगीन मालूम होती है। इस विचार से शेर के सामने एक विकट समस्या आकर के खडी हो गई। वह सोचने लगा कि कही ऐसा न हो कि मै मारा जाऊँ ?

भाई, चाहे शेर हो, या बहादुर मनुष्य हो, या चाहे कोई बडे से बडा पहलवान भी क्यो न हो, परन्तु जब हृदय मे कमजोरी आजाती है, तब वह भयभीत हो जाता है। सो वह शेर भी डर गया और वही झाडी मे आखें बन्द करके चुपचाप पड गया। अब बुढिया तो चली गई और उसके थोडी देर के बाद ही लक्खी बनजारे की बालद आ गई। एक लाख बैल उसके साथ थे। जहा पर चारा पानी की सुविधा ठीक होती है, बनजारे वही पर डेरा डाल देते है, सो इसने उसी कुए के समीप जगल मे डेरा डाल दिया। और बैलो के ऊपर से गूनिए उतार ली। इस प्रकार लाख बैल की फौज वहा डेरा डालकर विश्राम करने लगी। शेर सोचने लगा कि अरे बाप रे, इतनी बडी फौज ! आज तो इससे जीवित बचना बहुत कठिन है। बनजारा और उसके साथी तो भोजन बनाकर और खा-पी करके सोगये। परन्तु डरके मारे शेर ज्यो का त्यो पडा रहा। जब तक रात के चार बजे, तब बनजारे ने अपने साथियो से कहा कि सब लोग तैयार हो जाओ, अब हम नगर मे चलकर माल बेचेंगे। बनजारे की आज्ञानुसार सब लोग तैयार हो गये। सभी ने अपने-अपने बैलो पर गूनिये लाद दी। इस पडाव उठने के समय भारी शोर-गुल हुआ। शेर ने यह सुनकर मन मे विचारा कि सचमुच रात की यह फौज बहुत बडी जबर्दस्त है। रात तो जैसे तैसे निकल गई, पर

अब मैं क्या करू और कहा जाऊँ ? आज तो जीवित वचना बहुत कठिन प्रतीत होता है। रात मे एक बैल अपनी खू टी से छूट कर कही इधर-उधर निकल गया था, तो एक गून बच गई। उसे ढूढने के लिए लोग इधर-बरर झाडियो मे गये। अभी अधेरा था। शेर झाडियो मे आँखें बन्द किये पडा हुआ था। लोगो ने उसे ही बैल समझा, तो उन्होने उस पर दो-चार लाठियाँ जमाई और ललकार कर कहा—यहाँ छुपकर आ बैठा है, उठ चल। शेर पर जो मार पडी तो वह घवडा गया और सोचने लगा कि आज तो जीवित वचना सभव नही है। जैसे ही वह उठा—लोग कान पकडकर खीच लाये और उस पर वह बची हुई गून लाद दी। अब वह भी दूसरे बैलो के समान सिर नीचा करके साथ मे चलने लगा। अभी भी थोडा-थोडा अधेरा था। इधर तो सब लोग बैलो के साथ उस शेर को भी हाकते हुए नगर की ओर जा रहे थे,। और उधर उस शेर की स्त्री शेरनी उसके लिए रात भर से चक्कर काट रही थी और उसे ढू ढ रही थी कि आज मेरा शेर कहा चला गया है ? रात भर ढू ढते-ढू ढते हैरान होगई। अब सूर्य का उदय हो गया था और उसकी किरणें चारो ओर प्रकाश फैला रही थी, तो शेरनी ने एक टेकरी पर चढकर सब ओर अपनी दृष्टि डाली तो देखा कि अरे मेरा पति तो इन बैलो के साथ पीठ पर वोझा लादे और नीची गर्दन किये नगर की ओर जा रहा है। वह सोचने लगी कि यह क्या बात है कि मेरा शेर इन बैलो के बीच मे लदा हुआ कैसे चल रहा है। आज तो गजब हो गया ? क्या इसका दिमाग खराब हो गया है, या कोई नशीली चीज कही पी आया है, जो अपने स्वरूप को बिलकुल ही भूल गया है। शेरनी टेकरी के ऊपर से गुर्रायी, गरजी और अपनी अपनी बोली मे आवाज दी कि ऐ शेर, अपनी आँखें खोल ! तू कहाँ और किसके साथ चला जा रहा है ? यह शेरनी की आवाज सुनकर और पहिचान कर भी शेर आखें बन्द किये हुए ही विचारने लगा कि आज तो यह क्या मुझे मरवाएगी ? अरे, रात की फौज तो बडी विकट है और यह चढती आ रही है। अभी तो डडे ही पडे हैं, अब आगे शेरनी की आवाज सुनकर तो यह मुझे मारे बिना नही रहेगे। अब जिन्दा बचना कठिन हैं। इतने मे शेरनी ने दूसरी बार आवाज लगाई कि अरे, तू करता क्या है ? तू अपने रूप को क्यो नही देखता ? क्यो आखें बन्द किये और नीची गर्दन किये इन बैलो के साथ लदा हुआ जा रहा है। दूसरी आवाज को सुनकर भी शेर चुपचाप लदा चला जा रहा है, यह देखकर शेरनी ने तीसरी बार पुन आवाज लगाई कि आता है, या नही ? नही तो मैं आती हू। शेर ने सोचा कि यह कहती है कि यदि तू नही आता है, तो

मैं आती हू, तो क्या मैं शेरनी से ज्यादा कमजोर हू ? अब मैं देखू तो सही, कि क्या मामला है ? यह विचार कर उसने पहिले तो जरा आँखें खोलकर तिरछी निगाह से देखा, तो उसे अपने चारो ओर बैल ही बैल दिखाई दिये। वह मन ही मन बडा लज्जित हुआ—अरे आज तो मैं बडा बेवकूफ बन गया हू ? क्या मेरी बुद्धि मारी गई है, जो मैं इन बैलो के साथ लदा हुआ चल रहा हू ? अब उसे अपने स्वरूप का भान होते ही उसने दहाड लगाई, उछाल ली और गू न को नीचे पटका। बनजारे के साथियो मे भगदड मच गई, और शेर छलागें मारता हुआ अपनी शेरनी के पास जा पहुचा। शेरनी अपने शेर को आया देखकर पहिले तो हसी, फिर कहने लगी, अरे वनराज ! आज कैसे चक्कर मे फस गये और अपना स्वरूप भूल गये। शेर बोला— क्या बताऊँ, आज की रात मैंने बडी मुश्किल से गुजारी है। जीवन मे ऐसा कभी अवसर नही आया, जब आज के समान मैं बेवकूफ बना होऊ और बैलो के समान गू न पीठ पर लादे फिरा होऊँ ? शाम को एक बुढिया ने डरा दिया कि रात की फौज आ रही है। मैने रात की फौज का नाम तक भी कभी पहिले नही सुना था, हाथी घोडे, रथो आदि की फौजे तो बहुत देखी थी, पर इस रात की फौज का यह अजनबी नाम आज ही पहिली बार ही सुनने मे आया, सो मैं डर गया कि यह कोई बहुत बडी बला होगी, तभी यह बुढिया किसी को जल्दी भागने के लिए कह रही है। बस, इस कारण मैं झाडी मे दुबका पडा रह गया और बनजारे के लोगो ने अभी रात के चौथे पहर मे आकर घेर लिया, मुझे डडो से पीटा, तो मै और भी डर गया। वे मेरे दोनो कान पकड कर खीच ले गये और मुझे लादकर सब के साथ हाँक ले गये। शेरनी बोली—अरे, जरा तो सोच-विचार करते कि मैं कोई लदौडा बैल या गधेडा थोडे ही हू, जो इस प्रकार लदा हुआ इन लदौडे बैलो के साथ लदा फिरूँ और मार खाऊँ ?

स्वरूप को पहचानो

भाइयो, जरा सोचिये और विचार कीजिये कि आप लोग भी तो शेर ही है, गधेडे तो नही है। आप कहेगे कि महाराज, हम गधेडे कैसे हैं। हम तो भ० महावीर के पुत्र है ! परन्तु भाई, गधेडा किसे कहते है ? जब आप महावीर के पुत्र हैं और शेर हैं, तब फिर आपके ऊपर ये गू निए कैसे लदी हुई है ? आपके ऊपर मोह, अज्ञान, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ आदि विभाव भावो की और कर्म पुद्गलो की असंख्य गोनिए लदी हुई है और आप अनादिकाल से बराबर लदे हुए चले आ रहे है और आज तक

भी आपकी आखें बन्द हैं, अभी तक भी नही खुली हैं। जैसे शेरनी ने अपनी ललकार लगाकर शेर को जागृत किया और कहा कि चेत, देख, अपने रूप को कि तू कौन है ? इसी प्रकार से हमारी भगवती जिनवाणी भी हमको ललकार कर कह रही है कि 'स बुज्झह किं न बुज्झह !' अरे, सिंह के स्वरूप-वाले ससारी प्राणियो, तुम लोग बोध को प्राप्त होओ, प्रतिबोध प्राप्त करो, और गधेडो के समान इन पर-भावो की गूनिए फेंक कर सिंह के समान भार-रहित होकर स्वतंत्र विचरण करो और आत्माराम के सच्चे आनन्द का लाभ लो। भगवती जिनवाणी की ललकार आप लोगो के कानो मे पडी है और पड रही है, परन्तु अज्ञान का भय हृदय मे ऐसा घुसा हुआ है कि उससे बाहिर निकलना आप लोगो को बडा कठिन प्रतीत हो रहा है। यदि उस शेर के समान आप लोगो की भी आँखें उघड जायें और आप एक बार भी अपने आपको पहिचान लें, अपने स्वरूप को देख लें, तो ये पाप की पोटें नीचे डालते देर नही लगेगी।

१२
स्वतन्त्रता का संदेश

भाइयो, आज पन्द्रह अगस्त का दिन है। यह क्या सूचना दे रहा है ? आप सबको यह क्या चुनौती दे रहा है ? इस पर क्या आप लोगो ने कुछ विचार किया है ? हमारा यह भारतवर्ष एक हजार वर्षों से पराधीनता की बेडियो मे जकडा हुआ था और विदेशियो के शासन से अनुशासित था। इसे जिस प्रकार उन्होने चाहा, उसी प्रकार से आप लोगो को नाचना पडा। और आपके पास जो अपार वैभव था, उसे भी वे सात समुद्र पार ले गये। परन्तु देश के स्वाभिमानी सपूतो ने एक करवट बदली,अपनी आखे खोली,और होश मे आकर देखा कि यह क्या हो रहा है ? उन लोगो को मर्मान्तिक पीडा हुई कि यह देश हमारा और हुकूमत औरो की हो ? यह हमसे कभी सहन नही हो सकता। इन मुट्ठी भर अंग्रेजो ने हमे हर प्रकार से लूटा, हमारे धर्म और सस्कृति का सत्यानाश किया, कला और कौशल को बर्बाद किया और उसके फलस्वरूप हम दिन पर दिन बर्बाद होते जा रहे हैं। अब हम लोगो से यह अन्याय सहा नही जायगा। हम इसका प्रतीकार करेंगे और अपने देश को गुलामी की बेडियो से मुक्त कराके स्वतन्त्र करेंगे। ऐसा विचार कर कुछ शिक्षित स्वाभिमानी और स्वदेश प्रेमी देश के दीवाने मैदान मे आये। आप लोगो को ज्ञात है कि उस गाधी की आधी मे क्या हुआ ?

"सत्याग्रह के लिए मचल गये सेनानी" ॥टेक॥
ऐश और आराम छोर दौर के मैदान आये,
तोफ टैंक भालो का भी भय नहीं मन लाए।
अत्याचारी जोस खाय दमन करन आये,
पैर नहीं हटे पीछें दूना जोस दिखलाए।
हस हस भये कुर्बान अमर कीनी कहानी ॥स० १॥

सत्य की विजय

गाधीजी का आह्वान होते ही सत्याग्रह के लिए हमारे भारत के वीर सेनानी शेर के समान दहाड कर मैदान मे आ गये। परन्तु उनका पजा रुका हुआ था, उनके पजों मे वेडिया पडी हुई थी और उन अत्याचारियो ने देश के इन सपूतो पर अत्याचार करने मे कोई कमी नही रखी थी। उन लोगो को जेलों मे भेजा गया, हाथो और पैरो मे वेडिया डाली गई और पीने-खाने को भी पूरा नही दिया गया। उन विदेशियो की वर्वरता और नृशसता ने कितने ही देशभक्तो को फासी पर लटका दिया, उनके शरीर के टुकडे तक करवा दिये और उनके खून को पानी के समान वहा दिया। परन्तु देश के वे सपूत तो भारत को आजाद कराने के लिए सिर पर कफन बाध करके घर से निकले थे, उन्होंने अपने कर्त्तव्य के पालन मे कोई कसर नही रखी और खुशी से हसते हुए वे फासी के तख्ते पर चढ गए। आज की बहिनें तो आप लोगो के दिमाग खराव कर रही हैं और नाना प्रकार के हाव-भाव और प्रलोभन दिखाकर के गाती हैं कि 'खेलन दो गनगौर, म्हाने खेलन दो गनगौर।' अरे भाई, कौन सी गनगौर खेल रही है? ककण लाओ, डोरा लाओ। वस, लाओ-लाओ के लिए ही रात-दिन गाने गाती है, परन्तु वे वीराङ्गनाएँ और देश की दीवानी नारिया जो पहिले की थी, वे ऐसे अश्लील और काम-वासना भरे गीतो को नही गाती थी। वे तो यह सगीत सुनाती थी—

जावा दो रण माय, भंवर म्हाने जावावो रण माय।
अजि म्हारो खून खसोला खाय ॥
आये दिन अन्याय करे शठ अब देख्यो ना जाय।
अजि म्हाने देवो सबक शोखाय ॥भं१॥
अवला कहे उनको वे ठोकर-मार गिरावो जाय,
अजि म्हातो डरदीनो वफनाय ॥भं२॥
हाथ हमारा देखो कमधज, चडीरूप अपनाय
अजि देवो म्लेच्छो मान गमाय ॥भं३॥

आज की नारिया तो फेशन-परस्ती और विपय वासना मे पागल हो रही हैं, जो मिट्टी की वनाई हुई गनगौर को पूजती फिरती हैं। यदि इनमें गुण हो, गरिमा हो, स्वाभिमान हो और देश का प्रेम हो तो क्या ये मिट्टी की गनगौर को पूजेंगी? नही पूजेंगी। किन्तु उक्त गुणो के कारण स्वय पूजी जावेंगी। आप लोगो की पूजा आपके गुणो के पीछे है। यदि गुण

है तो अवश्य पूजी जावेगी । और यदि गुण नही है, तो ससार मे कोई उनको पूजने के लिए तैयार नही है। अरे घी घाले तो आडे हाथ घाले । आप तो कहते हैं कि नही साहब, नही साहब ! और वह जबरन घी डालता है । यदि आप कहे कि 'घी घालो साब' ! तो मागने पर एक आधा टीपड़िया ही घालेगा ।

हाँ, तो उस सत्याग्रह के समय गाधीजी की फौज के वीरो को उनकी वीराङ्गनाए और वीर बहिनें आह्वान करती थी और अनेक तो स्वय भी उस सत्याग्रह के युद्ध मे कूदी थी । तब उनके वे वीर पति, भाई और सपूत हसते-हसते फासी के तख्तो पर चढ गए, शूलियो पर लटकवाये और शरीर की बोटिया तक कट गई, परन्तु मरतेदम तक उनका एक ही नारा रहा कि भारत हमारा है, हम छोड़ेंगे नही, इसको लेकर रहेंगे । उन लोगो ने अग्रेज सरकार को कह दिया कि तुम लोग इस देश पर अधिकार जमाने वाले कौन होते हो ? अन्त मे नतीजा यह हुआ कि—

"सत्य की नाव नरसिंह खेवे दुष्ट के लात बजरंग देवे ।"

सत्य की सदा विजय होती है । उन देशभक्तो को अपनी कुर्बानी देते दश-बीस वर्ष नही, किन्तु पूरे सत्तर वर्ष बीत गए, तब उन अग्रेजो के हृदय पर उन मातृ भक्त और देश के दीवानो के बलिदानो की ज्वाला का असर पडा । और उन्होने कहा कि अब हम सत्ता देने को तैयार हैं । परन्तु उन्होंने यह सत्ता हसते हुए नही, किन्तु रोते हुए मजबूरी मे आकर दी । पहिले अन्तरिम सरकार कायम की । तत्पश्चात अन्य कितने ही दाव-पेच खेले गये, कितने ही नाज नखरे दिखाये गये । परन्तु हमारे देश के नौजवान वीर थे, सो वे उनके चक्करमे नही आये और अपनी माग को पूरा किया । आज उसी स्वतत्रता को पूरा करने का दिन है । स्वतत्र भारत की आज यह तेईसवी वर्षगाठ है, अभी तेईस वर्ष का समय गुजरा है । परन्तु हम देखते हैं कि तेईस वर्ष के पहिले हम हिन्दुओ का, हिन्दुस्तानियो का जो जोश था, भारतियो के खून मे जो उत्साह था वह आज दिखाई नही पडता है । पहिले जितना जोश था, जितनी नि स्वार्थ भावना और तपस्या थी, उससे कई गुनी स्वार्थ-साधने की दुर्भावना आज भारतीयो मे घुस गई है । जिन लोगो ने कुर्बानिए दी थीं, अपना खून बहाया था, डंडे खाये थे, बेडिया और हथकडिया पहिनी थी, उन बेचारे देश के सपूतो को तो भर-पेट रोटिया भी नही मिल रही है, पहरने को पूरे कपडे भी नही मिल रहे हैं और बुरी स्थिति मे अपना जीवन गुजार रहे हैं । इसके विपरीत जिन लोगो ने गाधी

टोपियो को पैरो से कुचला, देश के तिरगे झडे को आग लगाई और गाधी को वा उनके सेनानियो को मारा, पीटा, जेलो मे वन्द किया और उन्हे भर-पूर यत्रणाएँ पहुचाई, वे अवसरवादी लोग आज रग-विरगी कुर्सियो पर विराज रहे हैं। जो हुकूमत वनाई गई, वह असली नही, नकली है, उसमे प्राय सभी नकाव-पोश भरे हुए हैं। यदि हुकूमत मे असली लोग होते, तो विचारते कि हम देश की स्वतत्रता को कायम रखें। परन्तु आज के शासक दोनो ओर हैं वे पाकिस्तान, चीन, रूस, और अमेरिका से हाथ मिलाते हैं और कहते हैं कि सब हमारे दोस्त है। इस दोस्ती मे पहल करने की क्या आवश्यकता थी ? दोस्ती के लिए हाथ आगे वढाना तो तब उचित था जब अन्य देशवाले हिन्दुस्तान से दोस्ती करने का हाथ आगे बढाते। हिन्दुस्तान को आगे आने से क्या लाभ हुआ है ? परन्तु ये लोग स्वार्थी है, देश के प्रति वफादार नही हैं, इसलिए वे देश को चकमा दे रहे हैं, और उसे गलत रास्ते पर ले जा रहे है।

आप लोगो मे से यदि कोई कहे कि महाराज, आप उन ही उनको दोष दे रहे है, तो भाइयो, आप लोग भी नही बच सकते हैं। आप सब भी उनका ही साथ दे रहे हैं। और उन ही रगे हुए सियारो का समर्थन कर रहे हैं। मुख से तो आप लोग कहते हैं कि भ्रष्टाचार बढ गया है, परन्तु यह भ्रष्टाचार करने वाला कौन है ? आप लोग कहते हैं कि महाराज साव, जोधपुर की गलियो मे इतनी गन्दगी हो गई है और हमारी नगर पालिका का कुछ भी इन्तजाम नही है। परन्तु मैं पूछता हू आप लोगो से कि गलियो को गन्दा कौन करता है ? आप लोगो के ही तो वच्चे करते है। अब क्या हरिजन चौवीस घण्टे ही तुम्हारे दरवाजो पर सफाई के लिए खडा रहेगा ? तुम लोगो ने तो सडक के दोनो ओर की नालियो मे टट्टिया बना रखी हैं। फिर इन छोटी-छोटी गलियो मे दुर्गन्ध नही आयगी, तो क्या आयगा ? करते तो तुम लोग हो और नगरपालिका को गालियाँ देते हो ? यदि कोई सुधरा हुआ शासक आया और जरा सख्ती से इन्तजाम करने लगा, तो हमारे स्वार्थी भाई जल्दी से उसका विस्तर गोल कराने की कोशिश करते हैं, क्योकि आप लोग सत्य के पुजारी नही हैं, किन्तु अन्याय के पुजारी हैं। इसीलिए तो इन अन्यायियो की बन आई है। और मनमाने रूप से अपनी जेवे भर रहे हैं। इसके विपरीत जो सीधे-सादे और न्याय पर चलने वाले और न्याय से काम करने वाले है, वे वेचारे भूखे मर रहे हैं।

कुर्बानी करनी होगी

यह पन्द्रह अगस्त का दिन हम लोगो को पुराने इतिहास की याद

दिलाता है कि भारत के भारतीय नागरिक खुशामदी नही होते थे, भारत के वीर कायर नही होते थे, और भारत के लोग अन्यायी शासक का साथ देने वाले नही होते थे। वे तो स्वातन्त्र्य-प्रेमी, स्वतन्त्रता मे रमण करने वाले और स्वतन्त्रता के सिपाही थे। आप लोगो को स्वतन्त्रता तो मिल गई, परन्तु यह किसने दिलाई ? यह भारत के उन वीर सपूतो ने दिलाई है। पर आप लोगो ने उन सपूतो को कैसे सभाला ? क्या उनको मालाए पहिनाई ? या गालिया दी, या गोलिया मारी ! गाँधीजी को गोली से मार डाला। इससे अधिक दु ख और लज्जा की क्या बात हो सकती है कि जिस महापुरुष ने अपने अहिंसक आन्दोलन से भारत को गुलामी की जजीरो से मुक्त कराया, जिसने आप लोगो को आजाद कराया और स्वतन्त्रता दिलवाई, उसी को आप मे से किसी ने गोली से मार दिया। बतलाओ अब आप लोग माला पहिराने के लायक हैं, या गालियाँ खाने के लायक हैं ? आप तो अपने जैसा ही शासक वर्ग चाहते हैं, कि जो हमारी हा मे हा मिलाता रहे, और जो हम कहे उसको मजूर कर दे। शासक को अपना बनाने मे क्या जोर पडता है ? घर मे लाये, टी-पार्टी दी और जेब मे नोट डाल दिये। अब बन गये वे आपके। फिर तो उनसे कुछ भी काम करा लो। एक ओर यह हाल है और दूसरी ओर आप लोग ही बोल रहे हैं कि देश का सत्यानाश हो ! तो भाई, कल होता हो, तो आज हो जाय, आप लोगो को इसकी क्या चिन्ता है। चिन्ता है तो एक मात्र अपने स्वार्थ-साधन की। फिर दुनिया चाहे मरे और चाहे जीवे, इससे आपको क्या मतलब है। देश के किसी भाग मे यदि सूखे के, या बाढो के समाचार मिले और पता चला कि फसल नष्ट हो गई है, तो हजारो-लाखो अनाज की बोरियो को तहखानो मे छिपा दिया जाता है। कही कपडा मिलो मे हडताल के समाचार मिले, तो लाखो कपडे की गाठे बाजार से गायब कर दी जाती है और नमक-तेल को छिपा-छिपाकर और खूब ऊँचे दामो पर बेच कर गरीब लोगो का खून चूसा जाता है। क्या कभी सोचा आप लोगो ने कि आप लोगो की इस स्वार्थ साधन की और धन बटोरने की प्रवृत्ति से कितने गरीब दाने-दाने को मुहताज हो जाते हैं, कपडो के अभाव मे बेचारो के दूध मुहे बच्चे सर्दी से ठिठुर-ठिठुर कर मर जाते हैं। पर व्यापारियो को इसकी क्या चिन्ता ? आज स्वतन्त्र भारत को स्वच्छन्दता के बीच मे डाल दिया गया है। यह स्वतन्त्रता नही, किन्तु परतन्त्रता ही है कि जहाँ पर-पुद्गलो के साथ हमारा सम्बन्ध हो, वहा स्वतन्त्रता कैसे मानी जा सकती है ? यह तो तानाशाही और नादिरशाही है। हमे ठडे दिमाग से शान्ति के साथ विचार करना चाहिए कि हमारा और हमारे देश

का उत्थान किस काम मे है ? उसके लिए हमे कितनी कुर्बानी देनी है और कितना स्वार्थ त्याग करना है ? इन सब बातो के ऊपर ध्यान देकर और एक सुनियोजित मिशन को लेकर आगे बढें तो हमे अवश्य सफलता मिल सकती है। आज पन्द्रह अगस्त को एकत्रित होकर के झण्डा फहरा दिया, और यदि कोई देने वाला मिल गया, तो बच्चो को मिठाई बटवा दी, अथवा थोडा बहुत पारितोषक दे दिया, तो इससे क्या होना-जाना है ? आखिर कुछ विचार तो करना चाहिए कि आज के दिन हमारा क्या कर्तव्य है ? आज के दिन हमे भारतीय तिरगे झडे के सामने प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि आज के बाद से हम भ्रष्टाचार नही करेंगे, और न भ्रष्टाचारियो का साथ देंगे। हम किसी को रिश्वत देकर घूसखोरी को बढावा नही देंगे और न किसी भी अनुचित उपाय से हम अपनी स्वार्थ-साधना ही करेंगे। हम अपने न्याय मार्ग पर ही चलेंगे और अपने देशवासियो के सच्चे सेवक के रूप मे ही उनकी सेवा करेंगे। जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति अहिंसा के बल पर की और गाधीजी ने यह अरमान किया कि हमने खून की एक बूद बहाये बिना ही स्वतन्त्रता ली है और अग्रेजो को भारत से हस्तगत किया है, आज वही अहिंसा हिंसा मे ढल गई। ढल गई !! जहा देखो,वही हिंसा को बढावा दिया जा रहा है, हिंसा का ही जोरो से प्रचार किया जा रहा है। आज करोडो अरबो रुपये कुकुक्ट-पालन में और मत्स्योत्पादन मे खर्च किये जा रहे है, बडे बडे बूचडखाने (स्लाटर हाउस) और हिंसा के केन्द्र खोले जा रहे है और इस प्रकार चारो ओर हिंसा का बोलबाला हो रहा हैं और भारत सरकार इसी का प्रचार कर रही है। अब तो अहिंसा नाम मात्र को कहने भर के लिए रह गई है। जो सच्चे अहिंसावादी थे, वे भी हिंसावादी शासकों के लिहाज मे आकर हिंसावादी बनते जा रहे हैं और उनके दिमाग भी लडखडा रहे है। बिरले ही व्यक्ति अपने सिद्धान्त पर खडे रह पा रहे हैं, अन्यथा उन्हें धक्का देने वाले बहुत हैं। उन्हे त्याग, प्रत्याख्यान और धार्मिक सिद्धान्त की आवश्यकता नही है। उनको तो केवल खाना-पीना, मौज उडाना, शरीर को मोटा बनाना और घर मे रकम जमा करना ही अच्छा लगता है। फिर भले ही दुनियां बर्बाद हो जाय और लोगो का सब कुछ उजड जाय, इसकी उन लोगो को कोई परवाह नही है। उनको परवाह है तो केवल अपनी उन्नति की, और लोगो से वाह-वाही लूटने की। यही कारण है कि अब पन्द्रह अगस्त मे कोई रौनक नही है। और लोगो के हृदय मे कोई उत्साह नहीं है।

भाइयो, आज का यह दिन हमे दो बातें बता रहा है। पहिली यह कि देश को पूर्ण स्वतन्त्र बनाओ, जहाँ पर कि अहिंसा और सत्य का बोल-बाला हो, जहा किसी की हजार रुपये की भी चीज या नोटो की गड्डी सडक पर पडी हो, तो भी कोई हाथ नही लगाये और जिसकी गिरी हो, वही वापिस आकर उठावे। किसी को अपने घरो मे ताला लगाने की जरूरत नही रहे, खुले दरवाजे रखकर सो जाने पर भी कोई लूटने वाला और माल चुराने वाला नही हो। सब अपने अपने कार्यों मे व्यस्त और मस्त रहने वाले हो। जब ऐसी व्यवस्था हमारे सामने आवेगी, तब हम कह सकेंगे कि स्वराज्य मिला है। लोग अंग्रेजो के चले जाने पर सोच रहे थे कि राम-राज्य आगया। अरे भोले भाइयो, राम राज्य को तो ग्यारह लाख साढे छियासी हजार वर्ष हो गये। अब तो उसका स्वप्न भी आना कठिन है। अब राम-राज्य नही है, अब राम-राज्य कहाँ है। अब तो राक्षसी राज्य दिखाई दे रहा है। यदि राम-राज्य होता, तो धर्म के प्रति लोगो के हृदयो मे श्रद्धा होती, और एक का दूसरे भाई से प्रेम होता। आज तो यह देखने मे आता है कि एक स्थान पर एक विभाग मे जो काम कर रहा है, तो उसकी नियत और नीति यही है कि इसको किसी प्रकार यहाँ से हटाया जाय और इसका स्थान मुझे मिल जाय। आज सबको आपा-धापी की पडी है। आप लोग देख रहे हैं कि यदि कोई सस्था खडी होती है, तो एक मन्त्री बन गया, दूसरा अध्यक्ष बन गया और तीसरा कोषाध्यक्ष। अब ये तीनो मिलकर के उस सस्था के स्वामी बन जाते हैं और जिन्होने उस सस्था के निर्माण मे पूरा सहयोग और सम्पत्ति दी है, जिन लोगो ने उन्हे प्रधान पदो पर बैठाया है, उन ही लोगो को वे धत्ता बता देते है, उनके द्वारा किसी बातके पूछे जाने पर आखें दिखा कर कहते हैं कि तुम पूछने वाले कौन होते हो ? तुम्हे बोलने का अधिकार नही है। इन लोगो के कोई पूछे कि क्यो साहब, कहिये कि यह अधिकार और पद आपको किसने दिया है ? भाई, न्यात मे, जाति मे, सभा-सोसायटी मे तो बोलने का सबको अधिकार है, प्रत्येक व्यक्ति बोल सकता है, सुझाव दे सकता है, और पदाधिकारियो के अनुचित कार्यों की टीका-टिप्पणी कर सकता है। हर कोई हर किसी व्यक्ति को बोलने के लिए प्रेरित और प्रोत्सा हित कर सकता है। परन्तु आज तो हवा ही वह बह रही है कि जिसके हाथ मे लाठी है, उसके ही हाथ मे भैस है। न कोई किसी की सुनता है और न किसी को सुनाता है। बस, विधान, विधान चिल्लाते रहते है। जब राजाओ की ओर हम देखते हैं, तब ज्ञात होता है कि उन लोगो ने बडा भारी त्याग किया है। परन्तु आज उनके साथ क्या हो रहा है ? आज उनके विशेष

अधिकार समाप्त किये जा रहे हैं और प्रीविपर्स खत्म किये जा रहे है। अरे, जिन्होने करोडो की सम्पत्ति दी हैं, उनके साथ ऐसा अन्याय क्यो कर रहे हो। यदि राजे-महाराजे विगड वैठते, तो उनका राज्य रहता, या नही रहता, किन्तु लाखो व्यक्तियो की खून-खरावी तो होती ही, खून की नदियाँ वहती दिखती। उनके साथ यदि एक व्यक्ति भी वचन-वद्ध हो गया है, तो उसकी निभानी चाहिए थी। परन्तु आज तो सारे के सारे विधायक और ससद सदस्य उनको उलटने के लिए ही तैयार हो गये हैं। वास्तव मे हमारा सविधान ऐसे लोगो ने ही विगाडा है। जव तक हमारे भीतर सव के साथ सहानुभूति और प्रेम की बुद्धि जाग्रत नही होगी, तव तक हम कुछ भी भला कार्य नही कर सकेगे। जिसके पास जो चीज आगई है, वह दूसरे के हक को उसे देना नही चाहता है और उसके विरोध मे खडे होते हैं, तो न तो वे लोग ही काम कर पाते हैं और न ये लोग ही काम कर सकते है।

राम राज्य कव आयेगा!

आज ग्रामो मे पचायत राज्य को आये हुए पच्चीस वर्ष हो गये हैं। पचायत का राज्य तो होगया, मगर पचायत वनने पर भी हम क्या कर सके हैं? कितना विकास और ग्रामोद्धार किया है, सो शान्ति से वैठकर सोचो। ग्राम-ग्राम मे दलवन्दी खडी हो गई है, और प्रत्येक दल दूसरे को हटाने और गिराने के लिए ही प्रयत्नशील दिखाई दे रहा है। और इसी मे लगे रहने से ग्राम-सुधार की सारी योजनाए यो ही पडी रह जाती हैं। जव वडे वडे ही लड रहे हैं, तव उनके पीछे सारी प्रजा का नाश हो रहा है। सर्व जनता उन लोगो के द्वन्द्व युद्ध मे पिसी जा रही है। उसकी आवाज का सुनने वाला कोई नही है। यदि हम ग्राम-सुधार चाहते हैं और राम-राज्य देखना चाहते हैं, तो जनता को भी भ्रष्टाचार का साथ नही देना चाहिए। जो देश के सच्चे सेवक है और देश की सेवा करना चाहते है, वे यदि कमर कस कर तैयार हो जाय, तो हमारे देश का यह सारा कूडा-कचरा दूर हो जायें। देखो, अभी वरसात जोरो से पडी, तो शहर का कूडा-कचरा वहा, या नही? यदि कोई घडे उडेल कर साफ करना चाहता, तो क्या यह सभव था? मेघो का काम घडो से नही हो सकता है। मेघ का काम तो मेघ से ही होगा। सारी जनता मिलकर जो काम कर सकती है, उसे कुछ इने गिने व्यक्ति नही कर सकते हैं। समूह मे ही सामूहिक शक्ति होती है। हमारा एक न्याय-निष्ठ केन्द्र हो, उसमे नीति हो, ज्योति हो, व्रत हो, धर्म पर श्रद्धा

हो और इन गुणो से युक्त पुरुष ही यदि उसकी कुर्सियो पर बैठ जायें, तो आज जितने वर्ष भारत को स्वतन्त्र हुए बीते है, उतने घटो मे ही भारत का उद्धार हो सकता है। मेरे-तेरे मे लगे व्यक्तियो से भारत का क्या उद्धार हो सकता है ?

काशी के महाराजा की महारानी एक बार अपनी दासियो को साथ लेकर गगा मे स्नान करने के लिए गई। उसने स्नान किया। स्नान करने के बाद उसे सर्दी लगी तो दासी से कहा कि कही से आग ढूढकर ला। उसने कहा—अभी लाती हू। वह घाट के ऊपर गई। किसी गरीब की टूटी-फूटी झोपडी वहाँ खडी थी, तो उसने उसमे आग लगा दी और आकर कहा—महारानी साब, आग तैयार है, पधारो। वे तो थोडी देर आग ताप कर अपने महलो मे चली गई, पर दासी आग बुझाना भूल गई। इतने मे वायु का झोका जो आया, तो पास मे बनी दूसरी झोपडियो मे आग लग गई और थोडी ही देर मे सारी झोपडियाँ आग की ज्वाला मे जल कर भस्म हो गई। उनमे रहने वाले बेचारे सैकडो गरीब बे-घर-बार के हो गये। उन्होंने रोना-धोना शुरू किया और रोते चिल्लाते महाराज के राजमहल पहुचे और फरियाद की कि महाराज हमारी झोपडिया जला दी गई है और हमे बे-घर-बार का कर दिया गया है, हम सब तरह से तबाह हो गये हैं। महाराज ! हमारा न्याय होना चाहिए। महाराज ने पूछा कि तुम्हारी झोपडिया किसने जलाई हैं, तो वे लोग बोले अन्नदाता, कैसे कहे ? हमे कहते हुए सकोच हो रहा है। महाराज ने कहा—नही, नही, सकोच छोडकर साफ-साफ बताओ कि किसने तुम लोगो की झोपडियो मे आग लगाई है, मैं बराबर उसका न्याय करूगा। लोगो ने कहा—महाराज, महारानी जी ने हमारी झोपडियाँ जला दी हैं। यह सुनते ही महाराज ने कहा—यह क्या ? महारानी हो, चाहे फौजी अफसर हो, मन्त्री हो, अथवा कोई भी क्यो न हो ? परन्तु वह जनता के माल का विनाश करने के लिए नही है। जो लोग अपनी फरियाद लेकर आये थे, उनके साथ सौ-डेढ सौ अन्य लोग भी आये थे यह देखने के लिए कि देखें—आज महाराज क्या न्याय करते है ? आज महाराज के जीवन मे एक बडी भारी परीक्षा का समय आया था। परन्तु वर्तमान के समान पूर्व समय के लोग घेराव नही करते थे। आज आप लोग देखते है लडना तो है सरकार से, परन्तु वे रेल की पटरियें उखाडते हैं, जिससे कि हजारो आदमी जान से हाथ धो बैठते हैं। स्थान-स्थान पर आज के लोग देश की सम्पत्ति को जलाकर नष्ट कर देते है, तार और टेलीफोन के खम्मे उखाडते

हैं और आफिसो मे जाकर वहा के कागजात जलाते है, जिससे कि जनता को भारी परेशानी का अनुभव करना पडता है। फैक्टरियो के मालिको का घेराव करके उनका खाना-पीना और टट्टी-पेशाब करना भी रोक देते हैं। ये सब काम देश के वफादार नागरिको के लिए शोभा-जनक नही हैं, क्योकि यह सब पाप है, हिंसा के कार्य है।

हा, तो मैं कह रहा था कि काशी-नरेश के सामने जो लोग फरियाद करने गए थे, उन्होने अपना दुःख बडी सभ्यता और विनय के साथ निवेदन किया। महाराज ने भी देखा कि आज सारे नगर के मुखिया लोग सरदार भी आए हैं और सभी एक स्वर से कह रहे हैं कि महाराज, अब आपके राज्य मे हम लोगो का रहना नही हो सकता है। जहा तक न्याय का बोल-बाला होता है, वही तक जनता टिक सकती है और जहा अन्याय की बौछार होने लगे, वहा पर कोई कैसे रह सकता है। महाराज ने पूछा—भाइयो, कैसा अन्याय हुआ है। तब उन लोगो ने भी फरियाद करने वालो की बात को दुहराया कि आज महारानी साहब ने बेचारे गरीब लोगो की झोपडिया जला दी है। यह सुनते ही महाराज ने पूछा—क्या झोपडिया महारानी ने जलाई हैं? नागरिक लोगो ने कहा नही महाराज, उन्होने तो नही जलाई, किन्तु जलाने का हुक्म दिया था। अरे, हाका होता है तो बडो का होता है, बदनामी होती है तो बडो की ही होती है और प्रशसा होती है तो बडो की होती है। महाराज ने कहा—अच्छा, बैठो, मैं अभी इसका निर्णय करके न्याय करता हू। महाराज ने उसी समय दरवान से कहा—जाकर महारानी से कहो कि आपको महाराज साहब राजदरबार मे बुला रहे हैं। दरबार ने जाकर महारानी से कहा कि महाराज साहब राज-दरबार मे आपको बुला रहे है। महारानी चौक कर बोली —क्या मुझे राज-दरबार मे बुलाया है? दरवान ने कहा—हा महाराज का यही हुक्म है। महारानी महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए राज-दरबार मे पहुची। महाराज ने महारानी को आया देखकर रोष से कहा—हटा दो दासियो को और पर्दे को। फिर हमारे सामने आकर खडी हो ओ। आज्ञा पाते ही दासियो को हटा कर और पर्दे को दूर कर महारानी महाराज के सामने आकर खडी हो गई और पूछा—कहिये महाराज, क्या हुक्म है? महाराज ने पूछा—क्या आज तुम गगा मे स्नान करने को गई थी? महारानी बोली—हा महाराज! गई थी। महाराज ने जरा तेज होकर पूछा—तुम्हे क्या अधिकार था कि किनारे पर रहने वाले लोगो की झोपडियो को जला दिया? महारानी बोली—नही महाराज, मैंने तो वहा एक भी झोपडी को नही जलाया। महाराज

ने पूछा—तो फिर किसने झोपडियो को जलाया ? महारानी बोली—महाराज, मैंने तो दासी से इतना ही कहा था कि मुझे सर्दी लग रही है, सो आग लाओ। अच्छा, तो उस दासी ने क्या किया ? महारानी बोली—मुझे इसका कुछ पता नही है। महाराज ने दासी को बुलवाया और उससे पूछा। उसने कहा—महाराज, मुझे तो महारानी साहब ने कहा था और मैंने एक टूटी-फूटी झोपडी मे आग लगादी। परन्तु मैंने सारी झोपडियो मे आग नही लगाई है। तब लोगो ने कहा—महाराज, इसने तो एक मे ही आग लगाई, परन्तु आते समय इसने उसे बुझाया नही, सो हवा से सब मे आग लग गई। इसलिए कसूर तो इसका है, न कि महारानी साहबा का। दासी ने कहा—महाराज, मेरा क्या कसूर है ? मुझे तो महारानी साहब ने आज्ञा दी थी, सो मैंने आग लगाई। दासी की बात सुनकर महाराजने कहा—सारा अपराध महारानी साब का है, इन्होने ही गरीबो की झोपडिया जलवाई हैं। अब क्या करना चाहिए। महारानी बोली—महाराज, राज के खजाने से रुपया दिलाकर के उनकी झोपडिया वापिस बनवादी जावें। महाराज उत्तेजित होकर बोले—खजाने मे तेरे या मेरे बाप का क्या है ? यह तो जनता का खजाना है। यह सुनकर महारानी ने कहा—अच्छा, जो मेरे पास है, उसे मैं देती हू, उससे बनवा दी जावें।महाराज ने कहा—महारानी जी, मैंने वह सब खजाने से लिया और तुम्हें दिया है। अत वह सब भी जनता का ही पैसा है। अन्यथा बता—तू कहाँ से लाई है ? महाराज की यह बात सुनकर महारानी ने अपना शिर नीचे की ओर कर लिया और बोली—कहिए महाराज, 'तो अब आपकी क्या आज्ञा है ? तब महाराज ने कहा—बस, तुम्हारे लिए यही आज्ञा है कि जगल मे जाओ, लकडिया काटो, नगर मे वेचो, अपना पेट भरो और इसके बाद जो रकम बचे, उससे इन गरीबो की झोपडिया बनवा कर उन्हे दो। जब तक झोपडिया नही बन जाती है, तब तक तुम्हे महल मे आने का अधिकार नही है। तब तक तुम्हारा महारानी पद भी तुमसे छीना जाता है और तब तक हमारा तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध भी नही समझा जाये।

भाइयो, इसको न्याय कहते है। आज क्या हालत है न्याय की। आज यदि किसी मिनिस्टर या आफीसर का बेटा, भतीजा या कोई सम्बन्धी किसी अपराध मे पकडा जाता है और उसकी रिपोर्ट पुलिस मे की जाती है, तो क्या उसकी सुनवाई होती है ? आपको ज्ञात ही होगा कि जोधपुर मे पहले यह कानून था कि रात मे बिना बत्ती के और बिना घटी के कोई साइकिल

चलाता पकडा जाता, तो उसका चालान किया जाता था और न्यायालय से उसे सजा या जुर्माना होता था। एक वार जव एक मिनिस्टर साहव का लडका ही इसी अपराध से पकडा गया, तो तव से वह सारा कानून रद्द कर दिया गया। अव अन्धेरे मे चाहे कोई मरे, या घायल हो जावे, तो कुछ भी सुनवाई नही है। अपने लडके को वचाने के लिए कानून ही हटवा दिया। तो क्या यह कोई न्याय है ? यह तो केवल स्वार्थ सिद्धि है। काशी-नरेश न्यायी थे, तो महारानी भी आज्ञा पालन करने वाली थी। महाराज का हुक्म सुनते ही वह वोली—आपका आदेश मुझे स्वीकार है राजदरवार से वह राजमहल मे गई, अपने सव वस्त्राभूपण उतार कर रख दिए और सादी मोटी धोती पहिन कर जगल को चल दी। यह देख सारी जनता मे तहलका मच गया। जो लोग फरियाद लेकर आये थे और न्याय के लिए पुकार कर रहे थे, वे लोग ही कहने लगे—नही महाराज, इतना कठोर दण्ड देना उचित नही है। महाराज ने डाटकर लोगो से कहा—वस चुप रहो। इस विपय मे वोलने का आप लोगो को कोई अधिकार नही है। आप लोगो ने ही मुझे राजा वनाया और न्याय करने का अधिकारी वनाया है। मैंने जो उचित समझा, वह निर्णय दे दिया। अव इसे पलटा नही जा सकता है। सव लोग महाराज का यह कठोर निर्णय सुनकर वहुत दुखी हुए। मगर राजा के सामने किसकी चल सकती है।

अव सादे कपडे पहिन कर रानी राजमहल से निकली और जगल मे जाने लगी, तो वात सारे नगर मे फैल गई कि महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए महारानी जगल मे जा रही है, लकडी काटकर और उन्हें वेच कर अपना पेट भरेंगी, उससे जो कुछ वचेगा, उसे सचित करके जव झोप-डियें वनवा देगी, तव राजमहल मे लौट सकेंगी। रानी जगल मे जाकर एक छोटी-सी पर्ण कुटी वनाकर वहा रहने लगी। वहा न कोई पहरेदार है और न कोई सार-सभाल करने वाला है। वह अव अपना सव काम स्वय ही अपने हाथ से करने लगी और अकेली ही उस निर्जन वन मे रहने लगी। इस वात का सारे नगर की स्त्रियो पर वहुत अच्छा प्रभाव पडा। वे आपस मे कहने लगी, देखो-पति की आज्ञा का पालना इसे कहते हैं। जव रानी जगल को जा रही थी, तव नगर की हजारो नारिया उनके सामने आई और कहने लगी—

'वाई ए, कित चाल्या किण कारणे ? वडो हुकम '

नगर की सव स्त्रियो ने मिलकर रानी जी को घेर लिया और कहने

लगी कि आपको लाख-लाख बार धन्यवाद है, आपने स्त्री जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया, उनका गौरव बढाया और पतिव्रता स्त्री कैसी होती है, इसका ज्वलन्त उदाहरण आपने हम लोगो के सामने रखा है। आपकी इस पतिभक्ति और न्याय पालन करने की तत्परता को देखकर हम लोग आपके सामने नतमस्तक है।

भाइयो, आज क्या रग-ढग हैं। क्या आज पत्नी अपने पति की आज्ञा का पालन करती है। क्या आज उसे पति की कुछ परवाह है ? उसे तो बस, अपने सुख की ही परवाह है और फिक्र है अपने साज-शृ गार की। उसे अब अपने घर-बार की कुछ भी चिन्ता नही है। अरे, देखने पर तो उन्हे विचार आना चाहिए कि हमारे पिताजी क्या करते हैं, माता जी क्या करती है और घर वाले क्या करते है। उनके देखा-देखी तो कम से कम कुछ भला काम तो करो। परन्तु आजकी ये देविया अपने सास-ससुर को तो बुढ्ढ़ और बेवकूफ समझती हैं। अब सास व्याख्यान सुनने को आती है, तो उसके एक हाथ का घू घट है और बीदणी जी का माथा ही उघडा हुआ है। अब तो सिर ढकने का रिवाज ही उठता जा रहा है। अधिक हुआ तो कधे पर पल्ला डाल लिया जाता है। अब पति आज्ञा कहाँ है, और सास-ससुर की आन भी कहाँ है ? अब तो दिन पर दिन मनमानी होती जा रही है।

हाँ, तो काशी नगरी की वे स्त्रिया रानी से कहती हैं कि महारानी जी, आपने बडी कठोर आज्ञा पालन करने की तैयारी की है। अब आप जगल मे मत जाओ, हमारे ये गहने स्वीकार करो और इनसे उन लोगो की झोपडियाँ बनवा दो। हम लोगो की इस तुच्छ विनती को मान लो। रानी कहती हैं—

"बाई ए, नहीं लू ं गहना कांठला, नहीं लू नवसर हार।

रानी कहती है कि बहिनो, आप लोग कहती हैं कि हमारे ये काठला और हार आदि ले लो और इनसे झोपडियाँ बनवा दो। परन्तु ऐसा करने पर पति की आज्ञा का पालन कैसे होगा ? ऐ बहिनो, ऐसा करना तो सरासर पति की आज्ञा का उल्लघन करना है। मैं ऐसा काम नही कर सकती। रानी ने किसी की भी बात नही मानी और जगल मे जाकर रहने लगी। जगल मे भी कितने ही नगर-निवासी लोग पहुंचे और कहने लगे कि हम लोग रुपये देते हैं, आप उनसे झोपडिया बनवा दीजिए और वापिस नगर को चलिये। परन्तु रानी ने सभी को एक ही उत्तर दिया कि मुझे किसी की किसी भी वस्तु की कोई दरकार नही है। आप लोगो की सहानु-

भूति के लिए मैं आप सबकी आभारिणी हू। यह कह कर उसने सबको वापिस लौटा दिया।

रानी जगल मे रहने वाले किसी लकडहारे के पास गई, उससे कुल्हाडी और रस्सी उधार मागी और कहा कि इसकी जो कीमत हो, यह मेरे नाम लिख लो। उसने दोनो चीजे रानी को दे दी। रानी रस्सी को कन्धे पर डालकर और कुल्हाडी को हाथ मे लेकर नदी के उस पार लकडी काटने को पहुची। देखो—वह राजा की रानी, जिसका शरीर अति सुकुमार, जिसने कभी भूमि पर पैर भी नही रखा था, अब पैदल नगे पैर जगल मे लकडी काटने के लिए जा रही है। यद्यपि पूर्वकाल की स्त्रिया अति सुकुमार थी, किन्तु अवसर आने पर सब कुछ सहन भी करती थी। कहते है कि जब राम वन को जाने लगे, तो सीता ने भी साथ मे चलने के लिए हठ पकडा। राम ने वन की बडी बडी भयानक बातें कह कर घर पर ही रहने का आग्रह किया। मगर सीता ने कुछ भी नही सुना। राम ने कहा— देखो तुमने आज तक भूमि पर पैर भी नही रखा है, कभी नगे पैर चलने की तो बात ही दूर है। जगल की कर्कश भूमि पर तुम चल नही सकोगी, इसलिए मेरा कहना मान कर घर मे ही रहो। मगर सीता नही मानी और साथ मे चलने को वनवासिनी जैसा वेप बनाकर आ ही गई। जब वह नगरी से बाहिर दो तीन कदम ही पैदल चली कि कर्कश ककड-पत्थरो के चुभने से उसके पैर लहू-लुहान हो गये, मुख से एक चीख निकल पडी और राम से बोली—हे नाथ! अब कितनी दूर चलना है? यह सुनते ही राम के जीवन मे पहिली बार आसू आगये? कवि कहता है—

सद्य पुरी परिसरे च शिरीषमृद्वी,
गत्वा जवात्त्रि-चतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियद्दूरमिति ब्रुवाणा,
रामाश्रुण कृतवती प्रथमावतारम्॥

अर्थात् जो सीता शिरीप कुसुम से भी अति मृद्वी-कोमलाङ्गी थी, वह राम के साथ अयोध्यापुरी के बाहिर वेग से तीन-चार कदम ही चली कि तीक्ष्ण ककडो से उसके पैर छिल गये, उनसे खून निकलने लगा, तब वह पूछती है कि हे नाथ, अब कितनी दूर चलना है? जिस राम के आँसू उस समय भी नही निकले थे, जब वे राज्याभिपेक होने के स्थान पर वन के लिए प्रस्थान कर रहे थे और अपने माता-पिता और नगर निवासियो को रोता—बिलखता छोडकर जा रहे थे—उन राम के आसू सीता के उक्त वचन सुनकर

निकल पडे । वे सोचने लगे—अरे, अभी जब नगरी से बाहिर निकले ही है, तब तो सीता का यह हाल है, तब आगे क्या होगा ? और इसी विचार से उनकी आखो मे पहिली बार आँसू निकल पडे । राम को निरुत्तर देख सीता उनका मुख निहारने लगी और जैसे ही उनकी आखो मे आसू देखे तो बोली—नही, नही नाथ ! मेरे मुख से सहसा ही ये शब्द निकल पडे हैं । नही, नही, अब ऐसी भूल कभी नही होगी और मैं आपके पीछे छाया की भाति बराबर चलू गी । फिर आप लोग जानते ही हैं कि सीता ने वन मे सब प्रकार के कष्टो को साहस के साथ सहन किया ।

हा, तो उस रानी ने भी सीता, द्रौपदी आदि सतियो के समान ही अपने हृदय को कडा किया और जगल मे लकडी काटने के लिए पहुची । और जहा पर दूसरे लोग लकडियाँ काट रहे थे, वहाँ पर यह भी जाकर काटने का उपक्रम करने लगी । परन्तु उसने कुल्हाडी कब चलाई थी । अत औरो के देखा देखी यह भी उसे कभी ऊपर उठाती तो शिर मे चोट लगती और नीचे लकडी पर गिराती तो पैरो मे चोट लग जाती । इस प्रकार दो चार हाथ घालने पर लकडी तो नही कटी, पर पैर जरूर कट गया । उससे खून बहने लगा । फिर भी वह कपडे की पट्टी बाधकर काम करने मे जुट जाती । यह देख कठियारो की औरतो ने कहा—बाई जी, आप से ये नही कट सकेगी । अत हम आपको काट देते है और भारी भी बाध देते हैं । रानी ने कहा—नही, मैं तुम्हारी काटी हुई एक भी लकडी नही लू गी । हा, तुम लोग मुझे लकडी काटना सिखा दो । उन औरतो ने रानी को लकडी काटना सिखा दिया । दो-तीन दिन मे वह लकडी काटना सीख गई । अब वह स्वय लकडी काटने लगी और भारी बाधकर नगर मे बेचने को आने लगी । जहा लोग औरो की भारी के आठ-दस आने देते, वहा रानी की भारी का मोल एक मोहर देने लगे । परन्तु रानी ने मोहर न लेकर कहा—नही भाई, इतना मुझे मत दो । मुझे हराम का, या दया का पैसा नही चाहिए है । मेरे भारी का जो उचित मूल्य है, वही मुझे दो । मैं उससे अधिक एक पैसा भी नही चाहती हू, बल्कि कम लेने पर भी मुझे सन्तोष रहेगा । भाइयो देखो—रानी के त्याग और सन्तोष भाव को । कितनी हिम्मत है उसमे । अब वह प्रतिदिन जगल से भारी लाकर बेचने लगी । उससे जो पैसे आते, उसमे से बहुत कम मे अपना पेट भरती और शेष को बचा कर रखती । पैसा बचाने और साथ ही तपस्या का अभ्यास बढाने के लिए वह कभी उपवास करती, कभी आयबिल करती और कभी एकासन करती ।

वह प्रतिदिन अधिक से अधिक परिश्रम करके वडी भारी लाती और उसके जो पैसे आते, उनमे से अधिक से अधिक बचाकर रखने लगी। इस प्रकार जगल मे रहते, दिन भर परिश्रम करते और पैसे बचाते हुए बहुत दिन बीत गये। यद्यपि वह आकार-प्रकार और जाति मे नारी है, परन्तु दिल मे हिम्मत उसके शेरनी के समान है। जगल मे वह निर्भयता के साथ रहती है और अपना सब काम स्वय अपने हाथ से करती है। रात-दिन कठोर परिश्रम करते, रूखा-सूखा खाते और सर्दी-गर्मी सहते हुए उसका सारा शरीर नीला पड गया, चमडी सूख गई और हाथ पैर फट गये। चेहरे की सारी कान्ति धूल मे मिल गई और दुबली-पतली हो गई। परन्तु उसका साहस और उत्साह दिन पर दिन बढता गया। वह अनुभव करने लगी कि जो आनन्द मुझे राज महलो मे नही मिला, वह इस जगल मे मिल रहा है।

जो मजा वन मे मिला, वह महल में मिलता नहीं।

रानी मनमे विचारने लगी—प्रभु ने वडी कृपा की और पति ने मुझे निहाल कर दिया जो इन परतन्त्रता की बेडियो से मेरा उद्धार कर दिया। अहा, वन मे कितना आनन्द है। राजमहल मे रहते हुए नाना प्रकार के पकवानो को खाते हुए जो आनन्द नही आता था, वह यहा पर रूखी-सूखी रोटिया खाने मे आनन्द आ रहा है। वहा तो दूसरो की प्रतीक्षा करनी पडती थी कि अभी तक भोजन का थाल नही आया है। अब यहा मुझे किसी की प्रतीक्षा नही करनी पड़ती है। महलों मे रहते समय कभी पेट मे दर्द और कभी शिर मे दर्द बना रहता था और प्रतिदिन हकीम और वैद्यो की कडवी कसैली दवाइया खानी पडती थी। परन्तु यहा पर तो बीमारी जैसे सदा के लिए रफू चक्कर हो गई है।

आराम से राम नहीं मिलता

भाइयो याद करलो, आप लोग भी किराने और कपडे की दुकानें चलाते है और दिन भर वहां बैठे रहते है, तो कौन-कौन सी बीमारिया आपको सताती है और रेडियो बगल मे धर कर के गादी-तकिये पर आराम से बैठे रहते हो, तो आपको बीमारियाँ अधिक सताती है, या नही? जो लोग मँडी मे सौ-पचास धडियाँ डालते है, या दस-बीस बोरियाँ उठाकर इधर से उधर ले जाते है और दिन भर अपना पसीना बहाकर और दो चार रुपये कमा कर के जब घर जाते हैं और फिर भोजन करते है, तो कहो-उन्हें भोजन करने मे कितना मजा आता है। अब, जब कि आप लोगो के पास पूँजी बढ गई है, तब क्या आप लोग एक भी धड़ी डाल सकते हो। अब तो कोई कहता है कि

कैंसर हो गया, किसी को तपेदिक हो गया और किसी को और अनेक प्रकार की बीमारियाँ लग गई है। तो मैं पूछता हू कि ये बीमारिया आप लोगो ने अपने हाथो से मोल ली है, या नही ? क्योकि अब तो काम करना आपको पसन्द नही। क्योकि अपने हाथ से काम करने को अब हलका समझने लगा है। अब तो ऐसी ही सरकार आपको मिल गई है और ऐसे ही आप लोग है। अब तो लाटरी भरते है, क्योकि आप सोचते हैं कि एक रुपये के पाँच लाख रुपये आवेगे। और एक दिन मे लखपति बन जावेंगे। अब आप लोग ही बतावें· कि यह लाटरी का रुपया क्या कमाई और मेहनत का है ? अब क्या है, लोग लाटरी की टिकटें खरीदते है, जिसमे हजारो लोग रोते हैं और कोई एक हसता है। परन्तु अब तो आप लोगो को बिना कमाया हुआ लाटरी का धन चाहिए है। और सट्टे का-बादलो का धन चाहिए है। अब तो लोग दूसरो को छुरा भौक कर धन लेना चाहते है। और फिर कहते है कि वैद्य-डाक्टर के आये बिना एक दिन नही जाता है। दस-बीस रुपये रोजाना फीस मे ही देने पडते है। और फिर हमसे आकर कहते है कि महाराज साब, पाँच साल बीमारी का कष्ट सहते हो गये है, तो कोई शान्ति के लिए माला बताओ। भाई, माला तो हम प्रतिदिन बताते है कि खून का पसीना करो, सच बोलो, नीति से कमाओ और धर्म मे श्रद्धा रखो, तो फिर बीमारी आने का काम नही है। अब खाना तो चाहे जहर और रहना चाहो अमर तो यह कैसे सम्भव है ? करना तो चाहो आराम और पाना चाहो राम तो यह कैसे सम्भव है।

हाँ, तो दिन भर परिश्रम के बाद अपना पसीना बहाकर लाये गये पैसो की रोटी खाने वाली वह रानी अब बडा आनन्द अनुभव करने लगी। इस प्रकार परिश्रम करते हुए बारह महीने हो गये। उसका सारा शरीर सूख कर काटा हो गया। परन्तु उसके भीतर आत्मिक गुण बढ गये। इतने दिनो मे रानी ने काफी रुपये जमा कर लिये। उससे उसने उन लोगो को अच्छी मजबूत झोपडियाँ बना करके दी कि सब लोग देखते ही रह गये। फिर उसने उनके दीगर सामान के नुकसान के भी पैसे दिये और कपडे भी दिये। और सबको प्रेम से भोजन भी कराया। जब सब लोग झोपडियो को पाकर के आनन्द से उनमे रहने लगे, तब रानी अपनी झोपडी से चलकर राज्य सभा मे पहुची और हाथ जोडकर महाराज के सामने खडी हो गई। उसे देखकर राजा ने पूछा—यह कौन है, किसकी स्त्री है और क्या फरियाद लेकर यहाँ आई है ? नगर के सभी प्रमुख व्यक्ति—जो प्रतिदिन उसकी भारी मोल लेते थे, वे रानी को पहिचानते ही थे सो उन लोगो ने कहा—महाराज, यह

क्या कह रहे है ? यह तो महारानी साहब हैं। क्या आप इनको ही भूल गये हैं ? आपकी आज्ञा को पालने के लिए कठिन परिश्रम के कारण इनका शरीर सूखकर काटे सा हो गया है। परन्तु आपकी आज्ञा का पालन इन्होंने भली भाँति से कर दिया है। तब राजा ने पूछा—हे नागरिक लोगो, क्या सारी झोपडिया बन गई हैं ? सब ने एक स्वर से कहा हाँ, महाराज बन गई हैं। और बहुत सुन्दर बनी है। महारानी जी ने सबको भोजन भी कराया है और नुकसान का हर्जाना भी दिया है। यह सुनते ही राजा का हृदय कमल आनन्द से विकसित हो गया। अपने सिंहासन से उठकर महारानी जी के सामने गये और बोले महारानी जी का स्वागत है पधारो, पधारो, पधारो महलो के भीतर। तब रानी ने कहा—

'नहीं जाऊं नृप महल मे ''

रानी कहने लगी—महाराज, आपके न्याय का पालन करने के लिए बारह महीने तक मैंने अपने शरीर को तपा लिया है और इसे सौ टच का सोना बना दिया है। अब मैं लोहा बनकर राजमहल मे आने को तैयार नही हू। मुझे महल की बन्द हवा और बेडिया अब पसन्द नही हैं। अब तो आप ही राज महलो मे रहिये और मुझे आज्ञा दीजिए, ताकि मैं अपना जीवन उन्नत बना सकूँ। अब तो मैं सयम लेना चाहती हू। रानी के ये शब्द सुन कर राजा साहब बोले—महारानी जी, यह क्या कह रही हो ? हमारा तो महल ही सूना हो जायगा। तब रानी ने कहा—महाराज, जब राजमहल बारह महीने से जैसे सूना है, वैसे ही आगे ी रह जायगा। तथा जैसे मेरे बिना इतना समय निकला है, वैसे ही आगे भी निकल जायगा। परन्तु मैं तो अब इस कीचड मे नही फसूँगी। बल्कि मे तो आपसे भी कहती हू कि आप भी इस कीचड मे से निकलिये। आप भी सयम अगीकार करने का विचार कीजिए। राजा ने देखा कि रानी अपने विचारो पर दृढ है, तो उसने भी सयम धारने का निश्चय कर लिया। और दोनो ने एक साथ ही मयम अगीकार किया।

इस कथानक की बुनियाद यह है कि राजा ने जो न्याय किया, उसे रानी ने स्वीकार किया। यदि इस प्रकार का निष्पक्ष न्याय आज भारत मे आ जाय, तो जो स्वतन्त्रता मिली है, वह उत्तरोत्तर फूलेगी और फलेगी। जनता आनन्द मे रहेगी और पन्द्रह अगस्त का उत्सव मानना सार्थक हो जायगा। देश मे न्याय नीति का विकास हो, यही आज के स्वतन्त्रता दिवस का मदेश है।

१३

रक्षाबन्धन बनाम धर्मरक्षा

सरस शांति सुधारस सागर, शुचितरं गुणरत्न महागरम् ।
भविक पंकज बोध दिवाकरं, प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम् ॥

आप लोगो के सामने नित्य नयी नयी वस्तुए आती हैं, कोई पूछता है कि आप कहाँ जाते हैं, तो आप उत्तर देते हैं कि बम्बई जाते हैं, कलकत्ता जाते हैं, या मद्रास जाते हैं। आपकी जहा इच्छा होती है, वहाँ जाते हैं। मकान भी नये नये बनाते है, बातचीत भी नयी है और शान, शक्ल भी नयी है। परन्तु सबसे नयी वस्तु क्या है, इसका हमें पता नही है। हमारी आत्मा जो अनादि काल से परतन्त्रता की बेडियो मे जकडी हुई है, कर्मों से बँधी हुई है, वह स्वतन्त्र हो जाय और उसका मार्ग हमारे सामने आ जाय, तो सबसे नयी वस्तु वही है। अन्य सासारिक वस्तुए जिन्हें हम नयी समझ कर ग्रहण करने के लिए लालायित रहते हैं, वे तो इस जीव ने अनन्त बार प्राप्त की हैं, वे हमारे विषयासक्त मन को ही लुभाने वाली हैं। पर यदि मन को क्षणिक सुख भी मिल गया, तो भी क्या मिला। वचन अच्छे मिले तो क्या मिला और काया सुन्दर मिल गई, तो वह भी सदा साथ रहने वाली नही है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं—

सुद परिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोग बंध कहा ।
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलहो विभत्तस्स ॥

यह जीव काम, भोग और बन्ध सम्बन्धी कथा तो अनादि काल से सुनता चला आ रहा है, अनादि से उसका परिचय प्राप्त कर रहा है और अनादि से ही इन्द्रियो के सभी प्रकार के विषयो का अनुभव करता चला आ

रहा है। इसलिए जीव का पुन्य की ओर आकर्पण जल्दी हो जाता है। परन्तु 'यह जीव ससार के समस्त पदार्थों से भिन्न है और अपने गुण-पर्यायो के साथ एकता को प्राप्त है,' यह कथा इसने आज तक भी नही सुनी है, न उसका कभी परिचय प्राप्त किया और न कभी अनुभव ही किया कि मेरी आत्मा कैसी है? इसलिए पर पदार्थों से भिन्न आत्म-एकत्वकी प्राप्ति सुलभ नही हो रही है, किन्तु दुर्लभ ही बनी हुई है।

पर्वो का मूल रूप

इसलिए सबसे नवीन वस्तु है आत्मस्वरूप की प्राप्ति। इस ससारी जीव को नया मोड मिले, ठीक दिशा मे प्रयत्न करे और पुरुपार्थ जाग्रत करे तो कर्मों से मुक्त होकर स्वतन्त्र बन जावे, परन्तु अनन्त-अनन्त काल बीतने पर भी वह दशा नही मिली, और आज तक गमनागमन से पिण्ड नही छूटा है। यदि एक बार भी यथार्थ स्वरूप का दर्शन हो जाय, तो जन्म-मरण की परम्परा से छुटकारा मिल जाय।

नये दिन को पर्व या त्यौहार कहते है। इसका अर्थ है नवीन वस्तु की प्राप्ति। भारतवर्ष मे चार वर्ण प्रचलित है, और चारो वर्णों के अनेक पर्व या त्यौहार हैं। परन्तु उनमे मुख्य चार त्यौहार हैं—रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली और होली। वर्ण भी चार हैं और ये प्रधान पर्व भी चार है। रक्षाबन्धन को विशेप महत्त्व ब्राह्मणो ने दिया है। दशहरे का महत्त्व क्षत्रियो मे है। उनके गढ, किले, हाथी, घोडे और शस्त्र आदि का पूजन दशहरे को ही होता है। आप लोग व्यापारी है, वैश्य वर्ग के हैं, इसलिए आप लोग दीपावली को महत्व देते हैं। वर्प भर के हानि-लाभ का मिलान दीपावली पर ही करते हैं और नयी बही खातो का प्रारम्भ, उनकी और लक्ष्मी की पूजा भी आप लोग इसी दिन करते हैं। चौथा वर्ण है शूद्र, उनके लिए होली के त्यौहार का ही सबसे अधिक महत्व है। जो किसान लोग है, वे चार-पाच मास तक कठिन परिश्रम करके फसल को पैदा करते हैं। जब फाल्गुण के महीने मे वे खेती को लहलहाती हुई देखते हैं, तब प्रसन्नता से उनका दिल नाचने लगता है कि हमारी फसल बहुत बढिया है, हमारा परिश्रम सफल हुआ है। बस इसी खुशी के मारे वे बावले से बन जाते है, उनको इस आनन्द के मारे उठने-बैठने और बोलने-चालने आदि का कुछ भी ख्याल नही रहता है। वे मस्त होकर झूमते फिरते हैं और रात भर चग के ऊपर गीत गाते रहते हैं। उनकी औरते भी हर्प के मारे फूली नही समाती है और अबीर-गुलाल एव रगीन पानी से होली फाग खेलने लगते है। इस प्रकार ये चार

त्यौहार चार वर्णों के प्रधान रूप से मनाते चले आ रहे हैं। परन्तु इनके मूल रूप पर बहुत ही कम लोगो ने विचार किया है।

यदि हम पर्वों के इतिहास को देखेंगे, तो पता चलेगा कि इन चारो ही त्यौहारो के पीछे कोई न कोई महत्व छिपा हुआ है, महत्व के बिना किसी भी त्यौहार का प्रारम्भ नही हुआ है। ये रक्षा-बन्धन, दशहरा, दीपावली और होली यो ही प्रचलित नही हो गये है। किन्तु इनके माध्यम से एक एक वर्ण वाले अपना कुछ न कुछ कार्य कर रहे है। इन त्योहारो का उद्गम-स्रोत इतिहास से परे हो गया है। हम इतिहास को भूल गये है, इसलिए इन त्यौहारो का जो महत्व था, उसे नही समझ पा रहे है। अब यदि उनसे कहा जाय कि तुम यह क्या करते हो, इसमे क्या रखा है ? तो ऐसा कहने वालो को और कराने वालो को भी पता नही है। लोग हो-हल्ला तो मचाते है, परन्तु असली बात क्या है, उसके पता लगाने का प्रयास नही करते हैं। कभी कोई बात ऐसी होती है जो अनायास ही बन जाती है और अनायास बनने के साथ उसको अनुचित महत्व भी प्राप्त हो जाता है और कभी ऐसी अनायास होने वाली घटना महत्वशाली भी हो जाती है। यहा हम क्रमश ऐसी दोनो घटनाओ पर प्रकाश डालेगे।

एक राजा को दमे की बीमारी हो गई थी। उसे खासी आने पर भारी बलगम (कफ) निकलता था। राज सभा मे तो अच्छे अच्छे सरदार अमीर उमराव लोग बैठे रहते थे। राजा लोग जहा बैठे हो, वही पर थूक देते है, उन्हे यह विचार नही रहता कि हम कहाँ पर क्या कर रहे है ? राज सभा मे तो इस बात का ध्यान रखना ही चाहिए। ऐसे ही गुरु की सभा होती है, ऐसे ही पचायत की सभा होती है और सभी सभासोसायटियो की यही व्यवस्था होती है कि जहा पर अनेक आदमी बैठे हो, जो देवस्थान, गुरुस्थान, व्याख्यान-भवन आदि है वहा पर न थूका जाय। वहा पर तो विवेक से बैठना और कार्य करना चाहिए। अब आप यही तो सामायिक करने बैठे और यही नाक छिनक दी, कफ थूक दिया और उसके ऊपर धूल डाल दी। पर भाई, तूने यह विचार नही किया, कि ऐसे करने पर मेरे भी कपडे खराब होगे और दूसरो के भी होगे। परन्तु दुनियाँ ऐसी पागल हो रही है कि उसको अपना और दूसरे का ख्याल नही है कि मेरे पास मे कैसे कैसे मनुष्य बैठे हैं ? जिन्हे इस बात का विचार नही है, वे विवेक से हीन है।

राजा ने सोचा कि राज सभा मे तो मत्री, सरदार और बडे बडे अफसर और अधिकारी लोग आते रहते हैं, इसलिए जहा कही थूकना अच्छा नही

है। ऐसा विचार कर उसने अपनी गादी के बगल मे राख से भरा हुआ कुडा रखवा लिया और जब खासी आती और कफ निकलता तब उसमे थूक कर उस पर राख डाल देता। इस प्रकार राज सभा मे बैठते हुए और उस कुडे मे थूकते हुए अनेक वर्ष बीत गए। दुर्भाग्य से किसी समय उस राजा का देहात हो गया और पुराने सरदार और मुसद्दी भी ससार से प्रयाण कर गये। अब पुरानी जाजम हटाकर बिलकुल नयी जाजम बिछाइ गई। सरदार और मुसद्दी सब नए आए। जब नये राजा के राजगद्दी पर विराजने का समय आया, तब सारी सजावट नई की गई। सभी सरदार और बडे बडे लोग आकर यथास्थान बैठ गए। परन्तु वह कुडा जहाँ पर पहिले राजा के समय रखा हुआ था, ज्यो का त्यो रखा रहा, किसी ने भी उसे हटाया नही। आज उसकी ओर जब लोगो की नजर गई, तब लोगो ने विचार किया कि राजगद्दी पर यह मिट्टी का कूडा क्यो ? मालूम पडता है कि इसमे कोई खास करामात है, तभी तो एक अर्से से यह यही का यही रखा हुआ है और सभवत इसी के प्रताप से यह राज्य चलता है। अब नये राजा के राज्यारोहण की सब तैयारी कर दी गई, नया गलीचा बिछा दिया गया और नए राजा को राजतिलक करके पगडी पहिना दी गई, तथा इस समय जो जो दस्तूर और रीति-रिवाज होते हैं, वे सब कर दिए गए। परन्तु थूकने का यह कुडा ज्यो का त्यो ही पडा रहने दिया। इस प्रकार से उस राजगद्दी पर तीन-चार पीढिया बीत गई और इतनी पीढिया बीत जाने पर उस कूडे का महत्व और भी अधिक बढ गया। लोग समझने लगे कि इसके बलबूते पर ही राज्य चल रहा है। अब जो भी राज-दरबार मे आता है, वही पहिले उसे नमस्कार करता है, पीछे राजा को नमस्कर करता है।

एक बुद्धिमान् नया राजा राजगद्दी पर बैठा, तो उसने पहिले ही दिन देखा कि लोग आकर पहिले इस कूडे को नमस्कार करते है और पीछे मुझे नमस्कार करते है ? यह विचारने लगा कि आखिर यह क्या मामला है ? उसने कहा—अरे सरदारो, क्या यह मिट्टी का कूडा यहा रखना शोभाजनक है ? इसको यहा से हटाओ। सरदार बोले—महाराज, यह आप क्या फरमा रहे हैं ? इसी कूडे मे ही तो सारी करामात है। यही तो सर्व सिद्धि-प्रदाता है, इसी प्रताप से तो आपका यह राज्य अनेक पीढियो से निर्विघ्न चला आ है। आप भी पहिले इसे नमस्कार कीजिए और फिर पीछे राजगद्दी पर बैठिए।

राजा ने कहा कि क्या यह कूडा ही सब कुछ है और मेरी कोई पुण्य-

वानी नही ? राज्य-शासन सब इसके ही प्रताप से चलता है, यह कहना मेरी दृष्टि मे बिलकुल गलत है और अज्ञानता-सूचक है। मैं इसे हर्गिज नमस्कार नही करूंगा। मुझे यह राज्य मिला है, तो मेरे भाग्य और पुण्यवानी से मिला है। यदि मेरी भुजाओ मे शक्ति होगी, तो मै राज्य कर सकूंगा, अन्यथा नही। परन्तु इस मिट्टी के कूडे मे क्या कोई करामात है, यह मानने को मैं तैयार नही हू। आप लोग कहते है कि यह सर्व सिद्धिप्रदाता है, तो मैं पूछता हू कि कब किस दिन इसे आहुतिया दी गई और कब किसने इसे देव बनाकर यहा पर रखा है ? लोगो ने कहा — नही महाराज, इस बात का तो हम लोगो मे से किसी को भी पता नही है। राजा बोला—तब तो आपलोग बे सिर-पैर की बात को यो ही लकीर के फकीर बने मानते चले आ रहे हैं। थोडी देर शान्त होकर सोचे, कि आखिर इसको यहा रखने का रहस्य क्या है ? यह क्यो यहाँ रखा गया है ? सोचते-सोचते राजा के ध्यान मे असली बात आ गई कि सभवत हमारे वश मे किसी राजा को खासी-दमे की बीमारी हुई होगी और कफ थूकने के लिए इसे यहा रखा गया होगा। उनके स्वर्गवास के पश्चात किसी ने इसे फेंकने का साहस नही किया और यह कुडा देव या कुण्डेश्वर बना हुआ पुजता चला आ रहा है। उसने कहा—मै इस मिट्टी के ठीकरे को नही मानता हू और यह कहते ही उसने पैरसे एक ठोकर मारी और उसे दूर फेंक दिया, नीचे गिरते ही टुकडे टुकडे हो गए। यह दृश्य देखते लोग विचारने लगे कि इस राजा की पुण्यवानी अब समाप्त होने को है। अब ये बच नही सकेंगे। इस कूडे का अपमान करने से तो ये आज ही रात को मर जावेंगे। भाई, लोग तो मन मे ऐसा यद्वा-तद्वा अन्यथा विचार करते ही रहे और नए राजा की राजगद्दी का दस्तूर यथा'विधि हो गया। अब दो-चार, दस दिन निकल गए,परन्तु लोगो की भावना के अनुसार राजा का एक बाल भी बाका नही हुआ। राजगद्दी पर बैठते ही इसने राज्य का सचालन इस प्रकार किया कि लोग दातो तले अगुली दबा कर रह गए। चारो ओर मे आया कि उस मिट्टी के कूडे मे कोई करामात नही थी, जिसे कि हम लोग कुडेदेव या कुडेश्वर मानकर पूजते आ रहे थे। छह मास के पश्चात फिर दरबार भरा, तब राजा ने अपने सरदारो और मुत्सद्दियो से कहा आप लोग उस मिट्टी के ठीकरे को ही राज्य प्रदाता और सचालक मान रहे थे। परन्तु मैंने उसे फोड दिया और फिकवा दिया परन्तु इतने समय के बीतने पर भी मेरा कुछ भी नही बिगडा है। आप लोग ही बतलावें कि राज्य-शासन की व्यवस्था कैसी रही ?

राजा के प्रश्न पर सब लोगो ने एक स्वर से कहा—महाराज, क्या कहना है व्यवस्था की। राज्य-शासन की व्यवस्था बहुत सुन्दर रही है। तब राजा ने कहा—भाइयो, उस कूडे के पीछे भी एक इतिहास रहा है। और वह यह कि हमारे वशज राजाओ मे से किसी को खासी-दमे की बीमारी रही होगी और उनके कफ थूकने के लिए वह कूडा यहा रखा गया होगा। परन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् किसी ने उसे फेंका नही और वह यही पर रखा रहा। पीछे बिना उक्त बात के सोच-विचार किये ही उसे पूजना और नमस्कार करना प्रारभ हो गया। धीरे-धीरे उसने एक प्रथा का स्थायी रूप ले लिया। इसलिए हम लोगो को लकीर का फकीर नही होना चाहिए। और ठडे दिमाग से मूल बात का विचार करना चाहिए। उसकी बुनियाद की ओर लक्ष्य देना चाहिए और उसके इतिहास की जानकारी का प्रयत्न करना चाहिए कि अमुक बात या रीति-रिवाज जो समाज या देश मे प्रचलित है, वह कहा तक ठीक है।

बधुओ, वह राजा आज के भेडियाधसानी लोगो के समान बेवकूफ नही था। हम आज बातें बहुत करते हैं, पर यह नही विचारते है कि यह कौन है और इसमे क्या करामात या तात्विक रहस्य है? आज तो राजनैतिक वातावरण का सर्वत्र प्रभाव दिखाई देता है और सभी लोग नेतागीरी के चक्कर मे सौ पचास छोकरो को आगे कर देते हैं और हल्ला मचवा देते हैं। परन्तु उनके मन मे देश की उन्नति का कोई ख्याल नही है। वे लोग तो देश को बिगाडने वाले ही हैं। उनके पास विचारक मस्तिष्क नही है, उन्होंने तो केवल हुल्लड बाजी ही सीखी है। भाइयो, जो कुछ अच्छा या उन्नति का कार्य होता है, वह शान्त चित्त से ठडे दिमाग से विचार कर और कन्धे से कन्धा मिलाने पर होता है।

काम नही, केवल हल्ला

आज लोगो ने काम करना नही सीखा है, केवल हो-हल्ला मचाना ही सीखा है। इस हुल्लडबाजी मे तो किसी के चोट लगती है, कोई मारा जाता है और कितनो की आर्थिक हानि और सम्पत्ति की क्षति होती है इसके अतिरिक्त हमे तो कोई तथ्य या प्रयोजनभूत कार्य नजर नही आया। किन्तु आजकल के इन नेतागिरी करने वाले लोगो ने यह व्यवसाय बना रखा है कि हर एक आदमी को तग करना। फिर भी नतीजा कुछ नही। इनके इन

कार्यों से हानि के अतिरिक्त कुछ भी लाभ होने वाला नही है। दुनियाँ कहती है कि अमुक व्यक्ति ने काम विगाड दिया। पर उसने क्या बिगाडा ? आपने अपने हाथो से विगाडा है। जब मनुष्य परेशान हो जाता है, तब वह खा-पी नही सकता, तो ढोल ही देता है। किन्तु जो समझदार होते हैं, वे सोचते है कि किस प्रकार काम करना है। परन्तु इन लोगो के पास हुल्लडबाजी के सिवाय और कुछ है क्या ? नही है। यदि किसी के पास बुद्धि का बल है, अनुभव है, तो उससे काम करो। धन बल है, तो उससे काम करो और जन मत है तो उससे काम करो। यदि आप लोगो के पास धन-बल, तन-बल, बुद्धि-बल और जनमत आदि कुछ भी नही है, तो कुछ भी नही कर सकते हैं।

एक दुकानदार के पास एक भिख मगा गया। उसने दुकानदार से खाने को मागा। परन्तु उसने भिखमगे को कुछ नही दिया, तब क्रोध मे आकर भिखमगे ने दुकानदार को गालियाँ बक दी, तो क्या उसे कुछ मिल जायेगा ? नही मिलेगा। बल्कि जो अन्य लोग देने वाले थे, वे भी उसकी ऐसी हरकत देखकर उसे कुछ भी नही देंगे। इसके विपरीत यदि वह कहता कि सेठ जी, हम तीन दिन के भूखे है, गरीब और असहाय है, कृपा करके कुछ खाने को दीजिए। उसके ऐसे करुण शब्दो को सुनकर के पत्थर के समान कठोर हृदय वाला पुरुष भी मोम के समान मृदुल बन जाता और उसे खाने के लिए कुछ न कुछ अवश्य ही देता। यदि आप गाय-भैंस के पास चरी लेकर दूध लेने जाते हैं, तो पता है, पहिले क्या करते है ? उसको पुचकारते हैं, उसके शरीर पर हाथ फेरते हैं और उसके थनो मे पानी के छपके देते है, तब कही वह दूध देती है। पर यदि आप जाते ही उसे दो चार डण्डे मारें, गालियाँ बकें, फिर चाहे कि वह दूध देवे, तो क्या वह दूध देगी ? नही देगी। इसी प्रकार आप लोगो को सोटे मार कर और गालियाँ देकर के अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते है तो क्या वह सिद्ध हो सकेगा ? कभी नही होगा। जिन बच्चो को साथ लेकर आप हुल्लडबाजी कराते हैं उन्हे भले-बुरे का, या हानि-लाभ का क्या ख्याल है ? वे तो वानर सेना के समान है, जिस बगीचे मे घुस पडे उसे तहस-नहस कर दिया। उनमे गाठ की बुद्धि ही क्या है ? अभी आप झोली मे गोलियाँ लेकर जावें और उन्हे बाटकर आप किसी भी भले आदमी को उनसे लाखो गालिया दिलवा देवे। आपको यह विचार नही है कि ये तो अभी बच्चे है, परन्तु हम तो बडे हैं, समझदार कहलाते है फिर हम गलती क्यो करें ? हमे तो उचित रीति से ही काम करना चाहिए।

कार्यसिद्धि के चार उपाय

कार्य को सिद्ध करने के लिए नीतिशास्त्र मे चार प्रकार की नीति-शिक्षायें बतलायी गई हैं—साम, दाम, भेद, और दण्ड—इनमे से एक एक के क्रमश छत्तीस, चौबीस, सत्रह और सत्रह भेद बतलाए गये है। राजनीति और धर्मनीति का सम्बन्ध मिला हुआ है। जो यथार्थ राजनीति के जानकार हैं, वे नासमझी का काम नही करते हैं। उक्त चारो नीतिशिक्षाओ मे पहिली नीति है साम की। जो हमसे बडे हैं, सत्ता से और अधिकार से बडे है, उन्हे बडा मान करके काम निकालना चाहिए। यदि बडा मानने पर और उनके साथ समभाव से व्यवहार करने पर भी उनसे काम नही निकले, तो फिर दामनीति काम मे लेनी चाहिए। दाम का अर्थ है रुपया-पैसा देकर और कुछ प्रलोभन देकर काम निकालना चाहिए। यदि धन या प्रलोभन देने पर भी काम नही निकले, तो फिर भेद-नीति से काम लेना चाहिए। उनमे किसी प्रकार छल कपट से फूट डलवा दे, और विघटन करा देवे और अपना काम निकाल लेवे। जब साम, दाम, और भेद नीति से भी कार्य सिद्ध न हो, तब चौथी दण्डनीति का आश्रय लेना चाहिए। दण्डनीति कब काम मे ली जाती है, जब अपने पास शक्ति हो, राज्य एव सैन्यबल हो, अधिकार हो, तभी किसी को दण्ड दे सकते है। इसलिए किसी भी कार्य को करने के पहिले हमे सारी बातो का पूरा-पूरा सोच-विचार करके ही कदम बढाना चाहिए। केवल बकने और हुल्लडबाजी से तो अपने बचनो की कीमत ही घटती है। उर्दू का शायर भी कहता है—

'केवल कहने से काम नहीं चलता है, उसके लिए हिम्मत भी चाहिए।

काम बातो से नहीं, हिम्मत से होता है

भाई, कहने से, जोश-खरोश के साथ व्याख्यान दे देने मात्र से कुछ नही होता। काम करने के लिए हिम्मत चाहिए। हमने तो यह मत्र बनाया है कि हिम्मत रखो। हिम्मत रखने से यदि किसी भी प्रकार की समस्या खडी होगी, तो उसे सहन कर सकते हो, उसका मुकाबिला कर सकते हो और आगे बढ सकते हो। सामने आनेवाली समस्या का अध्ययन करते-करते उसके आदि से अन्त तक के निष्कर्ष पर पहुच सकते हैं और विचार कर सकते हैं कि भाई, किसी भी भले काम के करने मे नाना प्रकार की झझटे तो आती ही है। सस्कृत साहित्य मे एक नीति का वाक्य आता है कि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' अर्थात् जितने भी श्रेयस्कर कार्य होते हैं, उनके सम्पन्न करने मे बहुत विघ्न आया करते हैं। हां, बुरे कामो के करने मे विघ्न नहीं आते, बच्चे

को बडा करने मे कितनी विघ्न-बाधाए उपस्थित होती हैं। किन्तु ढूपा देने मे क्या देर लगती है। किसी फल-फूल के पौधे को बडा करने मे कितनी कठिनाइया आती है। परन्तु किसी भी पौधे को उखाड कर फेंकने मे या बडे से बडे वृक्ष को काटकर गिराने मे कितना समय लगता है ? किसी मकान के बनाने मे कितना समय लगता है और उसे गिराने मे कितनी देर लगती है। किसी कवि ने कहा है—

भली करत लगे विलव, बिलमन बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगे, ढाहत लगे न बार॥

भवन बनाने मे समय लगता है, परन्तु उसे ढाहने मे समय नही लगता है। पहिले के लोग चाहते थे कि बात को बैठावें और आज के लोग कहते हैं कि बात खत्म करो। पहिले के और आज के जमाने मे एक महान् अन्तर आ गया है, पहिले पढने वाले कहते थे कि मैंने यह विषय पढ लिया, वह विषय पढ लिया। मगर आज के पढे-लिखे कहते है कि मैंने यह विषय पढ डाला, वह पढ डाला आदि। अर्थात् पहिले के लोग जो पढते थे उसे ले लेते थे— अपने हृदय मे उसे धारण कर लेते थे। मगर आज के लोग पढे विषय को लेते नही है—ग्रहण नही करते, किन्तु उसे डाल देते हैं— फेंक देते हैं। अर्थात् अपने पास कुछ नही रखते है। आज तो लोग कही पचायत करने भी जाते हैं, तो बनाने के बजाय बात को बिगाडते ही हैं।

तोड़ो मत ! जोड़ो

आप लोगो को ज्ञात है कि सूर्पनखा रावण की बहिन थी। उसे ताडका भी कहते हैं। परन्तु बाई जी ने जन्मते ही उत्पात मचाना प्रारम्भ किया और विवाह किए विना ही खरदूषण के साथ चली गई। फलस्वरूप युद्ध होने लगा। तब उसे मन्दोदरी ने शान्त किया और कहा कि व्यर्थ मे लडते क्यो हो ? जैसी बाईजी है, वैसे ही बहनोई जी हैं। रावण बोला—क्यो चिन्ता करती है, शादी करा देता हूं। खरदूषण होशियार था, और तपस्या भी की थी। परन्तु सूर्य उसके अधीन मे आया था, इसलिए उसे मरना पडा। उसने सरदारो को मरवाया जो चौदह हजार थे, उनका सफाया कराया। फिर रावण के पास पहुची, क्योकि पीहर हरा-भरा था, और सोने की लका थी। परन्तु भाइयो, जो कुमाणस होता है, वह अपने जैसा ही दूसरो को भी करना चाहता है। सूर्पनखा ने जैसी रचना अपने घर मे की, वैसी ही रावण के यहा भी कर दी।

आज के ये लोग बोलते है कि बात खत्म करो,खत्म करने मे पीछे क्यो रहते हो ! अरे भाई, खत्म मत करो, परन्तु बात को बैठाओ। अमुक व्यक्ति सख्त है, तो यह सोचो कि इसे नरम कैसे बनावें ? यह मनुष्य अभिमानी है तो इसे विनयवान कैसे बनावें ? समझदार मनुष्य हर एक बात को घुमा-फिराकर सामने वाले व्यक्ति के दिमाग मे ऐसी जमा देता हैं जिसे लोग कह उठते हैं कि वाहरे वाह, अमुक ने इस बात को सुधार दिया। भाइयो, बात बाकी नही है, परन्तु बात करने वाले बाके हैं, गढ बाका नही, किन्तु गढपति बाका है, तलवार बाकी नही, किन्तु तलवार चलाने वाला बाका है। आज शिक्षा वही, दोहे वही, और कथा वही है, परन्तु कथा बाचने वाला ही बाका है। यदि कोई सोचे कि मैं गढपति बन जाऊ, तो कुत्ते की मौत मरेगा शरीर के भीतर शक्ति तो कुछ नही है और हर एक से होड करना चाहे, तो कैसे कर सकता है। यह तो जिसकी समझ मे आई है, वही पुरुष कर सकता है।

रक्षाबंधन की उत्पत्ति

प्रकरण था चार वर्णों के चार त्योहारो का। उनमे पहिला त्योहार रक्षाबन्धन का है। इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ! इसका प्रारम्भ जैन दर्शन से हैं। जैनसम्प्रदाय से है। जब भारतवर्ष मे बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत भगवान मोक्ष चले गये और उनके पश्चात् इक्कीसवें तीर्थकर नेमिनाथ उत्पन्न नही हुए, उनके मध्यवर्ती काल की हैं। महाराज मुनि सुव्रतनाथ के शासन को आज ग्यारह लाख साढे छियासी हजार वर्ष बीत चुके हैं। यह समय जैनशास्त्रो की काल गणना से है। अब यदि कोई कहे कि हम तो इसे नही मानते हैं, कि इतने वर्ष कैसे निकाल दिये ? तो भाई, यदि तुम नही मानते हो घर बैठे रहो, मत मानो। तुम तो यह भी कह दोगे कि हमारे परदादा जी नही थे, तो कठिनाई तुम्हे ही होगी, हमको क्या है ? यदि आप कहे कि मैं मानने को तैयार हू, परन्तु आप रास्ता ठीक बतला देवें। और यदि कोई बिना निर्णय किये पहिले ही कहे कि मैं नही मानू गा, तो इसकी कोई दवा नही है। जिसका शरीर माने, तो उसकी बीमारी के लिए, एक नही, हजार दवाए है। परन्तु जिसका खोटा मन हैं, उसके एक नही, हजार दवाए दे दो, तो भी कुछ नही होगा। वैद्य भी कह देगा कि अभी तो बिस्तर गीले करते हैं। यह तो मन की बात है।

भाई, काल अनन्त है और इसमे अनेक इतिहास खडे हो गये और अनेक

लुप्त हो गये है। आप भी अपनी छोटी सी जिन्दगी मे देखते है कि कई बाते नई बनी है और कई खत्म हो गई है। आज से छब्बीस वर्ष पहिले जोधपुर मे हितकारिणी सभा बनी। उसमे चादमल जी सुराना, वजीर मोहम्मद, हरनारायण जी व्यास, जो जयनारायण जी व्यास के पिता थे— उन लोगो ने काम किया तो जोधपुर महाराज ने उन सबको देश-निकाला दे दिया। परन्तु वे लोग बात के धनी थे। आखिर उन लोगो के प्रचार से राजा साहब ने वधाकर लिया कि कोई भी मादिन जानवर राज्य से बाहिर नही जायगा। किन्तु देश का धन देश मे ही रहेगा। वही बात अब अपने लोगो के देखते हुए ही बनी। इस प्रकार एक नही, अपितु अनेक चीजे अपनी जिदगी मे बनी है और खत्म भी हो गई हैं। यह काल बहुत लम्बा है, न इसका आदि है और न अन्त है। इसमे असख्य इतिहास बने और बिगडे है। असख्य महापुरुष उत्पन्न हुए है, जिनका आज किसी को पता भी नही हैं। अतएव यदि मुनिसुव्रत भगवान के शासन काल के बीते ग्यारह लाख साढे छियासी हजार वर्ष बीत गये है, तो इसमे आश्चर्य या असत्य होने की कोई बात नही है। जो मनुष्य अपने सामने व्यवहार मे आये है, तो वे ही दिखते हैं कि कैसे अद्‌भुत मनुष्य हैं, किस रग-ढग से चलते और रहते है।

देखो—राजस्थान के इतिहास के लेखक नेणसी मूथा हुए है। उन्होने राज स्थान का इतिहास चार भागो मे लिखा है। उस समय न तो रेल मोटरे थी और न हवाई जहाज थे। अनेक ऐतिहासिक स्थानो पर पहुचने की कोई सुविधा तक न थी और प्राय सभी देशी राज्यो की परिस्थितिया भी खराब थी। परन्तु वे महान् उद्योगी और परिश्रमी व्यक्ति थे कि सैकडो कष्ट उठाकर और सर्वत्र परिभ्रमण कर ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की और राजस्थान का इतिहास लिख गये। उनके पश्चात् टाड साहब आये, और उन्होने भी राजस्थान के इतिहास को लिखा। उन्होने अपने इतिहास के प्रारम्भ मे ही लिखा है कि जो यह इतिहास लिख रहा हू, इसमे नेणसी मूथा का लिखा हुआ जो इतिहास है, उसमे से कई बातें ले रहा हू।

इसी प्रकार तात्कालिक मारवाड मे प्रचलित सारे कानून-जाप्ता दीवानी फौजदारी के पहिले पढे, तब उन्हे हरदयाल जी ने व्यवस्थित आधुनिक रूप मे लिखा। इस प्रकार ये इतिहासकार और कानून के जानकार महान् परिश्रमी और विद्वान् पुरुष थे, तब वे ऐसे ऐसे अपने विषय के अनूठे ग्रन्थ लिख गये है। परन्तु मैं पूछता

हू कि इन लोगो को अपने विषय की सामग्री जुटाने मे कितना परिश्रम करना पडा है और पहिले वालो को कितना परिश्रम उठाना पडा था ? उन्हे तो विलकुल नया काम हाथ मे लिया था और एक-एक वात के निर्णय के लिए प्रचुर सामग्री सकलित करनी पडी थी, तव कही वे उस इतिहास को लेखनी-वद्ध कर सके। उन्होने मनगढन्त नही लिखा, फिर भी वे कितने ही सन्दिग्ध स्थलो पर फुटनोट मे लिख गये कि मैं यह वात लिख रहा हू, मगर मुझे यह कल्पित जान पडती है।

हा, तो पहले मैं कह रहा था कि मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल से रक्षावन्धन का प्रादुर्भाव हुआ है और उसी को मैं आज आप लोगो के सामने सुनाना चाहता हूँ। हमारे यहा उपस्थित वृद्धजन तो इस त्योहार के इतिहास की वात को सुनते आये हैं परन्तु आप लोगो मे अनेक नये व्यक्ति भी हैं, उन्हे यह इतिहास पसन्द आयेगा, या नही, यह आप लोग ही निर्णय कर सकते हैं। हमतो वूढे और पुरानी पद्धति के आदमी हैं, अत हमे तो वे ही पुरानी वातें याद आती हैं। परन्तु मैं सोचता हू कि आप लोग सुनने के तो शौकीन है ही। इसलिये इसे सुनकर अपना-अपना मत निश्चित करना, क्योकि सवका अपना दृष्टिकोण अपने-अपने पास है। तो सुनिये—

करो तप, खम सम, दम लाइ—वरे वो लब्धि मुनिराई ॥टेक
कम्पिलपुर जम्बु भरत सागे, देखता मन मोहन लागे।
भूप तिहाँ विष्णु कुँवर भारी, भ्रात लघु महापद्म जारी ॥
प्रवल वली पुण्यात्मा, पाले राज प्रचण्ड।
जो तस आकर करे सामनो,वने तास सतखड ॥
अखडित आज्ञा वर ताई ॥
करो तप, खम, सम, दम, लाई ॥क० १॥

जो मुनि खम, सम और दम से युक्त होते है, वे ही सच्चे साधु कहलाते हैं। खम नाम क्षमा का है, क्रोध का निमित्त मिलने पर भी जिनके हृदय मे क्रोधभाव प्रकट न हो, किन्तु क्षमा भाव वना रहे वे ही सच्चे खमवन्त हैं। इन्द्रियो के विषय के दमन करने को, उन पर विजय पाने को दम कहते हैं और प्राणिमात्र पर समताभाव रखने का नाम सम है। ये तीन गुण तो साधु मे होना ही चाहिए। यदि वह इन तीनो गुणो मे उत्तीर्ण हो गया, तो उसे ससार से ही उत्तीर्ण हुआ समझना चाहिए। और यदि वह इन तीनो मे उत्तीर्ण नही है, तो उसे ससार-सागर मे गोते ही लगाते रहना पडेगा। जो

उक्त तीनो गुणो मे उत्तीर्ण है, तो उसकी साधना सच्ची है, अन्यथा सारी साधना निष्फल है।

पूर्व काल मे इसी भारतवर्ष मे कपिलपुर नाम का एक समृद्धिशाली नगर था। वहा पर पद्मशेखर नामक राजा राज्य करते थे। उनके दो पुत्र थे—विष्णुकुमार और महापद्म। राजा पद्मशेखर के स्वर्गवास के पश्चात् विष्णुकुमार को राज्य का अधिकार मिला, क्योकि जो पाटवी होता है, वह ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। विष्णुकुमार बडे थे और महापद्म छोटे। विष्णुकुमार बडे प्रतापी शासक थे। उनका शासन इतने प्रचण्डरूप से चला कि सर्व ओर के राजा लोग थर-थर कापने लगे और कहने लगे कि अरे, यह तो केसरीसिंह है। यदि हमने जरा भी शिर उठाया, तो यह हमारा नामो निशान भी नही रहने देगा। यह तो शत्रुओ के लिए यमराज के समान है। जो उसका सामना करेगा, उसके शरीर के सैकडो टुकडे ही भूमि पर पडे दीखेंगे। राजा लोग कठोर भी होते हैं और मुलायम भी होते हैं। परन्तु अधिकतर कठोर स्वभावी ही होते हैं, क्योकि कठोरता के बिना राज्य-शासन नही चल सकता है। अत शासक को कठोर होना भी चाहिए।

> 'अन्यदा आयुधशाला मे, चक्र भयो उत्पन्न आला मे।
> चढ्यो महा पद्म चक्र लारे, साध लिए षट्खड जो सारे॥
> बत्तीस सहस नृप साथ मे, वाहनी अति विस्तार।
> डेरा कम्पिलपुर बारै दीधा, ऋद्धि अपरम्पार॥
> असुर सुर नर सेवक ताई॥क० २॥

बडे भाई का राज्य-शासन उत्तम रीति से चल रहा था। कुछ दिनो के पश्चात् उसका छोटा भाई महापद्म जो युवराज था, वह भी युवावस्था को प्राप्त हुआ। एक दिन आयुधशाला मे चक्ररत्न प्रकट हुआ। देवता के प्रसाद से उसमे से हजारो ज्वालाए और लपटें निकल रही थी। महापद्म ने देखा कि यह क्या प्रकट हुआ है, और कौतुहल-वश होकर उसे हाथ लगाया, तो उसकी ज्वालाए एक दम शान्त हो गई। पुरोहित-ज्योतिषी ने बताया कि आपके पुण्य-प्रताप से यह चक्ररत्न प्रकट हुआ है, अब इसके प्रताप से आप दिग्विजय करके सार्वभौम चक्रवर्ती बनेंगे। यह सुनकर महापद्म उस चक्र-रत्न को आगे करके एक बडी सेना लेकर उसके पीछे दिग्विजय करने के लिए निकला, राजाओ के ऊपर उसने चढाई प्रारम्भ कर दी। चक्ररत्न जिस ओर जाता, वह महापद्म भी उसके पीछे पीछे जाता और सहज मे ही विजय

प्राप्त कर लेता। इस प्रकार सारे भारतवर्ष मे परिभ्रमण करके उसने छहो खण्डो पर विजय प्राप्त कर ली और बारह तेले करके उसने छहो खण्डो मे अपनी दुहाई फेर दी। तेरहवाँ तेला राजधानी का होता है, अत' जब वह दिग्विजय करके और बत्तीस हजार राजाओ को अपना आज्ञानुवर्ती बनाकर अपनी राजधानी मे लौटा और चक्ररत्न को वापिस आयुधशाला मे स्थापित करने के लिए तेरहवा तेला किया। तेला करने के पश्चात् भी वह चक्ररत्न आकाश से नीचे नही उतरा और वही। ऊपर ही ऊपर घूमता रहा। आगे कहा गया है कि—

> महोत्सव चक्र तणो करियो, तदपि नहीं नीचो उतरियो।
> पूँछ्या सू मालूम ही पाई, आन नहीं मानै वड़ भाई॥

भाई चक्रवर्ती को कौन नही पहिचानता है ? उसके पास नौ निधिया और चौदह रत्न होते हैं। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसे नमस्कार करते है। उसके पास चौरासी लाख हाथी, ८४ लाख घोडे ८४ लाख रथ और छियानवे करोड़ पैदल सैनिक होते है। जब महापद्म ने देखा कि तेला करने पर भी चक्ररत्न ने नगरी मे प्रवेश नही किया है, तब उसने अपने प्रधान सेनापति से इसका कारण पूछा। उसने बताया कि आपकी आज्ञा की दुहाई,बाहिर तो सर्वत्र फैल रही है, परन्तु घर मे दुहाई नही चल रही है। विष्णुकुमार नही झुके हैं और जब तक वे आपकी आन नही मानेंगे, तब तक यह चक्र रत्न नगर मे प्रवेश नही करेगा। महापद्म ने सेनापति से कहा— आप जाकर विष्णुकुमार से कहिये कि वे मेरी आन मान लें। सेनापति गया, विष्णुकुमार को नमस्कार किया और कहा कि चक्रवर्ती महाराज महापद्म दिग्विजय करके नगर के बाहिर पधार गये है। आप अभी तक भी उनकी अगवानी के लिए नही पधारे हैं, सो यह ठीक नही है। अब जाकर उनकी अगवानी कीजिए। परन्तु विष्णुकुमार तो भारी अभिमानी थे। अत सेनापति से बोले—मेरा मालिक कौन है ? मैं ही सबका मालिक हू। और फिर वह महापद्म तो मेरा छोटा भाई है, उसे पाल-पोषकर मैंने ही बडा किया है। फिर भी वह मुझे अपनी अगवानी के लिए बुलाता है ? जा, और उससे कहना कि उसे इतना अभिमान आ गया है, जो मुझे ही बुलाता है। सेनापति ने कहा—महाराज, उन्हे अभिमान नही आ गया है, किन्तु चक्ररत्न आयुध-शाला मे प्रवेश नही कर रहा है, इसलिए उन्होने कहलवाया है। इसमे आपको कोई आपत्ति भी नही होनी चाहिए। उन्हे आपका राज्य नही लेना है। बस

वहा चलकर इतना सा कह दीजिए कि हम महापद्म चक्रवर्ती की आज्ञामे है। विष्णुकुमार बोले—वह मुझे अपनी आज्ञा मे लेना चाहता है? यह उत्तर सुनकर सेनापति ने रोष मे आकर कहा—महाराज, आप क्या है? अरे छह खण्ड के नाथ भी उनके चरणो मे पडे हैं, तो आप किस गिनती मे हैं? इस प्रकार सेनापति ने दो-चार कठोर शब्द भी कह डाले। वापिस जाते समय सेनापति ने कहा—आप आज चार घडी मे भली भाति से सोच लीजिए? व्यर्थ मे क्यो मनुष्यो को मरवाते है? यह कह कर सेनापति वापिस चला आया। अब विष्णुकुमार ने सोचा—मैं सामने जाकर छोटे भाई के चरणो मे झूकूँ, यह मुझसे नही हो सकेगा? और राज्य मे रहते हुए नही झुकू, तो यह भी सम्भव नही है। फिर मैंने सुन रखा है कि इस क्षेत्र मे इस काल मे बारह चक्रवर्ती होगे, सो यह महापद्म चक्रवर्ती बना है, जिसे उसके छह खण्डो के भीतर कही भी रहना है, उसे चक्रवर्ती की आज्ञा पालनी ही होगी। अब मैं आज्ञा का पालन करू, या फिर युद्ध की तैयारी करू? उसने दोनो बातो पर खूब विचार किया और अन्त मे निर्णय किया कि ये दोनो ही बातें गलत है। युद्ध करके खून की नदियाँ बहाना उचित नही। फिर अन्त मे विजय तो उसी की होगी—जिसकी पच्चीस हजार देवता सेवा कर रहे हैं। उनकी तुलना मे तो मैं कुछ भी नहीं हू। और मुझे झुकना भी नही है। अब मैं क्या करूँ? मुझे क्या करना चाहिए, कुछ समझ नही पडता है।

ममत्व तज संयम ले लीनो, राज सब चक्री को दीनो।
तपस्या दुष्कर ली धारी, आत्मवश कीनी है भारी॥
लब्धियो के ई उपनी, करे गगन गतिविहार।
शंका सारा संघ मे हरे, मुनियो में सरदार॥
नमै पद नर सुर नित आई॥क० ४॥

थोडी देर तक इस प्रकार ऊहापोह करने के बाद विचार आया कि मैंने राज्य तो बहुत समय तक किया और खूब शान से किया है। अब नही झुकना है, तो उसका एक ही मार्ग है कि दुनिया की ममता मे मुख मोडकर और गृहस्थाश्रम को धूल मे फेंककर के त्यागमय सयमी जीवन बिताऊ। यह विचारते ही विष्णुकुमार ने सब राज-पाट और घर-बार से ममत्व छोडा, सबसे नाता तोडा, वस्त्राभूषणो को फेंका और केशो का लुचन कर लिया। यह देख मन्त्रियो और राज्य के अन्य पदाधिकारियो ने कहा—महाराज, यह क्या कर रहे हैं? विष्णुकुमार बोले—अभी तक तो मैंने तुम लोगो का काम

किया, अव अपना काम कर रहा हू । यह समाचार चक्रवर्ती के कानो तक पहुचा । वे विचारने लगे—अरे, मेरा एक ही तो भाई, और वह भी ससार को छोडकर चला जा रहा है । चाणक्य ने कहा भी है—

अपुत्रस्य गृहशून्य, दिशा शून्या विभ्रात्रिका ।
मूर्खस्य हृदयंशून्य, सर्वशून्यं दरिद्रता ॥

जिसके लडका नही, उसका घर सूना है, जिसके भाई नही, उसके लिये दिशा शून्य है, जिसमे विवेक नही, उसका हृदय सूना है और और जिसके पास दो पैसे नही, उसके लिए सव कुछ सूना है ।

महापद्म उक्त समाचार सुनते ही भाई के पास दौडे आये । परन्तु यहा आकर देखते हैं कि भाई ने तो साधु का वेप ही धारण कर लिया है । उन्होने वडे विनम्र शव्दो से कहा—भाई, आप सम्पूर्ण राज्य ले लो, मैं राज्य नही करु गा,अव आप ही राज्य का सचालन कीजिए । विष्णुकुमार ने कहा—आप चक्रवर्ती हैं,अत· आपही छह खण्ड का राज्य करो । मुझे अव राज्य से कोई दरकार नही है । जो कच्चे होते हैं, वे ही छोडी वस्तु की ओर पीछे फिरकर देखते हैं । किन्तु जो पक्के होते है, वे छोडी वस्तु को पीछे मुडकर नही देखते, वे तो जिस मार्ग को पकडते हैं उस पर आगे वढते हुए ही चले जाते हैं । फिर क्या था—

उतर पड़े मैदान में—प्रभू करे सो होय

भाई, जो शूरवीर युद्ध के मैदान मे उतर पडता है, वह फिर पीछे की ओर नही देखता है । इस प्रकार विष्णुकुमार साधु वनकर राजमहल से जगल को चले गए । जो साधु वन जाते है, वे यदि समाज की और धर्म की सेवा नही करें और तपस्या भी नही करें, तो उनका जीवन तो 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' जैसा ही है । लोगो की यह उक्ति उन पर चरितर्थ होती है कि' दिल्ली गए, तो क्या किया, कि भाड ही झोकी ।' और भी कहावत उनपर लागू होती है कि—

'जोग सजा नहीं, भोग सजा नहीं सजी न ह्वाली वेष ।
दोई गमाई वूमना, मुद्रा ने आदेश ॥१॥

ऐसे लोग न घर के रहते हैं और न घाट के । भाई, जव साधुपना ले लिया और भगवान के मार्ग पर आ गये, तव तो उन्हे आत्मा का कल्याण करना चाहिए और समाज की भी यथाशक्ति सेवा करनी चाहिए । जो जिस पद पर अव स्थित है, उसे अपने पद के गौरव का पूरा ध्यान रखना चाहिए ।

अब विष्णुकुमार मुनि ने मास-मास खमण की तपस्या प्रारम्भ कर दी। और इतनी कठोर साधना की कि उन्हे कई विशिष्ट लब्धिया उत्पन्न होगई— वैक्रिय लब्धि तथा आकाशगामिनी लब्धि भी प्राप्त हो गई। वे महान् सयमी तो थे ही, फिर ऋद्धि-सिद्धि क्यो न हो ? आज आप लोग कहते है कि महाराज, चमत्कार को नमस्कार होता हैं, सो इस चमत्कार से सब मुनियो मे अग्रणी हो गये। अब क्या हुआ कि—

आया आया रे आचारज मोटा, धर्म घोष महाराज।
धर्म घोष महाराज सांची, भव सागर की जहाज ॥टेर॥

एक बार वे धर्म घोष महाराज अपने सात सौ मुनियो के सघ के साथ कपिल पुर नगर मे पधारे। वहा आकर उन्होने जिनेन्द्र भगवान की सर्व जीव-कल्याणकारी धर्मोपदेशना प्रारम्भ की और सारी जनता ने उनके वचनामृत का पान किया। राजा महापद्म के अनेक मत्री थे। जैसे आज भी केन्द्र मे और प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल है और प्रत्येक मत्री के ऊपर अलग-अलग विभागो को सभालने का उत्तरदायित्व होता है, उसी प्रकार महापद्म चक्रवर्ती के भी विभिन्न विभागो के सभालने वाले अनेक मत्री थे, क्योकि छह खण्ड पृथ्वी पर शासन करना कोई आसान बात नही है। उन सब मत्रियो मे नमुचि नाम का एक प्रधान मत्री था, उसने अपने बुद्धिबल से राज्य मे अनेक ऐसे काम किए थे, कि जिनसे प्रसन्न होकर महापद्म ने उससे कहा—कि मैं तेरे कार्यों से बहुत प्रसन्न हू, तू जो भी अभीष्ट वर मागना चाहे, माग ! मैं देने को तैयार हू। नमुचि ने कहा—महाराज, आप इस वर को अपने श्री भण्डार मे सुरक्षित रखिए, जब मुझे आवश्यकता होगी उस समय माग लू गा। नमुचि अत्यन्त बुद्धिमान होने पर भी महा नास्तिक था, वह स्वर्ग-नरक, पुन्य-पाप और ईश्वर-आत्मा आदि को नही मानता था। जब धर्मघोप महाराज के धर्मोपदेश का समाचार महापद्म ने सुना, तो उसने भी उनकी वन्दना और धर्मदेशना का लाभ लेने का विचार किया। महापद्म ने नमुचि से कहां—यहा पर धर्मघोष महाराज पधारे हुए है, हम उनके उपदेशामृत का पान करने जा रहे हैं, तुम भी साथ चलो। वह बोला—महाराज, इन साधुओ मे क्या रखा है ? ये क्या निहाल करेंगे। महापद्म के आग्रह करने पर नमुचि उनके साथ धर्मघोष महाराज के समीप गया। उस दिन दैवयोग से गुरुदेव ने जीव के अस्तित्व पर और स्वर्ग-नरक, पुण्य-पाप आदि के अस्तित्व पर धर्मोपदेशना दी। उनके द्वारा किया गया नास्तिक मत का खण्डन और आस्तिक मत का मण्डन सुनकर सारी जनता मन्त्र-मुग्ध होकर चित्र-लिखित-सी रह

गई। सर्व लोग वाह-वाह कह उठे और बोले कि गुरुदेव ने तो इस प्रकार धर्म-देशना की है कि हमारी सारी शकाएँ दूर हो गई है। परन्तु यह उपदेश, सुनते ही नमुचि मत्री के तो बिच्छू ने मानो डक मार दिया हो, ऐसा-हो गया। वह उठ खडा हुआ और कहने लगा कि यदि महाराज नाराज न हो, तो मैं एक-दो प्रश्न पूछना चाहता हू ? आचार्य ने कहा – तुम सहर्ष पूछ सकते हो, इसमे हमारी नाराजी की क्या बात है ? उसने पूछा—

"भस्मीभूतस्य देहस्य-पुनरागमन कुत ?"

महाराज, जब देहान्त होने पर हमारा शरीर ही जल-बल करके राख हो जाता है, तब फिर आने-जाने वाला कौन रहा ? यह चेतना शक्ति, जिसे आप आत्मा कहते है, वह तो पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार भूतो के समुदाय रूप शरीर मे उत्पन्न हुई थी, सो शरीर-नाश के साथ ही उसका भी नाश हो जाता है, अत आत्मा या जीव नाम की कोई वस्तु नही है, सर्व-जगत् ही शून्य है। आचार्य ने कहा—मन्त्रिराज, तुम्हारा ऐसा समझना भूल है। पृथ्वी आदि चारो भूत तो शरीर के सर्जक है, आत्मा के नही। जैसे गाडी और गाडीवान ये दो भिन्न-भिन्न है, उसी प्रकार जीव और शरीर ये दोनो भिन्न-भिन्न है। जैसे गाडी अचेतन है और गाडीवान् जो उसे चलाता है वह सचेतन और गाडी से भिन्न है, उसी प्रकार यह शरीर भी गाडी के समान अचेतन है और उसका जो गाडीवान के समान सचालक है, वह जीव उस शरीर से सर्वथा भिन्न है। सुनो—

'अजङ्गमं जङ्गम नेय यन्त्रं यथा, तथा जीवधृतं शरीरम्।

अर्थात् जैसे अजगम-जड यत्र किसी जगम प्राणी के द्वारा चलाये जाने पर चलता है, उसी प्रकार यह जड शरीर भी जीव के द्वारा ही सचालित हो रहा है। और जो तुम कहते हो कि यह चेतना शक्ति तो भूत-चतुष्टय के सयोग से उत्पन्न हो जाती है, सो भाई, जब एक-एक भूत मे चेतनाशक्ति हो, तो उनके सयोग होने पर उसका सद्भाव या आविर्भाव माना जा सकता है। किन्तु जब इन भूतो मे पृथक्-पृथक् कोई चेतना शक्ति दृष्टिगोचर नही होती है, तब उनके सयोग मे कैसे मानी जा सकती है ? फिर यह भी देखो कि तत्काल के उत्पन्न हुए बालक को दूध पीने की इच्छा क्यो होती है ? एक ही माता-पिता से उत्पन्न हुए बालको मे बुद्धि की हीनाधिकता क्यो देखी जाती है, उनकी वाणी और काया मे भेद क्यो पाया जाता है, इत्यादि बातो से सिद्ध होता है कि परलोक कोई वस्तु है, और वहाँ से जो प्राणी जैसे सस्कारो को लेकर के आता है, उनके कारण ही यहा पर एक साथ उत्पन्न होने वाले

और एक ही माता-पिता से उत्पन्न होने वाले भाई-बहिनो मे अन्तर दिखाई देता है। इस प्रकार नाना युक्तियो से आचार्य महाराज ने परलोक और पुण्य-पापादि का सद्भाव सिद्ध कर दिखाया और कहा कि अपने उपार्जित पुण्य-पाप के अनुसार ही यह जीव स्वर्ग-नरकादि चतुर्गति रूप ससार मे घूमता रहता है। नमुचि गुरुदेव के इन अकाट्य और प्रबल युक्तियो से भरे हुए उत्तर को सुनकर निरुत्तर हो गया। मन ही मन बहुत ही रुष्ट हुआ और बदला लेने की गाठ उसने मन मे बाध ली और विचार किया कि अवसर आने पर मैं इनसे अपने अपमान का बदला अवश्य लूगा। इस प्रकार विचार करके वह अपने घर चला गया।

आचार्य धर्मघोष महाराज के प्रवचनो से जनता बहुत प्रभावित हुई और उसने निवेदन किया कि इस वर्ष का चातुर्मास यही पर किया जावे। आचार्य श्री ने जनता के अति आग्रह पर चौमासा इसी नगर मे करने की स्वीकृति दे दी और कुछ दिनो तक समीपवर्ती ग्राम और नगरो मे विहार करके आषाढ सुदी १३ के दिन चातुर्मास के लिए वहा पधार गये। इसी समय विष्णुकुमार मुनिराज ने आचार्य महाराज से निवेदन किया कि मुझे चातुर्मास के समय मेरुचूलिका पर जाकर ध्यान करने की आज्ञा प्रदान की जावे। आचार्य श्री ने उन्हे वहा जाकर ध्यान करने की आज्ञा दे दी। विष्णुकुमार मुनिराज चार मास का उपवास करने की तपस्या का नियम लेकर विद्याबल से उड़कर ध्यान करने के लिए मेरुचूलिका पर चले गये। इधर सारा मुनि सघ भी चातुर्मासिक योग ग्रहण कर वहीं अवस्थित हो गया। सघ के सभी साधु साध्वी अपने ध्यान और अध्ययन मे सलग्न हो गये, आचार्य धर्मघोष के धर्मोपदेश की सारे नगर मे धूम मच गई। श्रोताजनो की सख्या दिन पर दिन बढने लगी और धार्मिक जन धर्मामृत का पान कर के हर्ष से विभोर हो गये। महाराज महापद्म भी जब कभी उनके प्रवचन सुनने को जाते और धर्मोपदेशना सुनकर अपने जीवन को धन्य मानते। इस प्रकार आचार्य महाराज और उनके समस्त सघ की महिमा-गरिमा सुगन्धित पुष्पो के समान सर्वत्र व्याप्त हो गई। नमुचि मन्त्री से यह नही देखा गया। उसे धर्म-प्रभावना असह्य हो गई और आचार्य-द्वारा पराजित होने का बदला लेने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा मे रहने लगा।

एक दिन उसने अवसर पाकर महाराज महापद्म से निवेदन किया कि महाराज, आपके भण्डार मे आपके द्वारा दिया हुआ जो वरदान सुरक्षित है, वह अब मैं लेना चाहता हूँ। महाराज ने कहा—हा, तुम जो मांगोगे,

वही मिलेगा। बोलो क्या चाहते हो ? न मुचि नेकहा—महाराज, मुझे केवल सात दिन के लिए छहो खण्डो का राज्य दिया जावे। नमुचि के ये वचन सुनते ही महाराज महापद्म का माथा ठनका और सोचा कि न मालूम, अब यह क्या करेगा। परन्तु वे वचन-बद्ध थे, अत उसे सात दिन के लिए राज-पाट सोपकर अपने अन्त पुर मे चले गये। राज्य सिंहासन बैठते ही नमुचि ने नगरपाल को आज्ञा दी कि धर्मघोप आचार्य को मेरे पास बुलाकर लाओ। नगरपाल गया और उनसे आकर निवेदन किया कि महाराज, राज्य के नये अधिपति नमुचि महाराज ने आपको बुलाया है, सो मेरे साथ चले ? आचार्य ने कहा—भाई, हम साधु लोगो को राज-दरबार मे जाने की क्या आवश्यकता है ? हमे महाराज से क्या लेना-देना है। नगर-पाल ने कहा—महाराज, सात दिन के लिए बने हुए सम्राट नमुचि महाराज का यह आदेश है कि आपको राज-दरबार मे हाजिर किया जावे। कुछ सोच-विचार कर आचार्य महाराज राज-दरबार मे गये। उनके वहा पहुचने पर नमुचि न तो अपने आसन से उठा और न आदर-सत्कार के कोई वचन ही मुख से कहे। फिर भी आचार्य ने बडी शान्ति से पूछा—कहिये राजन्, हमे कैसे बुलाया है ? नमुचि बोला—अब तुम और तुम्हारा सघ मेरे छह खण्ड मे नही रह सकता है, क्योंकि मुझे यहा पर एक महान् यज्ञ करना है, और उसके लिए तुम लोग अपशकुन-स्वरूप हो और विधर्मी होने से विघ्न-कारक हो। अत या तो तुम लोग मेरे छह खड राज्य से बाहिर चले जाओ। अन्यथा अपने धर्म को छोडकर मेरा धर्म अगीकार करो। यदि इन दोनो बातो मे कोई भी बात तुम्हे स्वीकार नही है, तो घानी मे पिलने के लिए तैयार हो जाओ। मेरे ये तीन आदेश है। इनमे से जो तुम्हे पसन्द हो, उसे स्वीकार करो, अन्यथा तुम्हारी और तुम्हारे सघ की कुशल नही है। आचार्य ने कहा—जो सभव होगा, वह हमे स्वीकार्य होगा। परन्तु सोच-विचारने लिए राजन्, हमे कुछ समय तो मिलना चाहिए। नमुचि ने कहा—अच्छा, दो घडी का समय मैं तुम्हे सोचने के लिए देता हू। यदि समय के भीतर आपका कोई उत्तर नही आया, तो सारे सघ के साथ आपको घानी मे पिलवा दिया जायेगा। आचार्य महाराज यह सुन करके चुपचाप अपने स्थान पर लौट आये। सारे नगर मे यह दु खद अति भयकर समाचार बिजली के समान चारो ओर फैल गया। नगर-निवासी लोग विचारने लगे कि यह कैसा दुष्ट और नास्तिक राजा राज्यसिंहासन पर बैठा है, कि जो साधुओ के प्राण लेने पर ही उतारु हो गया है। अब हम लोग करें तो क्या करें ? चक्रवर्ती राजा के ऊपर किसकी बात चल सकती है ! हाय, अब क्या होगा ?

आचार्य धर्मघोष महाराज ने उद्यान मे पहुचकर सर्व सघ को बुलाया और नमुचि के साथ हुए सारे वार्तालाप को सुनाकर कहा—साधुओ, अब उपदेश देने से काम नही चलेगा। अब आप लोग बतावें कि क्या किया जावे ? हम लोगो को अपने प्राण चले जाने की चिन्ता नही है। किन्तु अपने सघ के पीछे जो इतनी बडी समाज है, उसका क्या होगा। यदि अपने सात सौ मर भी जायें, तो भी कुछ बात नही है। पर यह दुष्ट अपने लोगो को मार करके ही शान्त नही होगा, बल्कि सारे जैन धर्मानुयायियो पर भी न जाने, क्या क्या आपत्तियाँ ढोयेगा ? उसकी रक्षा कौन करेगा ? यो तो सारे ही साहूकार, पडित और साधु, सभी अपने को बडा करामाती मानते हैं, परन्तु अवसर आने पर ही पता चलता है कि कौन करामाती है और कौन नही ? आचार्य महाराज की यह बात सुनकर सब साधु बोले—महाराज, हमारे तो आप ही आचार्य हैं. सघ के रक्षक और सचालक है। आपका जैसा आदेश हो, हम लोग उसे ही करने के लिए तैयार हैं। परन्तु करामात की जो बात आपने कही, सो यदि वह आपके ही पास नही है, तो हम लोगो के पास कहा से आ सकती है। किन्तु महाराज, यदि इस समय कोई चमत्कार नही दिखाया गया, तो सारा जैन समाज नष्ट हो जायेगा ? इसलिए कोई न कोई चमत्कार दिखाना ही चाहिए।

भाइयो, आप लोग जानते ही हैं, कि जब धर्म पर कोई प्रबल सकट आकर के उपस्थित होता है, तब कोई न कोई महापुरुष आकर के उसे दूर करता ही है। जब यह बात चल रही थी, तब एक छोटे साधु ने कहा—महाराज, मेरे भीतर और कोई शक्ति तो नही है, परन्तु जहाँ विष्णुकुमार मुनि ध्यान लगाकर खडे है, वहाँ मैं जा सकता हू। परन्तु वहाँ से वापिस आने की शक्ति मेरे भीतर नही है। आचार्य ने उससे कहा—तू जल्दी ही उनके पास जा और वापिस तो वे तुझे अपने साथ ले ही आवेंगे। वह साधु अपने विद्याबल से उडा और मेरुचूलिका पर जा पहुचा।

भाइयो, अभी तो वैज्ञानिक लोग चन्द्रलोक मे गये हैं तो लोगो ने गाल फुला दिये। परन्तु वे लोग कही न कही गये अवश्य हैं। और इसके लिए वे तो क्या कहें, किन्तु जो जैनो के आश्रित हैं, उनके दिये वस्त्र पहनते हैं, उनकी दी हुई रोटी खाते है और उनसे अपने झूठे जयजयकार करवाते हैं, उनके भी मस्तिष्क खराब हो गये है और वे कहने लगे है कि जैनियो के शास्त्रो मे लिखी भूगोल-खगोल की बातें झूठी हैं। परन्तु झूठी कैसे है ? हा, अविवेकियो के लिए ये सारी बातें झूठी है। जैसे सावन के अंधे को चारो

ओर हरियाली ही दिखती है। अब यदि वह कहै कि ससार मे हरे रग के सिवाय कोई दूसरा रग है ही नही। परन्तु जिनके आँखें हैं, वे तो पाचो ही रगो का सद्भाव कहेगे। किन्तु अन्धा तो एक ही रग बतायेगा कि चारो ओर काला ही काला रग हैं। परन्तु भाई, जैन शास्त्रो के एक एक वचन सत्य हैं। परन्तु जो लोग उन्हें झूठे वतलाते है, तो समझ लो कि वे चन्द दिनो मे ही कपड़े पहिन कर जाने वाले हैं। आपने मद्रास के भानू मुनि की बात सुन ली है। इसी प्रकार औरो की भी सुन लेना। यदि धीरे धीरे बाध मे पानी आयेगा, तो टिक जायगा। अन्यथा दूसरो को भी ले डूबेगा।

हा, तो विष्णुकुमार मेरुचूलिका पर ध्यानस्थ खड़े थे। किन्तु 'निस्सही' और 'मत्थएण वदामि' ये शब्द कानो मे पडते ही वे विचार मे पड गये। यद्यपि उनका ध्यान-योग तो पूरे चातुर्मास भर का था,परन्तु उक्त शब्द सुनते ही उन्होने ध्यान पारा और आखें खोल कर देखा कि एक सन्त सामने खडा है। विष्णुकुमार ने पूछा—तुम यहा कैसे आये हो ? उस मुनि की आखो मे से आँसू निकल पड़े और कुछ कह सकने की हिम्मत नही रही। विष्णुकुमार ने कहा—हे मुने, कहो, क्या बात है ? तुम्हारे नेत्रो मे आसू क्यो आ रहे है ? मुनि ने कहा—हे महामुने, आज भरत क्षेत्र मे जिन शासन की नैया मझधार मे है और जैन समाज की भी नैया बीच भवर मे फस चुकी है। अब आपके सिवाय उसका कोई खेवनहार नही है। हे महामुने, यदि आपने चलने मे एक क्षण का भी विलम्ब किया, तो नैया डूब जावेगी। विष्णुकुमार ने पुन पूछा कि बात क्या है, कुछ तो बताओ। वह मुनि बोले—यह सब कुछ आपको वही चलने से ज्ञात हो जायेगा। इस समय आचार्य धर्मघोप महाराज, सारे मुनिगण और सारी समाज घोर सकट मे हैं। यह सुनते ही विष्णुकुमार ने उसी समय मुनि की अगुली पकड़ी और आकाश मे ले उड़े। कुछ ही क्षणो मे वे कपिलपुर के उद्यान मे जा पहुचे।

भाइयो, यह है जैनमुनियो की करामात। वे ऐसे ही कोरे नही थे, किन्तु जैन शासन के रक्षक सच्चे सजग प्रहरी थे, तभी तो आज तक हमारा जैन समाज टिक सका है और जैन-धर्म का अस्तित्व रह सका है उन करा-मातियो की करामात से। हमारे जैसे रोटिया खाने वालो से नही टिका है। परन्तु आज तो हमारे सन्त कहते है कि करामात हमको कल्पे नही, तब तो हो गई धर्म की पूरी प्रभावना ? भाई, तुम्हारे भीतर रखा ही क्या है ? तभी तो नही कल्पे की बात करते हो। परन्तु कहा जाता है कि यदि गनगौर के

समय ही घोडे काम नही आये, तो वे फिर कब काम आवेंगे ? अरे, धर्म के लिए, समाज के लिए अपने प्राण हैं। इनकी रक्षा के लिए और उन्नति के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दो। यही समाज और धर्म की सच्ची सेवा है।

सघ ने ज्यो ही विष्णुकुमार मुनिराज को आया हुआ देखा तो सारे मुनियो के दिल हरे-भरे हो गये और उनके हृदयो मे आशा का सचार हो गया। अरे, जब बसन्त ऋतु आती है, तब वन के सारे वृक्ष नव पल्लवित हो जाते हैं। इसी प्रकार सारा सघ और समाज प्रमुदित हो उठा। सबके अशान्त चित्तो मे शान्ति की लहर दौड गई। भाई, ऐसे घोर सकट के समय अलौकिक शक्ति की आवश्यकता होती है। विष्णुकुमार गुरुदेव के पास गये और उन्हें वन्दन करके कहा—गुरुदेव, शिष्य को कैसे स्मरण किया है ? तब आचार्य महाराज ने कहा—विष्णुकुमार, आज सारा मुनिसघ और सारा जैन समाज घोर सकट मे पड गया है। यदि इसी समय कोई समुचित उपाय नहीं किया गया, तो सारा मुनि संघ घानी मे पिलवा दिया जायगा। नमुचि चक्रवर्ती हम सब को छह खण्ड से निकलवाना चाहता है। नही निकलने पर धर्म को छोडने की कहता है। और दोनो के नही होने पर घानी मे सब को पिलवा देने की कहता है। यह धर्म पर और मुनि सघ एव समाज पर भयकर आपत्ति आई है। अब सोचो कि क्या किया जाय ? आचार्य के वचन सुन कर विष्णुकुमार बोले—महाराज, आप धर्म का खूब प्रचार कीजिए, आपको किसी प्रकार की चिन्ता करने की तथा भयभीत होने की कोई आवश्यकता नही है। गुरुदेव, जो भी जैन शासन की ओर अगुली दिखायेगा उसका नामो निशान भी ससार मे नही रहेगा। इस प्रकार कह कर और गुरुदेव को आश्वासन देकर विष्णुकुमार वहा से उडे और सीधे महाराजा महापद्म की ड्योढी पर पहुचे। और उनसे बोले—महापद्म, तुमने यह क्या किया है ? इस नमुचि मत्री को राज्य की बागडोर देने से तो यहा पर साधुओ का रहना ही कठिन हो गया है। अपने नगर मे साधुओ का चौमासा कराकर क्या तुम जैन शासन को समाप्त ही करना चाहते हो ? और क्या जैन समाज को मरवाना चाहते हो ? विष्णुकुमार मुनि के ये वचन सुनकर महापद्म बोले—मुनिराज, आप चाहे कुछ भी कहिये और चाहे कुछ भी कीजिए। परन्तु मैं वचन-बद्ध होने से विवश हू और इसीलिए कुछ भी करने मे असमर्थ हू। मेरे हाथ कटे हुए हैं, अत सात दिन तक तो मैं कुछ भी नही कर सकता हू। उसके पश्चात् जो भी सभव होगा, वह अवश्य करूगा। विष्णुकुमार कुछ उत्तेजित होकर बोले—अरे पगले, रविवार के भूखे को सोमवार कब आयेगा ? तू कहता है कि मैंने वचन दे दिया है, सो अब तुझ से कुछ नही होगा। अब

मुझे ही कुछ उपाय करना होगा। यह कह कर विष्णुकुमार नमुचि के पास गये। उसने झट सिंहासन से उतर कर और उनके सम्मुख जाकर कहा— आइये विष्णुकुमार जी आइये ! विष्णुकुमार ने कहा—रे नमुचि, तू साधुओ को क्यो दुःख दे रहा है ? वह बोला – महाराज, आपके साधु कभी स्नान नही करते, मैले-कुचेले रहते हैं, इसलिए वे मेरे राज्य मे नही ठहर सकते हैं। मुझे यज्ञ करना है, उसके लिए पवित्र वातावरण होना आवश्यक है। यह सुनकर विष्णुकुमार ने कहा – अरे अज्ञानी, जैनो के साधु तो आत्मध्यान मे निरत रहते हैं, उन्हें शरीर से ममता नही होती है, अत वे उसकी सार-सभाल नही करते हैं, क्योकि यह शरीर रक्त-पित्त कफादि से और मल-मूत्र, चर्बी आदि से भरा हुआ है। लाखो प्रयत्न करने पर भी वह कभी शुचिता को प्राप्त नही हो सकता है। किन्तु जो सारे दिन गाजा-तम्बाकू की फूकें मारते रहते हैं और साबुन लगा-लगाकर शरीर और वस्त्रो को शुद्ध रखते है उनके तो भुआ जी ही फूकें मारती हैं। अरे, साधुओ के तो सदा ही ब्रह्मचर्य का स्नान है। किन्तु जो स्नानादि मे सलग्न रहते हैं, उनके साधुपना कहा सभव है ? तू बता, क्या चाहता है ? विष्णुकुमार के ये वचन सुनकर नमुचि बोला—मैं इन साधुओ को तो अपने राज्य मे नही रहने दूगा। विष्णुकुमार ने कहा—तेरा राज्य तो इक्कीस लाख कोस मे है, बता, ये साधु कैसे उससे बाहिर जा सकते हैं ? यह सुनकर नमुचि बोला – तो फिर ये लोग अपना धर्म छोड करके मेरा धर्म स्वीकार करें। विष्णुकुमार ने कहा—नमुचि, यह तेरी जबर्दस्ती है, तेरे हाथ मे सत्ता है, इसलिए तू इस समय सब कुछ कर सकता है। परन्तु यह तो बता कि मुझे भी रहने देगा, या नही। नमुचि बोला—आप महाराज महापद्म के भाई हैं, इसलिए आपके रहने के लिए तीन कदम भूमि दे सकता हू। आप चाहे तो उसके भीतर सब साधुओ को रख सकते हैं। किन्तु उसके बाहिर यदि किसी की अगुली भी दिखेगी तो वह काट दी जायगी। विष्णुकुमार ने तीन कदम भूमि लेना स्वीकार कर लिया और नमुचि ने सकल्प का जल छोड दिया। अब विष्णुकुमार मुनि ने क्या किया —

विष्णु कुंवर—लावदे ढाइ पाव धरणी, नीच ! मत भटना धी हरणी।
मार दे मुनियो को जाया, इसा नहि वेदण मे आया ॥

दोहा

लब्धि फोरी मुनिवरू, उत्तर वैक्रिय कोध।
एक पैर जगती धरचो सरे, दूजो वनिता दीध ॥
तीसरा वैताढ्य पे जाई ॥९०॥

हे नमुचि, हे पापात्मन्, तू सात सौ मुनियो को घानी मे पेल सकता है, तो देख—मैं भी क्या कुछ कर सकता हू ? यह कहकर विष्णुकुमार ने अपनी वैक्रीय लब्धि से शरीर को बडा किया और एक कदम तो रखा वैताढ्य पर्वत पर और दूसरा कदम रखा जम्बूद्वीप की जगति पर्वत पर। फिर विष्णु कुमार बोले—ला तीसरे कदम के लिए भूमि। अब उनके पास भूमि कहा बची, क्योकि उन्होंने दो कदम में ही सारे भरत क्षेत्र को ही नाप लिया। विष्णुकुमार के इस रूप को देखकर सारा ज्योतिर्मण्डल थर-थर कापने लगा, सुर-असुर घबडा गये और भूकम्प होने लगा। सभी लोग 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कहने लगे। निदान तीसरे कदम को भूमि न देखकर विष्णुकुमार ने अपना पैर नमुचि की छाती पर रख दिया। उनके पैर रखते ही नमुचि का प्राणान्त हो गया और वह सातवें नरक मे जा पहुचा। विष्णुकुमार के इस उग्ररूप और प्रबल रोष को देखकर सारे देव-दानव,मनुष्य और पशु-पक्षी तक थर-थर कापने लगे। देवेन्द्रो के आसन कम्पायमान होने लगे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से देखा कि भरत क्षेत्र मे भारी तूफान आया हुआ है, तो अपनी-अपनी इन्द्राणियो के साथ कम्पिलपुर आये। उन्होंने अपनी इन्द्राणियो से कहा—कि विष्णुकुमार के आगे सगीतमय सुन्दर अभिनय करो कि जिससे उनका क्रोध शान्त हो जाय ? अन्यथा पता नहीं, कि सारे ससार का क्या होगा ? इन्द्रो की बात सुनकर सभी इन्द्राणिया सगीतमय मधुर स्वर मे वीणा-वादन के साथ ही उनकी स्तुति करने लगी—हे मुनिराज, आप छह कायिक जीवो के प्रतिपालक हैं, उनके रक्षक है, परम दयालु हैं। आपके सिवाय इनकी कौन रक्षा कर सकता है, आप सब की रक्षा कीजिए, शान्त होइए और हम सबको बचाइए। सारा जगत् आपकी कृपा का आकाक्षी होकर दीन एव करुण नेत्रो से आपकी ओर देख रहा है, इस प्रकार इधर तो इन्द्राणियो और देवाङ्गनाओ ने स्तुति प्रारम्भ की और उधर महापद्म चक्रवर्ती की पटरानी श्री देवी अपनी सब बहिनों के साथ सिर की वेणिया खोलकर और उनसे भूमि को पूजती हुई पूजन की सामग्री थालों मे सजाकर आई और गाती हुई कहने लगी—

> वीरा मारा बांधव मारा दीन दयाल हो।
> वीरा, छह काया का रूखड़ा जी ॥१॥
> थांरे कोपिया थांरे कोपिया हुए सब नाश हो।
> ····वीरा पेखत होवे टूकड़ा जी ॥२॥

---

१. तर्ज . वीरारी

पुन उन्होने अपने सिर की वेणियो से विष्णुकुमार के चरण पूजे और कहा—महाराज, आप दीन-दयाल हैं, छह् काया के रक्षक है, यदि आपने अपने रोष को शान्त नही किया, तो यह सारा ससार भस्म हो जायगा। आपकी महिमा और शक्ति अचिन्त्य है, आप चाहे तो पल भर मे सबको मार दें और चाहे तो पल मे सब को तार दें। कहा भी है—

रक्षा कीजै रक्षा कीजै, दया दिल लाय हो।
बीरा पति भिक्षा, मुझ आपिये जी ॥४॥

हे प्रभो, कृपा करो, हमारी रक्षा करो, हमको तारो और हमे पति की भिक्षा दो। यदि माता भी बालक को मारे और पिता भी मारे, तो फिर कौन बचा सकता है। इस प्रकार विनती करते हुए रानियो ने विष्णुकुमार के सर्व ओर अपने पल्ले बिछा दिये और आसुओ से उनके चरण पखारे। रानियो और इन्द्राणियो के इन करुणा भरे शब्दो को सुनकर विष्णुकुमार मुनि का कोप शान्त हुआ और उन्होने अपना वैक्रियक रूप सकुचित कर लिया और 'अभय, अभय, अभय' शब्द का उच्चारण किया। उनके ये अभय शब्द सुनते ही सारे लोगो के मन मे शान्ति का सचार हुआ और वे एक साथ विष्णुकुमार मुनि का जय-जयकार करने लगे।

विक्रियालब्धि का सकोच कर और सर्व जनता को अभयदान देकर विष्णुकुमार मुनि आचार्य धर्मघोष के सामने गये और उनका चरण-वन्दन किया। आचार्य महाराज ने मस्तक पर हाथ रखकर उनको शाबासी देते हुए कहा—हे विष्णुकुमार, तुमने आज जैनशासन और जैन समाज की ही रक्षा नही की है, अपितु सारे ससार की रक्षा की है। आचार्य महाराज के मस्तक पर हाथ रखते ही उनका रहा सहा क्रोध भी काफूर हो गया। उन्होंने ने कहा—गुरुदेव, मुझे प्रायश्चित दीजिए। क्योकि मेरे वैक्रियिक लब्धि के फोडने से असख्य जीवो की हिंसा हुई है और वह नमुचि को भी जान बूझ कर मैंने मारा है। मेरे से मुनि पद के अयोग्य यह महान् पाप कार्य हुआ है, इसलिए आप दण्ड देकर मुझे शुद्ध कीजिए। आचार्य महाराज ने कहा—आपने सारे सघ की और जैन शासन की रक्षा की है, अत आप धन्यवाद के पात्र हैं। विष्णुकुमार बोले—महाराज, साधु धर्म तो यही है कि जो अपराध बना हो उसे प्रायश्चित्त लेकर के शुद्धि कर ली जावे। आचार्य महाराज ने उन्हे पुन दीक्षित किया। तदनन्तर विष्णुकुमार ने उग्र तपश्चरण किया और समस्त कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

भाइयो, उसी दिन से यह रक्षा बन्धन का पर्व चला आ रहा है। परन्तु

आज इस पर्व को ब्राह्मणो ने अपनी आजीविका का साधन बना लिया है। रक्षा बन्धन का वास्तविक महत्त्व तो यह है कि किसी भी भाई-बहिन या किसी भी प्राणी को यदि आपद्-ग्रस्त देखें—तो तुरन्त जिस प्रकार से भी बने, तन, मन और धन से उसके कष्ट का निवारण किया जावे। यदि हमारी कोई बहिन सकट मे पडी है, तो उससे उसकी रक्षा करे और इसी प्रकार बहिन का भी धर्म है कि वह अपने भाई की रक्षा करे।

रक्षा बन्धन का आज का यह पर्व जिस प्रकार हमे अपने व्यवहारी बन्धुओ की रक्षा का उपदेश देता है, उसी प्रकार निश्चय से अपनी आत्मा की भी राग-द्वेषादि विकारी भावो से रक्षा करने का निर्देश करता है। जब हम इन विभावरूपी शत्रुओ से अपनी आत्मा की रक्षा करेंगे—तभी इस लोक और परलोक मे हमारा जीवन सुखी होगा।

१४
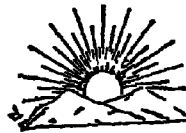
ध्याइये, शुभध्यान... !

जेहि झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं, जम्म-जर-मरणणयरत्तय दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिव सासयं ठाणय, ते महु दितु सिद्धा वरं णाणय ।।

जिन भगवन्तो ने ध्यानरूपी अग्नि-बाणो से जन्म, जरा, मरण रूपी त्रिपुरासुरो के नगरो को जला दिया है और जिन्होने शाश्वत शिव-स्थान को प्राप्त कर लिया है, वे सिद्ध भगवन्त हमे उत्तम ज्ञान को प्रदान करें।

ध्यान की परिभाषा

सिद्ध भगवन्त की इस स्तुति मे आपके सामने यह 'ध्यान' शब्द आया है। ध्यान किसे कहते हैं ? 'ध्यायते इति ध्यानम्' अर्थात् जो ध्याया जाय, जिससे हम अपने ध्येय वस्तु के साथ जोड़ें—सलग्न करें—उसे ध्यान कहते हैं। तत्त्वार्थाधिगम के प्रणेता वाचकमुख्य उमास्वातिने ध्यान का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

'एकाग्रचिन्ता निरोधोध्यानम्' ।

अर्थात् सर्व ओर से सकल्प-विकल्प रूप चिन्ताओ को हटाकर आत्मा में एकाग्र होना ध्यान कहलाता है । श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते हैं—

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पमिरओ, इणमेव पर हवे झाणं ।।

अर्थात्—शरीर से कोई चेष्टा मत करो, वचन से किसी प्रकार का वार्तालाप मत करो और मन से किसी भी वाहिरी सासारिक वस्तु की प्राप्ति का चिन्तवन मत करो। इस प्रकार मन, वचन, काम को वश मे करने से

तुम्हारा आत्मा स्थिर होगा। आत्मा मे स्थिर होना, आत्मस्वरूप मे निरत सलग्न रहना — यही परम ध्यान कहलाता है।

यहा कोई प्रश्न करता है—आत्मा अपने स्वरूप मे कैसे तल्लीन रह सकता है, क्योकि मन बडा चचल है, तो वे उत्तर देते हैं कि—

मा मुज्झह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्त झाणप्पसिद्धीए॥

हे आत्मन्, यदि तू नाना प्रकार के आत्म ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहता है, तो ससार की किसी भी इष्ट वस्तु मे मोह मत कर, राग मत कर। और अनिष्ट वस्तु मे द्वेष मत कर।

ध्यान के चार अग

ध्यान के विषय मे चार बातो का जानना आवश्यक है— ध्याता, ध्येय, ध्यान और ध्यान के भेद। आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले पुरुष को ध्याता कहते हैं। उसे शान्त, जितेन्द्रिय और ससार से उदासीन होना चाहिए। जिसके हृदय मे क्रोध, मान, माया,लोभ, राग, द्वेष, मोह और अज्ञानादिक भाव विद्यमान हैं, जिसका चित्त कषायो से अशान्त है, जिसका मन पाचो इन्द्रियो के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द के सेवन मे सलग्न है, और जिसका मन सासारिक पदार्थों की प्राप्ति मे ही सलग्न है, वह ध्यान का पात्र नही है। जिस शुद्ध आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन किया जाता है, अथवा अरहन्त, सिद्ध आदि परमात्मा के आलम्बन से ध्यान किया जाता है, ऐसे पच परमेष्ठी, उनके वाचक अरिहन्त, सिद्ध आदि पद और उनके नाम से ही बने हुए अनेक प्रकार के ऊँ ह्री आदि बीजाक्षर ध्येय कहलाते हैं।

ध्यान नाम चिन्तवन करने का है। ध्यान, योग, अध्यवसाय और परिणाम ये सब एकार्थवाची नाम है। यद्यपि इनमे सूक्ष्म दृष्टि से तरतमभावरूप अन्तर है, तथापि ये सभी शब्द स्थूल रूप से मनन, चिन्तन या विचार के ही द्योतक है। यह चिन्तवन भली वस्तु का भी हो सकता है और बुरी वस्तु का भी। भली वस्तु के चिन्तवन करने को प्रशस्तध्यान कहते है और बुरी अर्थात् आत्मा के लिए अहितकर वस्तु के चिन्तवन करने को अप्रशस्त ध्यान कहते है। अप्रशस्त ध्यान के दो भेद हैं—आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान। ये दोनो ही अप्रशस्त ध्यान ससार के कारण हैं। प्रशस्त ध्यान के दो भेद हैं—धर्मध्यान और शुक्लध्यान। ये दोनो ध्यान मोक्ष के कारण हैं। इन सबका स्वरूप जानना जरूरी है, क्योकि—

'बिन जानें तें दोष-गुणनिको, कैसे तजिये गहिये ।'

इस उक्ति के अनुसार जब तक मनुष्य किसी वस्तु के दोषो को न जाने, तब तक वह कैसे उसे छोड सकता है । इसी प्रकार जब तक किसी भी वस्तु के गुणो को भी नही जानेगा,तब तक उसे ग्रहण भी कैसे कर सकता है । अत यहा पर उक्त चारो ध्यानो का कुछ विवेचन किया जाता है ।

अप्रशस्त ध्यान

जिस ध्यान मे मानसिक सक्लेश की प्रचुरता हो और सासारिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए चिन्तवन हो, उसे आर्त्त ध्यान कहते हैं । इसके चार भेद हैं—इष्ट वियोग, अनिष्टसयोग, वेदना और निदान । अपने इष्टजन, धन आदि का वियोग हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए मन मे विचार उठते रहना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है । अनिष्ट वस्तु के, कलहकारी भाई आदि के सयोग होने पर उसके दूर करने के लिए निरन्तर चिन्तवन करना अनिष्ट सयोगज आर्तध्यान है । शरीर मे किसी प्रकार की रोगादि जनित वेदना के उत्पन्न होने पर उसके दूर करने के लिए चित्त मे सक्लेश बना रहना वेदना जनित आर्तध्यान है । धर्म सेवन करके इस भव मे सासारिक धन-वैभव की इच्छा करना और पर भव मे चक्रवर्ती, वासुदेव, इन्द्र आदि पदो के पाने की अभिलाषा रखना सो निदान नाम का आर्तध्यान है । इस ध्यान को तिर्यंचगति का कारण कहा गया है ।

जिस ध्यान मे परिणाम निरन्तर नि'ठुर और कठोर बने रहे और पाप कार्यों के करने मे जीव आनन्द माने उसे रौद्रध्यान कहते हैं । इसके भी चार भेद हैं—हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषय सरक्षणानन्द । हिंसा मे आनन्द मानना, हिंसा का उपदेश देना हिंसा के उपायो का चिन्तवन करना और हिंसा के उपकरणादि बनाने मे सलग्न रहना हिंसानन्द रौद्र ध्यान है । झूठ बोलने मे आनन्द मानना, झूठ बोलने वालो की प्रशसा करना, सत्य को छिपाना, और असत्य को सत्य बनाने की चेष्टा आदि करना, मृषानन्द रौद्र ध्यान है । चोरी मे आनन्द मानना, चोरो से मेल-मिलाप रखना, चोरी करने के उपाय सोचना, चोरी के माल को लेना, उसे छिपाकर रखने का प्रयत्न करना और काला बाजारी करना, सरकारी टैक्स आदि चुराना चौर्यानन्द रौद्र ध्यान है । विषय-सेवन मे आनन्द मानना, विषय-सेवन की अधिक लालसा रखना, विषय-सेवन के लिए नये-नये उपायो का विचार करना, परिग्रह मे आनन्द मानना, परिग्रह के उपार्जन, सरक्षण और सवर्धन मे लगे

रहना विषय-सरक्षणानन्द रौद्र ध्यान है। इसी का दूसरा नाम परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है। यह रौद्रध्यान नरकगति का कारण है।

ससार के सभी जीव इन दोनो प्रकार के अप्रशस्त ध्यानो मे लग रहे हैं। यही कारण है कि वे जन्म-मरण रूप ससार मे गोते खाते हुए नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं। यदि हमे सुख की चाहना है, और हम सुखी बनना चाहते है, तो हमे उक्त चारो ही प्रकार के आर्त्तध्यानो को, तथा चारो ही प्रकार के रौद्रध्यानो को छोडना चाहिए।

धर्म ध्यान के साधन

जिस ध्यान मे कषायो की मन्दता हो, ससार, देह और इन्द्रिय भोगो से उदासीनता हो, धर्म और धर्मात्मा पुरुषो से प्रेम हो, धार्मिक कार्यों मे उत्साह हो, ध्यान और अध्ययन मे रुचि हो, त्याग और प्रत्याख्यान के भाव हो, उसे धर्मध्यान कहते हैं। मैंने मनुष्य भव, उत्तम जाति, उच्च कुल और जैनधर्म पाया है, अत मैं श्रावक व्रतो का पालन करू, हिंसादि पापो का यथासभव त्याग करूँ, शीलव्रत को पालूँ, ब्रह्मचर्य को धारण करू, त्रिकाल सामायिक करू, अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्वों मे उपवास करू, आयबिल करू, एकाशन करू, रात्रि मे बहुविध आहार का त्याग करू, प्रतिक्रमण करू, चतुर्विध सघ की सेवा करू, गुरुजनो की आज्ञा का पालन करू, उत्तम पुरुषो की सत्सगति करू, उनके गुणो को ग्रहण करू और किसी के दोषो पर मेरी दृष्टि न जावे, मेरे मुख से किसी के दोष न निकलें, किसी की मैं निन्दा न करू, किसी भी प्राणी का चित्त भी मेरे से न दुखे, दान देने मे मेरी प्रवृत्ति सदा बनी रहे। मुझे जो धनादि पुद्गल द्रव्य का सयोग मिला है, वह पूर्वजन्म की पुण्यवानी से मिला है, अत वह शाश्वत नही है। जिस दिन पूर्वली पुण्यवानी समाप्त होगी, उसी दिन इस पुद्गल की भी समाप्ति हो जायगी। इसलिए मुझे इस धन-सम्पत्ति को सत्कार्यों मे लगाना चाहिए। मेरा पैसा सत्कार्यों मे लगें, ऐसी मेरी भावना सदा बनी रहे। इस प्रकार के विचारों को धर्मध्यान कहते हैं।

इस धर्मध्यान के भी आगम मे अनेक भेद बताये हैं, उनमे चार भेद प्रधान हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय। जिन भाषित तत्त्व सत्य हैं, क्योकि जिनदेव राग-द्वेष से रहित हैं—वीतरागी हैं। और वीतरागी पुरुष कभी अन्यथावादी नही होते हैं। ऐसा विचार करके जो सूक्ष्म तत्त्व हैं, केवली ज्ञानगम्य हैं, उनके विषय मे भगवान् की आज्ञा को प्रमाण मानकर उन पर अटल श्रद्धान रखना, भगवान् की आज्ञा

ही जगत् के प्राणिमात्र की कल्याणकारिणी है,ससार का उद्धार करने वाली है और शाश्वत सुखदायिनी है, उसका ससार मे कैसे प्रचार हो, कब सब प्राणी जिनआज्ञा के अनुसार चले, इस प्रकार के विचार करने को आज्ञा-विचय धर्मध्यान कहते हैं। ससार के सब जीव कैसे दु खो और सकटो से छूटें, ऐसा चिन्तवन करना अपायविचार धर्मध्यान है। जीव अपने किये हुए कर्मों के फलों को भोगता है और नाना प्रकार के दु ख उठाता है। कर्मो के विपाक से यह कभी नरक मे जाता है, कभी पशु पर्याय पाता है, कभी मनुष्य होता है और कभी देव बनता है, इस प्रकार के कर्मों के फल का विचार धर्मध्यान है। लोक के स्वरूप का चिन्तवन करना, उसमे भरे हुए षट्द्रव्यो का विचार करना, और यह विचार करना कि इस लोकाकाश मे ऐसा एक भी आकाशप्रदेश नही है, जहा पर जीवने अनन्तबार जन्म और मरण न किया हो, इस प्रकार के चिन्तवन करने को सस्थानविचय धर्मध्यान कहते हैं।

इस सस्थानविचय के पिण्डस्थ, पदस्थ रूपस्थ और रूपातीत ये चार भेद भी आगम मे बताये गये हैं। इनका आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र मे और आचार्य शुभचन्द्र ने अपने ज्ञानार्णव मे बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया है। जो विशेष जिज्ञासु हो, उन्हें वहा से जानना चाहिए।

शुक्लध्यान

जिस ध्यान के आलम्बन से यह आत्मा परमात्मा बन जाता है, जिसके द्वारा सर्व कर्मो का क्षय करके शिवपद प्राप्त किया जाता है, ऐसे परम शुद्धोपयोगरूप मनन—चिन्तन को शुक्लध्यान कहते हैं। वर्तमान समय मे आयु, काय, सहनन और बल-वीर्यादिक दिन पर दिन क्षीण होते जा रहे हैं, इस कारण इस पचम आरे मे शुक्लध्यान का होना किसी भी पुरुष के सभव नही है। यह शुक्ल ध्यान कर्मों का क्षपण करने के लिए क्षपक श्रेणी पर चढते समय से प्रारम्भ होकर मुक्त होने के समय अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त होता है। इस शुक्ल ध्यान के भी चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क, एकत्व-वितर्क, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति और सूक्ष्म क्रियानिवृत्ति। इनका स्वरूप बहुत गहन है, तो भी सक्षेप मे इतना जान लेना चाहिए कि शुक्लध्यान के प्रथम भेद के आश्रय से जीव मोहनीय कर्म का नाश करता है। द्वितीय शुक्लध्यान के आश्रय से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन घाति कर्मो का क्षय कर और केवल ज्ञान पाकर अरिहन्त परमात्मा बन जाता है। तीसरे शुक्लध्यान के आश्रय से शेष अघाति कर्मो मे से आयु कर्म के सिवाय वेदनीय

नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की स्थिति का घात करके आयुकर्म के समान अन्तर्मुहूर्त की कर देता है। और चौथे शुक्लध्यान के आश्रय से इन चारो ही अघातिया कर्मों का क्षय करके यह जीव शिवपद पाकर निरजन, निर्विकार, निराकार सिद्ध परमात्मा बन जाता है।

इस धर्म ध्यान और शुक्लध्यान की सिद्धि मन की एकाग्रता और निर्मलता पर निर्भर है। इसलिए हमे अपने कर्मों को दूर करने के लिए चित्त की शुद्धि रखना आवश्यक है।

ध्यान का मन पर प्रभाव

धर्म को धारण करने का विचार करना, निरन्तर यह भावना करना कि मेरे श्रावक व्रतो का पालन कब हो, यह भाव भी धर्मध्यान के ही अन्तर्गत जानना चाहिए। ध्यान की विराट स्थिति अलग है और सामान्य स्थिति अलग है। सामान्य स्थिति गृहस्थो को समय-समय पर आती है और विलीन हो जाती है। विराट ध्यान की स्थिति सुदृढ और निरन्तर बनी रहती है। यदि कोई शेखचिल्ली जैसे विचार करता रहे, तो उससे कोई लाभ नही है। किन्तु "मुझे तो ऐसा धर्म-कार्य करना है, मैं इसे अवश्य करूगा।" इस प्रकार का जब आत्मा मे दृढ सकल्प होगा, तभी वह कार्य हो सकेगा। अन्यथा बच्चे के हाथ मे गुड या मिश्री की डली दी, अथवा अन्य कोई मीठी वस्तु दी, तो वह उसको मुख मे लेता है और फिर बाहिर निकालता है। कभी खाना चाहता है और कभी बचाना भी चाहता है। उसके हृदय मे एक दुविधा लगी हुई है कि यदि खाऊगा नही, तो मुख मीठा नही होगा और खाऊ गा तो यह चीज खत्म हो जायगी। इसी दुविधा के कारण कभी वह मुख मे रखता है और कभी बाहिर निकालता है। अब यदि उसके पिता-दादा बडे-बूढे कहते हैं कि अरे, क्यो तू अपने हाथ और कपडे खराब कर रहा है ? झट-पट खाले न ? इस प्रकार वे लोग उससे कहते हैं। परन्तु उस बच्चे के भीतर की इच्छा क्या है, इसका ध्यान उन्हे नही है। वे तो यह चाहते हैं कि यह पूरी डली जल्दी खा लेवे। इस प्रकार आप लोग भी उत्तम कार्यों मे धन खरचने का विचार तो करते है, कोई निरे बोले-बहरे भी नहीं है और कठोर हृदय भी नही है। परन्तु उक्त विचार के तुरन्त बाद ही यह विचार उठ खडा होता है कि खर्च करेंगे तो इतनी पूजी कम हो जायगी। भाई, यह पीछे का विचार ही तो बच्चे का गुड हो गया। दानी पुरुष आगे-पीछे का इतना विचार नही करता है। उसे तो जब भी किसी सत्कार्य के करने का अवसर

आता है, तब वह तत्काल कर गुजरता है। वह तो बहती गगा मे हाथ धोने से नही चूकता।

एक बार बम्बई मे काग्रेस कमेटी ने यह तय किया अमुक कार्य करना है और उसके लिए ५१ हजार का चन्दा मडवाना है। वहा पर वेलसी भाई, लखमसी नप्पू भाई जो जैन समाज के अग्रणी थे और बम्बई काग्रेस के प्रेसीडेण्ड रह चुके थे और बम्बई चैम्बर के भी प्रेसीडेन्ट थे, उन्होने सबसे पहले ५१००) रुपये मडवा दिये। उनके पश्चात् दूसरो से रकम मडवाने की कोशिश की गई, फिर भी उक्त रकम पूरी नही मड सकी और दश-बारह हजार की कमी रह ही गई, क्योकि उस दिन दूसरे धनिक व्यक्ति मीटिंग मे उपस्थित नही थे। उस कमी की पूर्ति के लिए महात्मा गाधी, भूलाभाई देसाई और मोहन कोठारी ये तीनो जर्ने कार मे बैठे हुए किसी धनी व्यक्ति के बगले की ओर जा रहे थे। बीच मे वेलसी लखमसी नप्पू भाई का बगला आया। वही पर कार अकस्मात् खराब हो गई। ड्राइवर ने बहुत कोशिश की, मगर वह नही चली। तब महात्मा जी ने कहा कि अपन लोग जिस कार्य के लिए निकले हैं और यह गाडी यही रुक गई है तो मुझे उम्मीद है कि अपना उद्देश्य यही पूरा हो जायगा। और यह बगला है वेलसी लखमसी नप्पू भाई का, तो चलें, उनसे ही मिलते चलें। सब लोग बगले के अन्दर गये। उस समय वेलसी भाई स्नान कर रहे थे। जब वे स्नान घर से बाहिर निकले, तब उनकी दृष्टि सब लोगो पर पडी। वेलसी भाई उस समय केवल तौलिया लपेटे थे, अत बोले – आप लोग बैठिये, मैं अभी कपडे पहिनकर आता हू। जब वे कपडे पहिन कर आये, तब गाधी जी ने कहा—वेलसी भाई जो कार्य प्रारम्भ किया था, उसकी पूर्ति के लिए हम लोग जा रहे थे—कि यकायक मोटर आकर यही रुक गई। इसलिए हम लोग यहाँ आपसे मिलने को आ गये हैं। वेलसी भाई बोले—यह तो आपने बहुत भारी कृपा की है? कुछ देर तक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा—जो रकम मैंने पहिली लिखी है, वह तो ठीक ही कहा है, उसे आप अन्य कार्य मे ले लेना। उसके सिवाय पूरे इक्कावन हजार मेरे ही लिख लीजिए। गाधीजी ने कहा—तुमने इक्कावन सौ तो पहिले लिखा दिये हैं? वेलसी भाई बोले—तो मुझे देने ही थे। अब ये जो इक्कावन हजार और कह दिये, सो कह दिये। एक रकम का दो बार दान नही होता है। आपने कही हजार-पाचसौ पहिले लिखा दिये और फिर लिखाने का काम पड जावे, तो क्या आप यह कहेगे कि पहिले के पाचसौ और हजार ये लो—पन्द्रह सौ हो गये। इसलिए मेरे ही इक्कावन

हजार माड लीजिए। अब गाँधीजी ने कहा—भोला भाई, देखो! मैंने कहा था न, कि मोटर रुकने का यही कारण है। इसके पश्चात् जब सब लोग उनके बगले से निकल कर कार में बैठे तो मोटर एकदम चल दी। भाइयो देखो, जब किसी कार्य के बनने का अवसर आता है, तब वह अनायास ही बन जाता है। यह है आत्म-ध्यान की खूबी, कि जब कोई नई बात होने वाली होती है, तब आत्मा पहिले से ही उसकी प्रेरणा कर देती है। आत्मा के साथ शरीर का सम्बन्ध है, उसी के साथ मन भी लग रहा है। वह आत्मा उसके साथ अन्य सामग्री भी जुटाना प्रारम्भ कर देती है। इसलिए हमें अपने मन पर काबू पाना आवश्यक है। यदि आपने मन पर काबू पा लिया तो, समझ लीजिए कि सब ऋद्धि-सिद्धियाँ आपको प्राप्त हो गई।

पुण्य के अनुबंध

धन-परिग्रहादि से ममता उतारने के लिये पुण्य के भी नौ प्रकार हैं—अन्नपुण्य,पानपुण्य,लयनपुण्य,शयनपुण्य,वस्त्रपुण्य। ये पाँच भेद पुण्य के हैं। अब पुण्य दो प्रकार का है—पुण्यानुबन्धी पुण्य और पापानुबन्धी पुण्य। इसी प्रकार पाप भी दो प्रकार का है—पापानुबन्धी पाप और पुण्यानुबन्धी पाप। पुण्यानुबन्धी पुण्य वह है कि जो पूर्व भवोपार्जित पुण्य से धन-सम्पत्ति वर्तमान में प्राप्त हुई है, उसका यदि पुण्यवर्धक उत्तम कार्यों में उपयोग किया जाता है, तो वह पुण्यानुबन्धी पुण्य कहलाता है। जिस पुण्य के उदय से प्राप्त धन-सम्पत्ति का पाप कार्यों में उपयोग किया जाता है, वह पापानुबन्धी पुण्य है। पूर्वोपार्जित पाप के उदय से जो दु.ख सामग्री मिली है, उसके द्वारा पुन पाप करके आगामी भव में दुःख-दायक पाप कर्मों के बाधने को पापानुबन्धी पाप कहते हैं। तथा पूर्व भवोपार्जित पाप का उदय होने पर भी प्राप्त दु:ख सामग्री का पुण्य कार्यों में उपयोग करना सो पुण्यानुबन्धी पाप कहलाता है। ऊपर बतलाये गये पाच पुण्यो के सिवाय चार भेद और हैं—मनपुण्ये,वचन पुण्ये काय-पुण्ये और नमस्कार पुण्ये। इन चारो पुण्यो में क्या हिंसा करनी पडती है? और क्या आरम्भ-समारम्भ करना पडता है? कुछ भी नहीं। मन अच्छा रखे, वचन अच्छे बोले, काया से यतना रखे और देव-गुरुजनो को नमस्कार करे, तो ये सब पुण्यानुबन्धी पुण्य हैं। पहले जो पाच प्रकार के अन्न, पान, लयन, शयन और वस्त्र पुण्य कहे हैं; उनमें भी यदि विवेक से कार्य किया जावे, तो थोड़े में ही आरम्भ-समारम्भ से अच्छी पुण्यराशि बाधी जा सकती है। यदि इनसे थोडा भी पुण्य संचय नहीं होता है, तो उसे पापानुबन्धी पुण्य समझना चाहिए। जिस कार्य को करते समय पहिले पाप की झलक आवे,

और फिर पुण्य बध जावे, वह पुण्यानुवन्धी पाप है। जिसके पहिले ही पाप कर्म का उदय है और फिर भी पाप-कार्यों को ही करता है, उसे पापानुवन्धी पाप कहते हैं। जैसे कि कोई पूर्व पाप कर्म के नदय से धन-हीन है—भूख-प्यास से पीडित रहता है और फिर भी चोरी आदि करता है, तो ऐसे जीव का पहिले से भी पाप का उदय है और आगे के लिए भी पाप कर्म को ही वाध रहा है। ऐसे जीव के धर्म नही होता है। किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को तलवार, वन्दूक आदि अस्त्र-शस्त्र इनाम मे दिये, तो इनका काम क्या है? भाई, इनका काम तो काटना-मारना ही है। ऐसे दान मे पहिले भी पाप हैं और पीछे भी पाप होता है। ऊपर वतलाये गये चार भेदो मे से दो भेद हमारे काम के हैं—एक तो पुण्यानुवन्धी पुण्य और दूसरा पुण्यानुवन्धी पाप। ये दोनो भेद गृहस्थो के ही सभव हैं। महाव्रती साधुओ के नही, क्योंकि वह तो धर्म-कार्य ही रहता है, जिससे उसके निरन्तर कर्मों की निर्जरा ही होती रहती है। हा, जितने अशो मे उपयोग मे शुद्धता नही है, किन्तु जीव-दया, परोपकार आदि के भाव होते हैं, परन्तु साधु का लक्ष्य पुण्योपार्जन का नही रहता है, किन्तु कर्म-क्षपण का रहता है। हम साधु लोग सासारिक पदार्थों से ममता छोडकर जो भी उपदेश आदि कार्य करते हैं, वह किसी के ऊपर एहसान के लिए नही है। यह काम तो हम अपनी आत्मा की ध्वनि (आवाज) से करते है।

भाइयो, क्या कभी आप लोगो ने विचार किया है कि वह गुवाला शालि भद्र सेठ कैसे वना? उसे मागी हुई खीर मिली, और वह भी वडी कठिनाई से। परन्तु जब उसने उसे खाने के लिए थाली मे परोसा तो उसके लिए किसने प्रेरणा की कि तू दान कर। उसने अपने मन मे विचार किया कि आज मैं कितना रोया, मा रोई और कितनी झझटो के वाद यह खीर नसीव हुई है, तो इसे खाने के पूर्व यदि कोई व्रती सयमी साधु आ जायें और मैं उन्हें खिला करके खाऊ, तो अच्छा रहे? उसके यह भावना कहा से आई? अन्तरग से आई। वह किसी मुनि से कहने को नही गया। साधु को खीर खिलाने की भावना आते ही उसने थाली के वीच मे अगुली से लकीर खींची कि इतना आधा भाग साधु को दूंगा। परन्तु पतली खीर मे क्या लकीर वनी रह सकती है? नही। वह तो मिले विना नही रह सकती। अव उस गुवाले की भावना और भी तीव्र हो गई। उसका ध्यान ऊचा चढा। उसके इन भावो से मानो खिचे हुए एक महान् त्यागी तपस्वी साधु ने अभिग्रह किया कि यदि कोई गरीव घर का लडका इस प्रकार से मांगे हुए दूध, चावलादि

से बनी खीर को खाने के लिए मेरे सन्मुख आकर के अभ्यर्थना करे, तो पारणा करूगा, अन्यथा मास-खमण करूगा ।

भाई, जो पुरुष बैंक मे या साहूकार के यहाँ रकम पहिले जमा करावे और पीछे जब भी लेना चाहे सो उसे उसी समय मिल जाती है। परन्तु जिसके पू जी तो पल्ले नही, बैंक के खाते मे भी जमा नही और साहूकारी डूबी हुई हो । ऐसा मनुष्य यदि किसी से कहे कि आओ जी, यह बीस हजार की हुडी देता हूँ । अब वह भले ही बीस हजार तो क्या, बीस लाख की भी दे देवे, तो भी क्या है ? वह तो पीछे आवेगी ही । और नखराई-सिकराई के पैसे उसको देना पडेंगे ।

हाँ, तो गोचरी के लिए विचरते हुए एक साधु महात्मा उधर से आते हुए दिखे । वह गुवाल बालक उन्हें देखते ही उनके सामने गया और उनको पडिगाहन करके घर के भीतर ले गया और खीर देना प्रारम्भ किया। खीर को देते हुए उसकी भावना और भी बढी और उसने सारी खीर उस साधु को बहरा दी । मुनिराज का निर्विघ्न निर्दोप पारणा हो गया और वे वन मे चले गये । अब उसकी मा बाहिर से आई और पूछा कि बेटा, खीर लेनी है क्या ? लडका बोला—और है क्या ? परन्तु उसने अपनी मा से नही कहा कि मैंने खीर मुनि को बहरा दी है । क्योंकि जो दिये दान को दूसरे से कहता है, उसके दान का फल ढीला हो जाता है । इसलिए उसने मा से नही कहा । अब मा ने उसकी थाली खीर से दुबारा भर दी, तो वह सारी खीर खा गया । मा ने पुन: पूछा— बेटा क्या और लेगा ? लडका बोला—यदि हो तो और दो । मा ने और भी खीर परोस दी । वह उसे भी गटागट पीगया । मा ने तिबारा पूछा—बेटा और दूँ ? उसने कहा—जैसी आपकी इच्छा हो । तब मा ने आधी थाली और खीर ढाल दी । वह उसे भी खा गया । इस प्रकार उसने ढाई थाली खीर खाली । लडके ने जो यह सातिशय दान दिया, तो उसका फल उसे तुरन्त ही मिल गया ।

भाइयो, यदि उसी बच्चे का आयुष्य नही और बुढिया के भाग्य मे सुख का योग नही, तो उसे सुख कहा से मिलेगा ? अब उसकी मा ने विचार किया कि मेरा लडका प्रतिदिन जितना खाता है, आज उससे दुगुना-तिगुना खा गया, तो उसे नजर लग गई उसके कहने से। भाई, नजर क्या है ? दूसरे की नजर लगती है,परन्तु अपने माँ-बाप आदि के कहने से भी नजर लग जाती है । उसकी मा की ऐसी नजर लगी कि वह लडका तत्काल ही पक्षी के समान लोटने लगा, उसका पेट दुखने लगा और वह थोड़ी ही देर मे काल कर गया।

उसने साधु को दान देते समय उत्तम आयु का बन्ध कर लिया था, अत वह राजगृही नगरी मे गोभद्र सेठ और सुभद्रा सेठानी के घर मे आकर शालिभद्र के रूप मे उत्पन्न हुआ। भाई, यह उस खीर-दान के पुण्य का ही प्रताप है जो वह एक दरिद्र से शालिभद्र जैसे ऋद्धि-सम्पन्न सेठ बना। उसे दान कितना सा दिया था और वह भी अपनी कमाई में से नही, दूसरो के द्वारा दी गई वस्तु मे से दिया। परन्तु उसके जो दान देने के उत्तम भाव थे, उसका उत्तम फल उसे मिला। परन्तु दिया कब, जबकि उसका ध्यानधर्म की ओर गया। जब मनुष्य की रुचि पाप की ओर जाती है, तब लाख हो जाने पर करोड जोडने का भाव होता है और करोड होने पर अरब-खरब के भाव होते हैं। जिस मनुष्य के ऐसा आर्तध्यान है, वहा पर धर्मध्यान कैसे हो सकता है ? कोयले की कोठरी मे क्या मलमल का थान मिलेगा ? नही। अरे, उसके भीतर तो वारदाने का भी थान नही मिलेगा। जिसका हृदय पाप की कोठरी बना हुआ है, वहा पर धर्म का होना कठिन है। यदि आपको किसी धर्म-कार्य के लिए प्रेरणा दी जाय, तो आपको ऐसा तीर-सा लगता है कि क्या है जी ? यहा कुछ नही है। आप लोगो के रात-दिन एक ही घधा है कि दो-दो ! ये लोग देने के लिए क्यो हमे तग करते हैं। परन्तु मै आप लोगो से पूछता हू कि आपने यह धन इकट्ठा कहा से किया है ? आपने भी तो लोगो से इकट्ठा किया है, या जन्मते समय ही बोरी भर कर लाये थे ? आप लोग कहते हैं कि महाराज, लाये तो लोगो से ही हैं। तो भाई, जिन लोगो से उधार लाये हो, वे तो माँगेंगें ही। फिर देते समय मुख क्यो खराब करते हो। अरे, जब इकट्ठा किया, तब तो मुख खराब नही किया, तो अब देते समय भी मुख खराब नही करना चाहिए। जैसे लेते समय प्रसन्न मुख रहते हो, वैसे ही देते समय मुख को सवाया प्रसन्न रखो। यदि किसी दान के अवसर पर देने के लिए हुंकारा तो भर दिया, परन्तु गुलाब के फूल के समान मुख प्रसन्न नही रहा और वह फीका पड गया। और ऊपर से कहने लगे कि लोग तो मेरे पीछे ही पड गये हैं, मेरे से जबर्दस्ती हाँ भरवा दी है। यदि इस प्रकार के भाव मन मे आने लगे, तब तो यह पश्चात्ताप हो गया। इस प्रकार मन मे कसमकस रख कर यदि दान दिया जायगा, तो उसके बदले मे मिलेगा अवश्य परन्तु तुम उसका आनन्दपूर्वक उपभोग नही कर सकोगे।

लक्ष्मी दो प्रकार से आती है

भाईओ, लक्ष्मी दो प्रकार से आती है—एक तो पुत्री बनकर और दूसरे

स्त्री बनकर। पुत्री बडी रूपवती है, चतुर है और गृह-कार्यों मे कुशल है, परन्तु वह तुम्हारे घर मे नही रहेगी, वह तो ससुराल मे ही जायगी। वह तो चादना पराये घर मे ही करेगी। वह पिता के घर मे रहने वाली नही है। ऐसी जो लक्ष्मी आप लोगो के घर मे आई है, वह आपके उपभोग के लिए नही, वह तो पराये उपभोग के लिए है। वह जाति-समाज के लिए नही, धर्म के लिए भी नही है। वह तो दूसरो के लिए ही है। दूसरे लोग ही उसका मजा मारेंगे। वह तो दडे की मिट्टी पीछे दडे मे ही रह जायगी। उसे या तो चोर ले जावेंगे, या आपको मार-पीट कर डाकू ले उडेंगे, अथवा राज्य लूट लेगा। पहिले तो चोरो के लिए राज्य था सो तुमको और भी नही आने देते थे। और डाकुओ के लिए राज्य था, सो डाकुओ का नाम भी नही रहने देते थे। अब तो सरकार स्वय उन लोगो मे जाकर बैठ गई है। आज यदि कोई चोर-डाकुओ की शिकायत करता है, तो उसकी कोई सुनवाई नही है। सरकार तो सीधा कहती है कि तुम लोगो को इतना अधिक रखने की क्या आवश्यकता है ? अपनी जरूरत के अनुसार रखो और शेष सब सरकार को दे दो। यदि छिपा करके रखोगे वर्ष दो वर्ष मे वह प्रकट हो जायगा। अरे जानेवाली सम्पत्ति तो जावेगी ही। परन्तु धर्म ध्यान वाले भाई ऐसा विचार करते हैं—

> बहतो जल कालू कहै—लीजे हाथ पखाल।
> फेर न हुंसा आवसी - इण सरवर री पाल॥

यह तालाव और इसकी यह सुन्दर पाल ! यह सुन्दर उद्यान और ये पानी की ठडी लहरें ! ये वार-वार आने वाली नही है। कहा है—

> धन जोबन ठकुराइयो, सदा सुरगीन होय।
> जां रूखो तहां माणसो—छाय बलंती जोय॥

यह यौवन आपको मिला है तो कितना शक्ति-सम्पन्न शरीर है, हाथ-पैरो मे ताकत है, गर्दन सीधी रहती है— पादरी नही होती है। और मन मे यह गर्व बना रहता है कि मैं ही बलवान हू, मेरी सानी करने वाला कौन है ? इस प्रकार अनेको भाव गर्व से भरे मन मे उठते रहते हैं। परन्तु इस लक्ष्मी का पता नही चलता है कि यह पुत्री बन कर आई है, या स्त्री बन कर आई है ? यदि वह स्त्री बन कर आई है, तो उसका आनन्दपूर्वक उपयोग कर लो। किन्तु जिनके यहा यह लक्ष्मी पुत्री बनकर आई है, वे पुरुष उसका आनन्द नही लूट सकते है क्योकि उन्होने अन्तराय बाधी हुई है। अन्तराय भी पाच प्रकार की है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय उपभोगान्त-

राय और वीर्यान्तराय । इनमे से जिसने दानान्तराय बाधी है उसको कितना ही कह दो, समझादो, फिर भी वह दान नही दे सकेगा । किसी समय दान देने के भाव भी आ सकते हैं। परन्तु देते समय हाथ कपने लगेंगे । जब हाथ कपे तो मन तो उसके पहिले ही कंपित हुआ समझना चाहिए । वह कभी दे नही सकता है, क्योकि उसने पहिले दानान्तराय बाधी हुई है । इस अन्तराय को तोड़ना, यह कर्त्तव्य भी अपना है । अन्तराय को अन्तराय समझ लो और विचारना छोड दो कि जब लाखो की पूंजी हो जायगी, तब दूंगा । किन्तु यह विचार करो कि पहिले मेरे पास क्या था ? कुछ भी नही था । अब जो ये लाख-दो लाख की पूंजी आई है, तो मेरे प्रारब्ध का योग था, तब आई है । अब यहाँ पर तेरा योग दस-बीस वर्ष का है, अथवा जीवन भर का है, तो जिसके जितने समय का योग होगा, उतने समय तक यह लक्ष्मी तेरे पास टिकेगी । कोई कितनी ही इधर-उधर की बात कर लेवे, परन्तु जब तक प्रारब्ध का योग है, तब तक कोई लूट नही सकता । यदि कोई लूटकर, चोरी करके ले भी जावे, तो वह भी पीछा आ जावेगा । इसके विपरीत जिनके जाने का योग है, तो घर की चोरी घर नही होती क्या ? अरे, मा, बेटी, स्त्री या पुत्र ही ले लेता है, अर्थात् वह वस्तु तुम्हारे अधिकार मे से निकल कर दूसरे के अधिकार मे चली जाती है । इसी का नाम तो चोरी है । कहने का अभिप्राय यह है कि जब जाने का योग होगा, तब वह जाएगी ही । और यदि जाने का योग नही है तो नही जायेगी ।

जैसे कमाओ वैसे दो

दानी पुरुष को यह विचार भी नही करना चाहिए, कि यहा इतना हो गया है तो अब यहा पर देने की क्या आवश्यकता है । जब आप निरन्तर कमा रहे हैं, खा रहे हैं, और अनेक प्रकारो से उसका उपयोग कर रहे हैं, तब इसी प्रकार से निरन्तर देना भी सीखना चाहिए । जब प्रतिदिन कमाते हैं, तो ओटा भी प्रतिदिन चलते रहना चाहिए । परन्तु ओटे मे ओटा मत लो कि यदि अमुक साहब देंगे, तो मैं दूंगा । तुम दोगे तो मैं दूंगा । यह तुम-तुम कहना छोड दो । परन्तु अपना ले लो । भाई, मैं इस शब्द मे दो मात्रा हैं, तो मैं नाम अहकार का है । परन्तु मैं हूं तो तुम मत करो, मैं करूंगा, ऐसा कहना सीखो । सासू जी काम करे तो बहू जी कहती हैं कि आप मत करो, मैं करूँगी । सासूजी बहू को कहे बेटी कि तू मत कर, मैं कर लूंगी । इसी प्रकार आप लोगो को भी चाहिए कि जब काम करने का अवसर आवे,तो सामने वाले से कह दो कि आप नही करें, इस काम को मैं करूंगा । समाज मे भी

यही नियम होना चाहिए कि किसी सार्वजनिक कार्य को करते समय दूसरो से कहे कि आप मत करो, मैं कर लूंगा। यदि कोई किसी से कहता है कि तुम इस काम को करो तो वह कहता है कि क्या मैं ही मै दिखा, मैं ही तुम्हारी दृष्टि मे आता हूँ, दूसरा कोई नही दिखता। तब वह कहता है कि मेरी दृष्टि मे आए, तभी तो यह कह रहा हू। अरे दरिद्री, जिसके, पोते पुण्यवानी है, वे ही तो नजर आते हैं। यदि पोते पुण्यवानी नहीं है, तो नजर मे आयेगा ? एक कवि ने दरिद्रता को नमस्कार करते हुए कहा है—

भो दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं, न मां पश्यति कश्चन॥

हे दारिद्र्य, मैं तुझे लाख बार नमस्कार करता हू। दारिद्र्य कहता है कि अरे, भाई मुझे क्यो नमस्कार करता है ? मुझ मैं ऐसा कौन सा गुण है ? तब वह कहता है कि तेरे प्रसाद से तो मैं सिद्ध पुरुष हो गया हू, अर्थात् चमत्कारी बन गया हू। वह पूछता है कि कैसे सिद्ध बन गया ? तब वह कहता है कि मैं तो सारे ससार को देखता हू, परन्तु दूसरा कोई मुझे नही देखता।

कितने ही लोग चमत्कार के कारण महात्माओ के पास जाते है कि वे कोई ऐसी विद्या, या रसायन गुटिका दे देवें, या मत्र बतला देवें कि जिसके प्रसाद से मुझे तो कोई न देख सके, किन्तु मैं सबको देखता रहूँ। तो उन साधु सन्तो के पास तो ऐसी विद्या नही मिली। और जब से तेरा सगम प्राप्त हुआ है, हे दारिद्र्य, तूने मुझे अपना लिया, अर्थात् तेरे प्रसाद मे दरिद्री हो गया, सो मैं तो सबकी ओर आशा भरी दृष्टि से देखता हू कि यह व्यक्ति मुझे कुछ देगा। मगर वे लोग मेरी ओर देखते भी नही हैं—कदाचित् यह सोचकर कि यदि इस दरिद्री की ओर देखा—तो यह तुरन्त मुझ से कुछ न कुछ मागेगा। एक कहावत है कि—

'अब हम क्या नजर मे आवें, आप तो पूंजी पति हो गए हो।

अरे, हम देखते हैं ! नजर मे कैसे आयेंगे। तूने दरिद्रता को पकड लिया तो नजर मे कहा से आयगा ? अरे, जब तू दुनिया की नजरो मे आने के योग्य हो गया, तो क्या कहता है कि मैं हूं। और मैं ही मे नजर आता हूं। अरे, बहुत पुण्यवानी बाधी है तब नजर मे आता है। अभी काम पड जाता है, तो कहा जाता है कि अमुकचन्द जी को बुलाओ, तमुकचन्दजी को बुलाओ ! दूसरो के क्या मुख, हाथ और पैर नही हैं, जो अमुकचन्दजी को ही बुलाने के लिए कहा जाता है। तब उत्तर मिलता है कि दीगर लोगो को बुलाकर

क्या जाजम घिसानी है ? जो दरिद्री होता है वह भी टनके से टनके को कहता है कि मैं हु ।

मातृभूमि का प्रेम

एक सेठ जी दिसावर मे खूब कमा कर आए। उनकी अन्तराय खूब टूट गई, तो लक्ष्मी भरपूर उन्हें मिल गई। परन्तु वह पक्का श्रावक था। मन मे सोचता है कि मैं जितना धन चाहता था, उससे कई गुना अधिक मुझे मिल गया है, अब मुझे परदेश मे नही रहना है अब तो जन्मभूमि पर चलना चाहिए। जैसे आप लोग धन के गुलाम बन रहे हैं, और जन्मभूमि के वफादार नही हैं। किन्तु पुराने लोग अपनी जन्मभूमि को नही छोडते थे। उन्हे जन्मभूमि का ध्यान रहता था। महाराज जसवन्त सिंहजी जोधपुर के धनी थे। वे दिल्ली की मुगल सल्तनत को सुदृढ रखने के लिए उनतीस वर्ष तक काबुल कधार मे रहे। एक दिन वे जब हवाखोरी के लिए बाहिर गये तो उन्हें रेत के टीबे पर एक फोग का झाड दिखा, उसे देखते ही वे घोडे परसे उतरे और उससे बाथिये भरकर मिले और भावभरी वाणी मे उससे कहने लगे कि अरे, फोग, तू यहा कहा से आया ? तू तो मेरे मारवाड का है। जब देश प्रेमी थे, तब उनके हृदय मे फोग के वृक्ष को देखते ही प्रेम उमड आया। परन्तु आप लोगो को तो जन्मभूमि से प्रेम नही है, उससे भी मिलने के लिए तैयार नही हैं। कहावत तो यह है कि—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

अर्थात् माता और जन्मभूमि प्राणियो को स्वर्ग से भी अधिक प्यारी होती है। जिन लोगो को अपनी जन्मभूमि से प्यार होता है, वे सदा उस पर न्यौछावर रहने को तैयार रहते हैं। महाराज जसवन्तसिंहजी को अपनी जन्मभूमि और देश का प्रेम था, तो वे त्याग करने को भी तैयार थे। जिन्हें अपने देश का प्रेम नही, जिनके हृदय मे अपना और अपने देश का गौरव नही है, वे तो जीते हुए भी मरे के समान हैं। कहा है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है॥

अरे ऐसे देश-प्रेमहीन व्यक्तियो को तो मनुष्य ही नही कहना चाहिए प्रताप के स्वर्गीय सम्पादक गणेशशकर विद्यार्थी तो कहते है कि वह तो निरा पशु है, या मृतक-तुल्य है।

एकबार आलमगीर बादशाह ने हुक्म लगा दिया कि भारतवर्ष मे जितने भी मन्दिर है, उन सबको गिरा दिया जावे । औरगजेब को आलमगीर की पदवी मिली हुई थी । यह आवाज नौ कोटि मनुष्यो के स्वामी रणबका राठौड के पास पहुँची, साथ ही मारवाड के अन्य सरदारो के पास भी पहुँची, तो उन्होने वापिस बादशाह के पास पत्र लिखकर भेजा कि मेरे सुनने मे आया है कि आपने सारे भारतवर्ष के मन्दिरो को गिराने का हुक्म दिया है ? यदि यह सच है, तो आप यह भी निश्चित समझ लेवें कि जिस दिन भी मन्दिरो के ऊपर हाथ पडा नही कि उसी दिन हिन्दुस्तान मे एक भी मस्जिद नही मिलेगी । आप मन्दिरो के ऊपर हाथ रखोगे और हम लोग मस्जिदो को धराशायी कर देंगे, इस बात मे आप कुछ शक मत समझना । क्या उन्होने ऐसा पत्र लिखकर साम्प्रदायिकता फैलाई ? नही, यह तो जैसो को तैसा उत्तर था । और यदि उस समय ऐसा ईट का जवाब पत्थर से नही दिया जाता, तो क्या आज हमारे ये मन्दिर नजर आते ? औरगजेब के पास वह पत्र पहुँचा, तो उसका कलेजा हिल गया । कहा है—

'जो लौं जसवन्त जानियो

जब तक जसवन्तसिह जीवित रहे, हिन्दुस्तान मे कही पर भी किसी मन्दिर का एक भी पत्थर नही गिरा । भाई, जिनके हृदय मे मातृ-भूमि का और देश का प्रेम होता है, उन्ही मे ये बातें होती हैं । और जिनमे यह प्रेम नही होता, उनसे क्या जसवन्तसिह जी जैसे बहादुरो की बात पाई जा सकती है ? कभी नही । मैंने कल कहा था कि पूना का सघ आया' । यदि आने वालो मे देश-प्रेम होता तो वे लोग कहते कि सादडी का सघ आया है । अब उनको मारवाड की सादडी की कीमत नही है । परन्तु इन लोगो को यह पता नही है कि वहाँ पर अरबपति भी बन गए, तो वहाँ के निवासी यही कहते हैं कि ये मारवाडी हैं—मारवाड से आए हुए हैं । परन्तु ये लोग यहा आए तो कहते है कि फलानचन्द जी के बेटे-पोते हैं । भाई, बडे पुण्यवान हो गए और घर को ऊँचा लाए, तो किससे पूजे गये ? अरे, बडेरो के पीछे ही तो पूजे गए ! वहा पूना मे या और कही क्या कीमत है ? वहा तो पेट भरने के लिए ही गए थे और आज भी वहाँ पर देसी ही कहलाते हैं । परन्तु अब लोगो को सरदारगिरी की कीमत नही है । सादडी के वेद मूथा और सन्तोकचन्द जी के वशज मेघराज जी मूथा मद्रास से आए तो उन्होने कहा कि मद्रास मे पैसा नही मिलता है । दस लाख की योजना है । भाई, तुम लोग इस योग्य हुए तो धर्मध्यान मे दस लाख लगा सकते

हो ! और बगले-कोठियो मे करोडो रुपये लगाए, तो पजाव और पाकिस्तान मे क्या दशा हुई थी। आप लोग याद रखें—अब सब जगह सम्प्रदायवाद, जातिवाद और प्रातवाद के भाव पैदा हो गये है। भले ही आप लोग या सरकार इसे रोकना चाहे, परन्तु ये अब रुकने वाले नही हैं। ऐसी दशा मे आप लोगो का जो आपके देश से वाहिर अनर्गल धन लगा हुआ है, वह खतरे से खाली नही है।

कराची मे रणछोड गली मे जैनस्थानक वना हुआ था। वहा पर पूज्य घासीलाल जी महाराज ने और पुष्फ भिक्खु ने भी चौमासा किया था। भारत-विभाजन के पूर्व जव श्रावको ने देखा कि अब हम लोगो का यहा रहना सभव नही है, तो दो-ढाई लाख मे वना हुआ वह स्थानक छत्तीस हजार मे ही वेच दिया और वह रकम पहिले ही भारत मे भेज दी। उन्होने सूझ-बूझ से काम लिया मगर ढाई-लाख के छत्तीस हजार ही मिले। वे भी पहिले मिल गये,पीछे तो वे भी मिलने वाले नही थे। परन्तु हमारी समाज को तो इतना भी गौरव नही है कि आज वम्वई के भीतर मारवाडियो की कितनी दुकानें हैं। वहाँ पर आज गुजरात का वृहत् सघ वना है, तो उसमे मारवाडियो के कितने मैम्बर हैं ? केवल दो हैं – हस्तीमल जी मेहता व केवलचन्दजी चोपडा। इनमे से एक तो अपने वीच मे नही हैं और दूसरे लकवा से पीडित हैं—सो कही आ जा भी नही सकते हैं। वम्वई मे हमारे मारवाड के हजारो श्रावक हैं, परन्तु काठियावाडी और गुजराती इतने कट्टर है कि एक पैसा देने को तैयार नही है। एक साधु की पूना मे चौमासा करने की इच्छा हुई, तो महाराष्ट्र वालो ने क्या कहा ? पता है ? उन्होने कहा—ये सन्त हमारे महाराष्ट्र के नही हैं। इतना कहने के बाद भी उन्होने वहा पर चौमासा कर लिया। मेरे जैसे होते तो वहाँ पर चौमासा नही करते। उनको वतला देता कि तुम महाराष्ट्र के कैसे वनते हो ? मारवाड के सिवाय महाराष्ट्र के हो कहाँ से ? सब जगह मारवाडियो की सत्ता दी है। सब सन्त इसी मारवाड की भूमि मे वने हैं। इसी भूमि के दोनो हैं और यही से वने हैं। उस समय मे सादडी के सघ को इकट्ठा करके चौमासा कराने के भाव हुए। परन्तु वे लोग मारवाड के होते हुए भी मराठे वन गए। वे सवाल पैदा करते हैं कि हम महाराष्ट्री हैं और आप लोग कहते हैं कि मारवाडी। उन लोगो मे इतना जोश भरा हुआ है और आप लोगो ने मारवाड के पानी को लजा दिया। अरे, जहा जरूरत नही, वहा तो हजारो रुपये वर्वाद कर रहे हो। और जहा जरूरत है, जहा पर हमारे बाप-दादाओ की जमीनें हैं वहाँ पर लगाने के लिए आप लोगो के पास

एक पाई भी नही है। परन्तु भाई, यदि आप मातृ भूमि की रक्षा करोगे तो वह भी तुम्हारी रक्षा करेगी। दोनो हाथ साथ ही धुलते हैं। मद्रास वाले और महाराष्ट्र वाले कहते है कि महाराज, कृपा करो, एक वार पधारो और हमको तारो। परन्तु भाई, तुम तो तिरे हुए हो! यदि तुम लोगो ने मारवाड का गौरव रखा होता, तो हम दौडे हुए चले आते। परन्तु तुम लोगो ने गौरव ही नही रखा और उस धन के गुलाम वन गए। क्या वहा वुला कर हमको भी गुलाम बनाना चाहते हो? परन्तु हम गुलाम नही वनना चाहते हैं। खादी वाले गणेशीलालजी महाराज वहा के बन गए। परन्तु वे भी मारवाड के थे। और त्रिलोकऋपिजी, अमोलकऋपिजी ये सब भी मारवाड के थे। और आनन्दऋपिजी हैं आचार्य, और वे कहते हैं कि हमारे महाराष्ट्र मे ऐसा है। पर है तो आप इधर के ही। हमारा देश तो यही है। हम एक एक सन्त को जान रहे है कि वे कहा से उत्पन्न हुए हैं और कहा से गए हैं? भाई, हमारे इसी मारवाड से ही गए हैं। हमारे चार वडे महर्पि धर्ममिहजी, लवजी ऋपि, धर्मदास जी और भूधर जी गुजरात और राजस्थान इन दो के मिवाय और कहा के थे? गुजगत भी राजस्थान से मिला हुआ ही है।

देश का उद्धार यो होता है

हाँ, तो वह तो दिसावर मे गया, वहा पर अन्तराय टूट गई तो कहा—मुझे यहा नही, वहा रहना है। पूजी को इकट्ठी करके वँगले, वाग-वगीचे के लिए वहा के लोगो से कहा आप लोग इन्हे सार्वजनिक कार्य मे लीजिए। सुनकर वे लोग भी खुश हो गये कि वाहरे सेठ वाह! आपने ये सव हमको दे दिये। वह सेठ वाग-वगले वहा के लोगो को देकर और अपना माल और रकम लेकर देश मे आया। यहा पर जो मकान गिरवी रखा हुआ था, उमे छुडा लिया और उसे गिराकर नया मकान वनवा लिया और फिर दुकान जमा करके बैठ गया। अव उसने यहा के काश्तकारो और व्यापारियो को वुलाकर कहा—भाइयो, मैं देश मे कई वर्षों के वाद आया हूँ। मेरी भावना सफल हुई है। आप लोगो की कृपा से अव मैं भरा पूरा हूँ। यदि कोई व्यापारी व्यापार करना चाहे और उमके पास पूजी नही हो, तो आपका यह सेवक तैयार है। अव लाडू तो खाना मत, और भूखे रहना मत। उसके सेरे खाकर पेट भर लो। यदि आप लोग इम प्रकार की नीति रखेंगे तो मैं और भी मेवा कर सकूगा। अव वह व्यापारियो को रकम देने लगा। इसी प्रकार उमने काश्तकारो से कहा—तुम लोगो को जो चाहिए,

वह मैं देने को तैयार हू । और वह उनकी भी आवश्यकताओ की पूर्ति करने लगा । अब तो व्यापारियो को व्यापार और काश्तकारो को खेती वाडी का सुभीता हो गया । इस प्रकार चार-छह मास मे ही उनका नाम सारे देश मे हो गया और सर्व ओर उसकी प्रसिद्धि फैल गई । उसने अपने सारे गाव को सर-सब्ज (हरा भरा) कर दिया । लोग कहते हैं कि हम देश का उद्धार कैसे करें ? भाई, देश का उद्धार छोटे हाथो से नही होता है, परन्तु वडे हाथो से हो सकता है । यदि हमारे देश के पू जीपति चाहे तो वर्ष भर मे देश को मालदार बना सकते हैं । परन्तु आप लोग तो स्वय ही यह चाहते हैं कि यदि यह लखपति बन जायगा तो हमारी धोती कौन धोवेगा ? यह तो जितना रखडता रहे, उतना ही अच्छा है । ऐसी ही भावनाओ से आपकी जाति पुण्यशाली होते हुए भी जितनी बढनी चाहिए थी, उतनी नही बढ सकी है ।

हा, तो उसने न्यात को जगाई, तो धर्म को भी जगाया । इसलिए उसकी सब प्रशसा कर रहे हैं । परन्तु ससार मे अनेक प्रकर के लोग हैं, पाच-पच्चीस रूढियो के गुलाम भी थे । कोई उनके पास जाकर प्रशसा कर कहता कि ये सेठ साहब, वडे जोगे हैं और सब की भलाई कर रहे हैं ? तो वे कहते हैं कि काहे के जोगे हैं ? अरे, अभी तो इनके वड़ेरे राखोडे मे ही लोट रहे हैं । क्योकि उनकी दाढ का कीडा अभी शान्त नही हो पाया था । अब यह बात दो से चार के पास और चार से आठ के पास गई और धीरे धीरे फैलते हुए वह सेठानी जी के कान तक भी पहुँच गई ।

एक दिन जब सेठ साहब जीम रहे थे, तब सेठानी ने कहा—सेठ साहब, आप कमा करके पधारे, सो तो अच्छा किया । परन्तु आपने अभी तक अपने कलक को नही धोया ? सेठ ने पूछा—क्या कलक है ? सेठानी बोली—न्यात के लारे तो कुछ नही किया ? सेठ बोला—मैंने न्यात को जितना दिवाया है, उतना कौन दिवा सकता है ? सेठानी ने कहा—यह बात तो ठीक है । परन्तु जो दुनिया के रीति-रिवाज है, वे भी होना चाहिए । सेठ ने पूछा—दुनिया के क्या रीति-रिवाज है ? सेठानी बोली—यही कि वडेरो के पीछे भी कुछ होना चाहिए । सेठ ने कहा—अच्छा ! मेरी तो इच्छा नही है । परन्तु तेरी है और जनता की भी इच्छा है, तो इसमे मुझे कोई ऐतराज नही है । सेठ ने उसी दिन जाजम विछाई और पचो को बुलाया । अब पच सख्त होने लगे । एक बुलावा दिया जाय और आप एक बुलावे मे आजावें, तो इस रात तो जन्मे ही नही । दूसरे बुलावे मे कानो मे तनिक सी आवाज पहुंचे । तीसरा

बुलावा आवे,तब घर से कुछ सरके और चौथे बुलावे मे आते हैं। इस प्रकार जब तक बुलाने वाला पूरा हैरान नही हो जावे और ऐसे शब्द नही निकलें कि यदि हमे ऐसा मालूम होता, तो हम बुलावा ही नही देते। और ऐसे शब्द नही निकले तब तक आप चले जाओ। और तब तक आशा नही और पच नही। इस पर कहते हैं कि हम पच हैं। पच लोग तो दस दिन तक ध्यान ही नही देते हैं। अब किसी प्रकार बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् पच इकट्ठे हुए। सेठ उठकर खडा हुआ और उसने कहा कि आप सारे सरदार विराजे हुए हैं और यहां पधारे हैं। अपने बडेरो के पीछे जौ-जवार की रावडी करने का मेरा विचार है, अत आप लोग स्वीकारता प्रदान कीजिए। अब सब पचो मे चर्चा चलने लगी कि इनको इस बात की स्वीकारता देना, या नही ? इसी उधेडबुन मे सवेरे से शाम हो गई। सब लोगो ने आपस मे तय किया कि कोई इनपर रुपये तो मागता नही है और सेठ योग्य व्यक्ति है अत. स्वीकारता तो देनी ही पडेगी। जो मुखिया थे, उनको पचो का हुक्म मिल गया। अब पच लोग खडे हुए और कहने लगे—सेठ साहब, आपने जो पचो के समाने प्रस्ताव रखा है, उसे सारी न्यात मजूर करती है और आपको परवानगी देती है। सेठ ने कहा—आप लोगो ने मेरे ऊपर बडी कृपा की है। इसके बाद ठडाई पीकर सब लोग चले गये। सेठ ने भी खुले दिल से बढिया तैयारी की। निश्चित दिन सारी न्यात जीमने को आगई। चार प्रकार का भोजन था, अच्छी रसोई तैयार की गई थी सो सबने खूब आनन्द के साथ भोजन किया। अब अन्त मे पापड की मनवार का समय आया। सेठ ने छाबडी मे पापड लिये और एक हाथ मे पखा ले लिया। सेठ सब पर हवा करता है और कहता है कि सब सूखी पाकी चीजें हैं, सब आरोगने पधार जो। सब लोग बोले—सेठ साहब, कोई कमी नही रही, सब रसोई बहुत बढिया बनी है।

झूठी ऐंठ से सर्वनाश

भोजन के अत मे सेठ सब को पापड परोसता है। उन सबके बीच मे एक ऐसे भी भाई थे, जिनका पहिला नम्बर आया हुआ था और देखने मे बिलकुल दरिद्रो के सरताज। सेठ उसके पास पहुँचा और उसे जो पापड परोसा, वह थोडा सा टूटा हुआ था। ज्यो ही उसकी पत्तल मे खाडा पापड रखा, त्योंही उसका भोगना बदला। वह मन मे कहने लगा कि यह गाव मे सेठ बनकर आया है ? इस नकटे को शर्म नही आई कि मुझे खाडा पापड दे दिया। अब वह पापड़ को वैसा ही छोडकर और हाथ धोकर के उठ

गया। अव वह अपने घर पर पहुंचा और स्त्री से कहने लगा कि सारा गहना खोल दे। स्त्री सोचने लगी—आज क्या बात है ? उसने पूछा कि गहना किसलिए खोल दू ? वह बोला—तू पचायत करती है, या खोलती है ? उसने इतना कहते ही स्त्री ने सारा जेवर खोल दिया। अव वह सारे गहने और मकान का पट्टा लेकरके एक पू जीपति के पास गया और कहने लगा कि यह लो गहना और यह लो मकान का पट्टा। और मुझे इतने रुपये दो। उसने पूछा कि भाई, यह गहना और यह पट्टा क्यो गिरवी रखते हो। अरे, ये तो हमेशा काम मे आने वाली चीजें हैं। वह बोला—आप लपराई क्यो करते हैं ? यदि नही देते हो तो मैं आगे जाता हूँ। यह बोलने वाला ऐसा था, तो वह भी पूरा अकड बाज था। अतः उसने कहा—सेठ साहव, मैं माफी चाहता हूं, मैं तो गिरवी नही रखू गा। अव वह दूसरे के पास गया, तो उसने भी नही रखा। अव वह उस सेठ के पास पहुँचा—जो पराया माल ही खाने वाला था। उसने जव इसकी वात सुनी तो सोचा इसे करडे व्याज पर रुपया देना चाहिए, जिससे कि गहना और मकान दोनो ही अपने पास रह जावेंगे। अव वह बहुत ऊ चे व्याज पर रुपया लाया। और शाम को उसने जाजम विछवा दी और पच इकट्ठे किये। पचो ने आकर पूछा—आपने आज हम लोगो को क्यो बुलाया है ? वह बोला—पचो, मुझे वडेरो का नुकता करना है, अत आप लोग परवानगी दिलावें। वह इसी गाव का था, गाव वालो से उसकी स्थिति छिपी हुई नही थी, सव जानते थे कि इसकी आर्थिक स्थिति कमजोर है। अत पाच-सात पच उठकर उसके पास गये और कहा कि यह आपको क्या सूझी है ? आप यह क्या कर रहे है, अभी अवसर नही है। न्यात को तो जीमने में एक घडी लगेगी। और यह एक घडी की वात तुम्हें जीवन भर के लिए भारी पड जायगी। आप जो मनवार कर रहे हो, तो वह मनवार जैसी ही है। यह वात पचो ने धीर स्वर से कही। परन्तु उसने जोर मे कहा—मैं आप लोगो को जानता हू। कल उन सेठ जी ने कहा—तो झट परवानगी दे दी और मुझे इन्कार कर रहे हो ? मैं भी आप लोगो को जानता हूँ। जव पचो ने देखा कि यह मानने वाला नही है, तव उन्होने उसे मजूरी दे दी। लोग समझ गए कि यह भली बात कहने सुनने पर बुरा मानता है। उसकी १० पर उसे मजूरी दे दी गई। उसने भी तैयारी की और यथा समय सव लोग जीमने को आ गये। जीम कर सव लोगो ने कहा—सेठ साहव धन्यवाद ! जव सव लोग जीम चुके, तव वह भी पापड की छावडी और पखा लेकर निकला। भाई, उसे तो उस सेठ

की वरावरी करनी थी। इसी के लिए तो उसने घर फूक कर तमाशा देखने वाला काम किया था। वह सब को पापड परोस कर उन सेठजी के सामने पहुचा और तीन वार खखारा किया। सेठ जी ने पूछा कि सेठ साहब, क्या आपके गले मे कुछ अटक गया है ? यह सुनते ही उसने एक पापड के दस टुकडे कर दिए और एक टुकडा उस सेठ जी की पत्तल मे रख दिया और अपनी नाक पर अगुली फेरने लगा। सेठजी ने पूछा—क्या नाक में दर्द है ? यह सुनते ही वह बोला—सेठ जी क्या भूल गये कल की बात ? अरे तुमने सारी न्यात के भीतर मेरा महाजना विगाड दिया था। परन्तु मैं चूकने वाला नही था। इसीलिए पापड का दसवा टुकडा रखा है। सेठ साहब बोले—बस, इतनी सी बात के लिए तुमने अपने बच्चो को रुला दिया है। यदि आटा मेरे साथ था, तो मुझे घर पर बुला लेते और दसवा टुकडा, बल्कि पापड की चूरी करके भी रख देते तो मैं प्रेम से खा लेता। इसमे मुझे क्या आना जाना है, क्या तकलीफ है।

यह कहानी सुनाने का अभिप्राय यह है कि जिन मनुष्यो के हृदय मे इस प्रकार का आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान है, वे क्या धर्म ध्यान कर सकते हैं ? कुछ भी नही। उनके भाग्य मे तो आर्त्तध्यान ही लिखा हुआ है। इसलिए ऐसे क्षुद्र विचारो को छोड कर धर्मध्यान की ओर आओ, अपनी धार्मिक भावना को बढाओ। तभी आपका आत्म-कल्याण हो सकेगा।

१५

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता

णमो समणस्स भगवओ सिरिवड्ढमाणस्स महावीरस्स ।

उपस्थित भाइयो और बहिनो, आज आप लोग मेरा नाम लेकर मुझ पर भारी बोझा डाल रहे है। मेरे भीतर न तो ज्ञान शक्ति है, न तप शक्ति है और न मैंने समाज की ही कोई सेवा की है। मैं तो चतुर्विध सघ का एक सेवक हू और जो मुझ से बन पडती है, वह टूटी फूटी सेवा कर रहा हू। उसमे जो कुछ सफलता मिलती है वह तो सारे सघ की कृपा है कि मैं हर कार्य मे सफलता प्राप्त कर सका।

मुझे अभी आपके कार्यक्रम मे बीच मे बोलने का अवसर नही है। परन्तु न्यायमूर्त्ति लोढा जी को जाने की उतावल है, इसलिए मैं आप लोगो के समक्ष एक बात कहना चाहता हू कि आपके बडेरो मे से चार-पाच ने विचार किया कि अपने लडको के लिए पढाई की सुन्दर व्यवस्था नही है, तब वे कैसे आगे बढ सकेंगे। तब उन्होने यहा पर स्कूल की स्थापना की है, जिसमे पढकर कई वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, जज आदि बने। वे लोग विचारशील सज्जन थे। हनवन्तचन्दजी, बख्तावरमलजी किशनसिंह जी तपसीलालजी आदि। उन सबने मिलकर साधारण रूप मे स्कूल, खोला। वह फिर मिडिल स्कूल और बाद मे हायरसेकेन्डरी स्कूल बन गया। इस प्रकार लडको के लिए तो शिक्षा की व्यवस्था हो गई। परन्तु इस शहर मे जो लडकिया है,उनके शिक्षण की कोई व्यवस्था आप लोगो ने अभी तक नही की है। अरे, जैसे लडके आपके जीमणे हाथ हैं, तो ये लडकिया भी तो

वाया हाथ है। जीमणे हाथ के लिए तो वडी-वडी इमारतें वना रहे है और उसे और भी ऊँचा लाने का प्रयत्न जारी है। परन्तु आप लोग अपने वाये हाथ को भूल गये। हमारे समाज की छोटी-छोटी वच्चिया शिक्षा लेना चाहती हैं, फिर भी उनके लिए हायरसेकेण्डरी स्कूल नही खुल सका है। अभी जिन छोटे छोटे कमरो मे इन वच्चियो को पढाया जाता है, वहा पर उन्हे भेड वकरियो जैसा भर दिया जाता है और एक-एक दिन मे तीन-तीन पाली स्कूल चलाया जाता है, फिर भी लडकियो के लिए स्थान की कमी रहती है। इसका हमे वहुत दुःख है। फिर जव हम वहा व्याख्यान देते हैं, तो उनकी पढाई मे विघ्न आता है। और यदि वे पढती हैं, तो व्याख्यान मे विघ्न होता है। इसलिए मैं एक प्रेरणा देता हूँ कि श्रावक सघ को कन्या हायर सेकेण्डरी स्कूल खोलना चाहिए। जव तक यह नही खोला जाता है, तव तक यह सव के लिए वडे शर्म की वात है। यद्यपि इस काम को करने की तैयारी है और मुनि रूपचन्दजी ने नाम भी गिना दिये हैं, तो भी भाई, केवल नाम गिना देने से काम नही चलेगा, हमारे लिए तो वडे से वडे अफसर, वकील, जज सव वरावर हैं। मैं तो सभी का सहयोग-चाहता हूँ। यदि केवल वडे ही वडे विचार करके उक्त कार्य को करना चाहे, तो भी वह पार नही पडेगा। और यदि छोटे ही करना चाहे और साथ मे वडो का सहयोग न हो, तव भी काम पार नही पडेगा। इसलिए छोटे और वडे सभी के दिलो मे विचार होना चाहिए।

भाइयो, जो वात मैं कह रहा हू, उसके लिए आप लोग विचार करे कि मेरा कहना गलत है, या सही ? मैं पूछता हूँ कि आप लोगो ने लडकियो के लिए क्या त्याग किया है ? अरे, आपके यहा लाखो रुपयो की टकसाल पड रही है, और नोट तिजोरियो के भीतर समा भी नही रहे हैं। फिर भी यदि उन्हे लडकियो के लिए नही निकालते हैं, तो क्या है ? आप हुटडी मे देदेगे ? डोरे मे दे देंगे और अन्य वातो मे भी खर्च कर देंगे ? तो उससे क्या है ? लडकियो को शिक्षा देना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। क्या आप लोगो को ज्ञात नही है कि भगवान् ऋषभदेव के पुत्र और पुत्रिया वयस्क हो गई, तव सर्व प्रथम उन्होने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को ही पास वुलाकर और दोनो जाघो पर उन्हें वैठाकर पढाना प्रारम्भ किया था। पीछे भरतादि पुत्रो को पढाया था। श्री हेमचन्द्राचार्य लिखते है—

अष्टादशलिपी ब्राम्ह्या अपसव्येन पाणिना।
दर्शयामास सव्येन सुन्दर्या गणित पुनः ॥

अर्थात् महाराज ऋषभदेव ने दाहिनी जाघ पर बैठी हुई ब्राह्मी पुत्री को दाहिने हाथ से अठारह प्रकार की भाषाओ की लिपि लिखाई। तथा बाई जाघ पर बैठी हुई सुन्दरी को बायें हाथ से गणित विद्या सिखाई। ब्राह्मी पुत्री के द्वारा सर्वप्रथम लिखी जाने के कारण ही ब्राह्मी लिपि भारतवर्ष मे सबसे प्राचीन मानी जाती है। जब भगवान् ने तो अपनी दोनो पुत्रियो को सर्व प्रथम लिखना, पढना सिखाया, तब उनको आदि तीर्थंकर मानकर सर्व-प्रथम उन्हे नमस्कार करने वाले आप लोगो के लिए यह अति लज्जा और दुःख की बात है कि हम लडकियो की शिक्षा की इतनी उपेक्षा करे।

कन्याओ को शिक्षित करिए

यद्यपि सरकारी स्कूलो मे शिक्षा की व्यवस्था है, तथापि वहा पर धार्मिक शिक्षा नही मिलती है, जिसके अभाव मे हमारी बच्चिया धार्मिक ज्ञान से शून्य रहती हैं। फिर आज तो इन सरकारी स्कूलो मे मुर्गी पालने और उनके अण्डे खाने की, मास को खाने तक की शिक्षा उनमे पोषक तत्त्व (विटामिन) के नाम पर दी जाने लगी है। ऐसी दशा मे हमारा परम्परागत शुद्ध आचार विचार आगे कहा शुद्ध रह सकेगा? इसलिए जोधपुर शहर मे ही नही, बल्कि सारे भारतवर्ष मे जहा जैन समाज रहता है, उसे चाहिए कि अपने बच्चे-बच्चियो की शिक्षा-दीक्षा जैन स्कूल खोल कर ही देवें, जिससे हमारा आचार-विचार भी पवित्र बना रह सके और धार्मिक शिक्षा के साथ साथ लौकिक शिक्षा भी पाकर जीवन मे कुछ कार्य करने मे समर्थ हो सकें। इसलिए आज चार-पाच व्यक्ति खडे होकर प्रतिज्ञा करें कि लडकियो के लिए हायर सेकेन्डरी स्कूल खडा करेंगे और उसमे किसी भी प्रकार की कमी नही रहने देवेंगे। इस कार्य के लिए जोधपुर-सघ सर्व प्रकार से समर्थ है। आज आखो का आपरेशन कराने मे जोधपुर का सघ कितना आगे आया है। यह भी बहुत उत्तम काम है। आँखो का आपरेशन निःशुल्क कराने का आयोजन करना भी चक्षुदान है। यह तो द्रव्य-चक्षु का दान है और विद्या पढाने की व्यवस्था करना भाव-चक्षु-ज्ञान नेत्र का दान है। भाईयो, यदि स्त्री समाज सुधर जाय, वह शिक्षित हो जाय और धर्म पर आरूढ हो जाय, तो धर्म का विशेष रूप से प्रचार होगा। इसमे जोधपुर-समाज का गौरव है। चार-पाच महानुभाव खडे हो जावें और प्रतिज्ञा कर लेवें कि कार्तिक सुदी पूनम के पहिले इस कार्य को हम अवश्य पूरा करेंगे।

यो तो मुणोत ठाकुर—जिनके वडेरो ने बडी व्यवस्थापूर्वक जोधपुर का राज्य किया है। और श्री लोढा जी की छत्री भी आज मारवाड जक्शन

पर लोगो का आह्वान कर रही है। उन वीरो ने अपनी समाज, अपने धर्म और देश के लिए अपना बलिदान कर दिया था। अब भी यदि आप अपने बडेरो का अनुकरण और अनुसरण नही कर सकेंगे, तो यह आप लोगो के लिए बडे भारी शर्म की बात होगी।

कल स्थानीय बालिका-विद्यालय की अध्यापिका मेरे पास आई थी। उसने जो विचार रखे, उस पर मुझे ख्याल आया तो आज सारी सभा के बीच मे सूरजमलजी सखलेचा, दौलतराजजी पारिख, मुणोत ठाकुर थानचद जी, सुजानमल जी, जेठमल जी, मूलचन्द जी, न्यायमूर्त्ति लोढा जी चादमलजी, नाहटाजी एव भडारी जी ये जो यहा के नवनिधि हैं, वे यदि आज यह प्रतिज्ञा कर लें कि हम लोग तन-तोड परिश्रम करके और धन जोड करके कार्त्तिक सुदी पूनम तक बालिकाओ के लिए हायर सेकेन्डरी स्कूल बनावेंगे और उसके लिए समुचित व्यवस्था करेंगे, तो आप लोगो के शहर मे की एक बडी भारी आवश्यकता की पूर्ति हो जायेगी।[1]

●●

भाइयो, मैंने आप लोगो को जो सन्देश दिया, उसे जोधपुर-सघ एव नौ प्रतिनिधियो ने स्वीकार किया और आश्वासन दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसमे वे लोग अवश्य ही सफलता प्राप्त करेंगे और समाज की जो बच्चिया हैं, उनको शिक्षा प्राप्त करने का नया शुभावसर मिलेगा।

अभी अभी राजस्थान के वित्तमत्री आज आपके सामने इस रूप मे है। परन्तु पहिले हमारे पास मे जयनारायण जी व्यास, मथुरादास जी, गोकुल भाई भट्ट, हीरालाल जी शास्त्री आदि तब आते थे, जब कि राजाओ का बोलबाला था। उस समय भी साथ थे और आज भी साथ मे हैं।

अभी वित्तमत्री जी ने कहा कि समाज के लिए कोई न कोई नवीन वस्तु होनी चाहिए। आप लोग उपदेश तो प्रतिदिन सुनते हैं, परन्तु सीधी सी बात यह है कि 'एक था राम और एक था रावणियो, वह ले गया लुगाई ने और वह ले लियो गावडियो।' उपदेश सुनने का सार यही है कि धर्म का

---

१ (इस अवसर पर श्री मरुधरकेसरी जी महाराज साहब ने उक्त नौ प्रतिष्ठित सज्जनो को बालिका हायर सेकेन्डरी स्कूल के खोलने की प्रतिज्ञा कराई। आपके भाषण के पश्चात् वित्तमत्री (राजस्थान) श्री मथुरादास जी माथुर का भाषण हुआ। पुन आप श्री ने भाषण किया जो इस अश के आगे पढिए।

गौरव रखा जाय। धर्मगुरु, श्रावक, श्राविका, राजनैतिक नेता और अन्य विचारशील पुरुष वफादारी के साथ अपने आत्मा को और देश समाज की उन्नति करें। मुख्य बात या मूल वस्तु तो यही है कि सब लोग बातो का विस्तार कम करके कार्यों को करने के लिए, देश, समाज, धर्म और अपनी सन्तान के उत्थान का काम अधिक करे। तभी वास्तविक उन्नति होगी।

अभी वित्तमत्री श्री मथुरादास जी ने कहा कि जो भी नया काम आप लोग करेंगे उसमे सरकार आवश्यक सहयोग देने के लिए तैयार है। भाई, सरकार को तो तैयार होना ही चाहिए, क्योकि सरकार के तैयार हुए बिना काम नही चल सकता है। जनता मे है ही क्या ? आप लोग तो मारवाड के है। नही भी खाया हो, तो भी मूछो पर चावल तो रख ही लेते हैं शान के लिए। तो इसमे क्या है ? जोधपुर के मुसद्दियो मे और क्या रखा है ? धन को तो राडी-राड भी केवट लेती है। मथुरादास जी सब लोगो से न्यारे नही है। राज्य की सत्ता हाथ में है तो बहती गगा मे जो लावा लेना है, वह ले लो। और लेना ही चाहिए। राजनीति की बात हम फक्कडो को नही कहनी चाहिए। सुखाडिया जी ने मेवाड मे—जहा पर पचास लडके भी नही थे, वहा पर भी हायर सेकेन्डरी स्कूल खुलवा दिये हैं और स्थान-स्थान पर चहल-पहल नजर आ रही है। फिर वित्तमत्री जी तो जोधपुर के सपूत हैं, और इसी मारवाड के जन्मे हुए हैं। इसलिए मेरा कहना है कि यहा की भूमि को भी हरी-भरी होना चाहिए। आपका सरकार मे प्रभाव है और सत्ता भी हाथ मे है। लोगो के बुलाने पर चाहे जहा जाने को तैयार रहते हैं, तो इनसे आप लोगो को भर-पूर लाभ उठाना ही चाहिए। इनका भी नाम अमर हो जायगा और आपका यह मारवाड भी खुशहाल हो जायेगा। हम तो साधु हैं, न हम काग्रेसी हैं, न जनसघी, न कम्यूनिस्ट हैं, न समाजवादी, और न स्वतन्त्र पार्टी के हैं। परन्तु देश की भी सेवा करनी चाहिए, यह लगन अवश्य है।

जैनधर्म का सिद्धान्त है कि सग्रह बुद्धि नही रखना। यह भ० महावीर का सिद्धान्त खरा है। जो सग्रह करे, उसे मैं महावीर का अनुयायी नही मानता हू, उसे तो मैं देश-घातक मानता हू। देखो मक्खिया मधु को इकट्ठा करती हैं और छत्ता बनाती हैं, परन्तु मधु को स्वय नही खाती हैं। तब क्या होता है ? लोग छत्ते के नीचे आग जलाकर और मक्खियो को भगाकर माल को स्वय ले उडते हैं, फिर उनको भी रोना पडता है। राजा-महाराजा

कहते थे कि हमने इतनी जमीन रख ली है । परन्तु अब सीलिंग आगया और नक्सलवाद हो गया लोग जमीनो पर कब्जा कर रहे है । इसलिए भाई, चोसे का कलाकन्द अकेले मत खाओ । नही तो तुम्हे भी दूसरे लूटेंगे । अरे, स्वय भी खूब खाओ और दूसरो को भी खूब खिलाने की कोशिश करो ।

आज यहा पर अपने सघ की उन्नति के लिए एक भाई आये हैं और एक रूप-रेखा बनी है कि दस लाख रुपया इकट्ठा किया जावे, और सरकार भी सहायता देवें तो एक लाख रुपया देने को वे भी तैयार हैं । इसलिए काम इस ढग से होना चाहिए कि दस लाख की यह मूल रकम भी खर्च न होवे और उसके ब्याज से काम हो जाये एव मूल पूजी कायम रहे । यह रूप-रेखा है तो सुन्दर और उनकी उदारता के लिए धन्यवाद है । अभी नाम मैंने खोला नही है । आप लोग जानते भी है । मैं चाहता हू कि ये साहब, इस बात पर गौर कर ले और पाच लाख का काम करे । पाच लाख आपके घर मे से और पाच लाख सरकार मे से आवेगे । यह मारवाड के लिए एक बहुत बडी बात हो जायेगी । बाहिर के लोग भी इसका अनुकरण करेंगे ।

यहा पर उपस्थित भाइयो मे पाच-सात भाई अच्छी रूप रेखा बनाने वाले हैं । वे आपस मे विचार-विनिमय करके उसे तैयार करें और विधान बनाकर समाज के सामने आवे तो बहुत अच्छी बात हो । आज देने वालो की कमी नही है । जब कोई नई बात खडी होती है, तो सबका सहयोग मिलता ही है । जब पाकिस्तान के साथ युद्ध का समय आया, तो जोधपुर सबसे आगे रहा है और आगे भी रहेगा । परन्तु मुसद्दियो की नींद मुश्किल से उडती है ।

यह एक रूप रेखा आप लोगो के सामने रखी है । इसके अमल मे आने पर बहुत से बेकार पुरुषो को काम मिलेगा और गरीबो को सहायता मिलेगी । भाइयो, आज जिन्दा वही रह सकता है और आगे वही जिन्दा रह सकेगा जो सबको साथ मे लेकर के चलेगा । जो दूसरो के आसू पोछेगा और गरीबो को, पीडितो को बराबरी का समझेगा, तो उसका सेठ पना नही जायगा सरकार भी उसका धन नही छीनेगी और नक्सलवादी भी उसे नही सतावेंगे । अतएव आप लोग सबको मदद देने मे आगे रहे । आप लोग जितनी ममता अपने ऊपर से उतारेंगे, उतना ही आपका भविष्य समुज्ज्वल बनेगा ।

१६

धर्म और विवेक

मणुय-णाइ व-सुरधरिय छत्ततया, पच कल्लाण सुक्खावली पत्तया ।
दसण णाण झाण अणत बल, ते जिणा दितु अम्ह वर मगल ॥

भगवान् महावीर स्वामी के वडे शिष्य गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि भगवन्, इस अगाध ससार मे अनन्तानन्त प्राणी डूब रहे है, उन डूबने वाले प्राणियो को आश्रय लेने का क्या कोई ठिकाना है ? उनके वचने का क्या कोई स्थान है ? भगवान् ने कहा—'हता गोयमा' हे गौतम, है । गौतम ने फिर पूछा—कइण भते ? हे भगवन्, वह कौनसा स्थान है ? भगवान् ने उत्तर दिया—'धम्मे ····· धर्म'

धर्म की परिभाषा

इस ससार रूपी भव-सागर मे डूबने वाले प्राणियो को वचने के लिए यदि कोई टापू है, द्वीप है, तो केवल धर्म है । धर्म के सिवाय इन जीवो को प्रश्रय देने वाला और कोई नही है । यहा प्रश्न होता है कि वह धर्म क्या है ? धर्म नाम स्वभाव का है । जिस वस्तु का जो स्वभाव है, उसका वही धर्म है । जैसे मिरची का स्वभाव चरखा है, नमक का स्वभाव खारा, इमली का स्वभाव खट्टा और मिश्री का स्वभाव मीठा है । इस प्रकार प्रत्येक वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है । कहा भी है—'धम्मो वत्थुसहावो' । पत्थर का स्वभाव नीचे गिरने का है तो धुए का स्वभाव ऊपर जाने का है' अग्नि की ज्वाला भी ऊपर को जाती है । ससार मे जितनी भी वस्तुए है, उनका धर्म भिन्न-भिन्न है । वह भिन्न-भिन्न धर्म भी एक नही है ।

वस्तु के अनन्त धर्म

प्रत्येक वस्तु मे अनन्त धर्म माने गये है। कहा भी है—अनन्त धर्मात्मक वस्तु' अर्थात् प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मवाली है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के गुण-धर्म अलग-अलग ही है। जैसे औषधियो मे कोई दस्तावर है, तो कोई दस्त को रोकनेवाली है। कोई पित्तकारक है, तो कोई पित्त को शमन करने वाली है। यदि किसी के पित्त और वात दोनो ही दूषित हैं, तो दोनो की शामक दवा उसे दी जायगी। यदि किसी के वात, पित्त और कफ तीनो प्रकुपित हो गये है, और वह व्यक्ति त्रिदोष से ग्रस्त है, तो उसे तीनो प्रकार की दवाए साथ मे दी जावेगी। एक ही रोगी के रोग को दूर करने के उपाय भी डाक्टर, हकीम और वैद्य तीनो अलग-अलग बतायेगे। रोग एक है, परन्तु उसके मिटाने के तरीके अलग-अलग हैं। डाक्टर की दवा आपको कडवी मिलेगी, यूनानी हकीम की दवा आपको मीठी मिलेगी, क्योकि वह बादशाही दवा है और वैद्य की औषधि चरकी मिलेगी। यदि आपको निकाला-निकला है—टाइफाइड हो गया है तो उसके लिए आयुर्वेदवाला कहेगा कि बीमार को अन्दर रखो, उसे हवा नही लगनी चाहिए, दूध नही देना चाहिए। जबकि डाक्टर कहेगा कि खुली जगह पर रखो, उसे खाने को दूध और फल दो। हकीम अपनी और ही दवा बतायेगा और आहार-विहार की वस्तुए भी और ही कहेगा। अब आप पूछें कि यह विभिन्नता कैसे ? भाई, आपको इस प्रपच मे पडने की आवश्यकता नही है। मरीज का केस जिस डाक्टर, वैद्य या हकीम ने ले रखा है, उसका उत्तरदायित्व उनके ऊपर है। वह कुछ भी कहे, या कुछ भी करावें, उसके बीच मे अपन को बोलने की आवश्यकता नही है। अपने को तो रोग मिटाना है। वे जो दवा देंगे और जो खान-पान आदि बतलावेंगे, उसके अनुसार ही चलना है। परन्तु लक्ष्य सबका एक है। सभी लोग रोगी को निरोग करना चाहते हैं। हमारे लिए तो उद्देश्य की सिद्धि होनी चाहिए। यदि आपको मद्रास जाना है, तो कोई जाता है, अहमदाबाद होकर, तो कोई जाता है दिल्ली होकर और कोई जाता है खण्डवा होकर। और जब पाकिस्तान नही बना था, तो कितने ही लोग कराची होकर के भी मद्रास जाते थे। अब चाहो जिधर से जाओ, परन्तु सबका लक्ष्य मद्रास जाने का है। यह सम्भव है कि किसी मार्ग से जाने पर चक्कर अधिक हो, तो अन्य असुविधाए उपलब्ध हैं, और किसी ओर से जाने पर चक्कर कम हो, तो अन्य असुविधाए अधिक हैं। पर आप जिधर से भी जाना चाहे उधर से जा अवश्य सकते है। और अपने लक्ष्यभूत स्थान पर पहुच सकते हैं।

प्रकृत मे धर्म की व्याख्या आपके सामने प्रस्तुत है कि धर्म किसे कहते हैं ? धर्म स्वभाव को कहते हैं। अपने-अपने स्वभाव मे रहना ही धर्म है। परन्तु हम जिस धर्म की व्याख्या आपके सामने कर रहे हैं, वह है आत्म-धर्म की वात। आत्मा का अपने स्वभाव मे रहना ही सच्चा धर्म है। आत्म-धर्म का निरूपण भी लोग अनेक प्रकार से करते हैं परन्तु आनन्दघन जी कहते हैं—

मत-मतभेदे रे जो जई पूछिये सहू थापे अहमेव।

आप जिस जिसके पास जावेंगे, वे अपनी अपनी मान्यता वता देंगे, और उससे ही ससार से तिरना वतायेंगे। और उसमे आपके भाव भी आजावेंगे। यदि हम वस्तु के स्वरूप को भली भाति से पहिचान लेवें कि यह उसका वास्तविक स्वभाव है, तो फिर आप किसी के अन्यथा कथन पर विश्वास नही करेंगे। किन्तु हृदय मे यही आस्था दृढ रहेगी कि सत्य तथ्य तो यही धर्म है। तथ्य रूप मे आत्मा का धर्म कौनसा है ? इसके उत्तर मे धर्म-प्रणेताओ ने वताया—

ससार-दु खतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे, स धर्म।

अर्थात् जो इन दुखी प्राणियो को ससार के दु खो से निकाल करके उत्तम अक्षय-अविनाशी सुख मे धरता है—पहुँचाता है, वही सच्चा धर्म है। सच्चा सुख वही है जो निरावाघ हो, जिसमे किसी भी प्रकार की आधि, व्याधि और उपाधि नही हो, ऐसा स्थान और ऐसा सुख ही प्रत्येक आत्मा चाहती है। आप वीमारी नही चाहते, मरना नही चाहते, दु ख पाना नही चाहते। किन्तु आप यही चाहते हैं कि जन्म, जरा और मृत्यु का दु ख मिट जाय, इनसे सदा के लिए छुटकारा मिल जाय, तो अच्छा है। यह आप लोग चाहते अवश्य हैं। परन्तु जीवन को कलुपित वना रखा है, उसे स्वच्छ और पवित्र नही रखा है। चाहते कुछ और हैं और करते कुछ और है, फिर वताओ—कार्य सिद्धि कैसे होवे ? धनजय महाकवि भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—

सुखाय दु खानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय वाला. सिकता समूह निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीया.॥

हे भगवन्, जिन लोगो ने आपके द्वारा प्रतिपादित धर्म के स्वरूप को नही समझा है, ऐसे अन्य मतावलम्वी लोग सुख चाहते हैं, किन्तु दु खो के काम करते हैं, गुण पाना चाहते हैं और दोपो का पालन करते हैं। तथा धर्म

की प्राप्ति के लिए पापो का आचरण करते है ? उनकी ये सब क्रियाएँ ठीक उसी प्रकार की है, जैसे कि बच्चे तैल की प्राप्ति के लिए बालू के समूह को पेलते है। परन्त बालू को पेलने से जैसे कभी भी तेल निकलने वाला नही है, उसी प्रकार पापाचरण करते हुए कभी सुख मिलने वाला नही और दोपो को करते हुए कभी गुणो की प्राप्ति होने वाली नही है।

साध्य और साधन समान हो

एक भाई आकर के कहता है आज मुझे भारी थकान है, अत रात भर आराम से नीद ले लू, तो अच्छा है। उससे कह दिया गया कि अच्छा आप आराम की नीद लीजिए। अब वह चारो ओर आग लगाकर, एव अपने सोने की झोपडी मे भी आग लगाकर और रजाई ओढकर सो गया। बताओ उसे आराम की नीद आयेगी, या नीद हराम हो जायेगी ? वह नीद लेना चाहता है, परन्तु उसने आराम की जगह नीद हराम का काम किया। ठीक इसी प्रकार आप जन्म, जरा, मरण को मिटाना चाहते हैं, सो उसके मिटाने का मार्ग तो छोड दिया और उनके बढाने का मार्ग पकड लिया। अब बताओ—उनसे छुटकारा मिले तो कैसे मिले ? कभी नही मिल सकता है। जब तक हमारे साधन साध्य के अनुकूल न होगे तब तक हम अपने साध्य से, लक्ष्य से, ध्येय से दूर ही भटकते रहेंगे।

अरे, हम अपने विचारो की तो छान-बीन करें और देखें कि हमारे विचार कितने क्षुद्र हैं, स्वार्थ से भरे हुए हैं और दूसरो का अनर्थ करनेवाले हैं। हम अपने क्षुद्र स्वार्थ के साधने के लिए दूसरो को कितना कष्ट पहुँचाते हैं और उनके सुख के मार्ग मे कितनी रुकावटें डालते हैं ? इसके सिवाय हमारे भीतर उत्तम कार्य करने के लिए उत्साह नही रहा, हम उत्साह और साहस से हीन बने हुए हैं। हम जरासी तकलीफ को देखकर अपने पैरो को और भी कमजोर बना लेते हैं। भाई, दृढता और साहस के साथ आप आगे बढ़ें तो आपका चिन्तित कार्य सिद्ध हो सकता है। आपके पास वह दिव्य और अनुपम वस्तु है कि जिसके लिए कल्पवृक्ष की उपमा दी जाय, तो वह थोडी है, चिन्तामणि की उपमा दी जाय, तो वह भी छोटी है और कामधेनु की उपमा दी जाय, तो वह भी छोटी है। आपके पास की वस्तु इन सबसे बहुत बडी है और कामधेनु, चिन्तामणि आदि सब उसके सामने छोटी हैं, नगण्य है। वह वस्तु क्या है ? वह वस्तु है धर्म। कहा भी है—

धर्म करत संसार-सुख,धर्म करत निर्वाण।
धर्म-पन्थ साधे बिना नर तिर्यंच समान॥

धर्म ही इहलोक की रिद्धि, सिद्धि, समृद्धि, सुख और शान्ति देने वाला है और कर्मों का नाश करके उस अविनाशी मोक्ष पद को देने वाला है, जहा पर कि अनन्त काल तक अक्षय, अनन्त और अविनाशी अव्याबाध सुख है। परन्तु जिन्होने - धर्म का पथ साधा नही, तो वे पुरुष तिर्यंच के समान है, क्योकि धर्म-साधना के विना मनुष्य तिर्यंचयोनिको प्राप्त होता है।

धर्म हीन, पशु से भी गया-गुजरा

यहा प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या तिर्यंच धर्म को नही करते हैं ? भाई, वे भी धर्म करते हैं और श्रावक के ग्यारह व्रतो का पालन करते हैं। एक व्रत को धारण करे, वह भी श्रावक कहलाता है और वारह व्रतो को पालन करने वाला भी श्रावक कहलाता है। सज्ञी तिर्यंच ग्यारह व्रत धारण कर लेता है और आप वारह व्रत धारण करते हैं। फिर यह क्यो कहा गया कि 'धर्म-पथ साधे विना, नर तिर्यंच समान'। भाई, जो तिर्यंच धर्म का अपनी शक्ति के अनुसार जितना भी पालन करता है, वह उतने ही अश मे विवेकशील हैं, तथा जो मनुष्य जितने अश मे धर्म धारण करता है, वह भी उतने ही अश मे विवेकवान् है। परन्तु जिस मनुष्य मे धर्म का पालन नही है और न धर्म का विचार ही है, तो कहिये ? वह तिर्यंच से भी गया-गुजरा है, या नही ? कोई व्यक्ति कहे कि साहव, करना तो पडता है ? तो विवेक से करो। विवेक-हीन मनुष्य पशु के तुल्य ही नही, अपितु उससे भी गया-गुजरा है ?

धर्म मे विवेक की ज्योति जगें

आज आप लोग जहा पर बैठते है, यह सवाईसिंह जी की पोल लम्बी चौडी हैं। इसमें कुछ हिस्सा छूटा हुआ है, तो वहा पर आप लोग लघुनीत और वडी नीत भी करते है। मैं पूछता हू कि क्या यह इसीलिए सुरक्षित कर दिया गया है कि आप लोग वहा पर आवें और यही पर लघुनीत और वडीनीत करें। भाई, विवेक से काम लेवें ! यहाँ पर श्रावक वैठे हैं, श्राविकाएँ वैठी हैं, साधु और सतिया भी वैठी हैं, तथा लडकिया भी पास मे वैठी हैं। फिर भी यही आकर लघुनीत कर लेते है, तो क्या यह विवेक है, क्या यह समझदारी है ? यदि प्रतिदिन सामायिक करते हैं, तो इसका यह मतलव नही है कि लज्जा को भी नीचे धर देना ? परन्तु विवेक नही है। मैं देखता हू कभी कभी इधर, तो कमरे के वाहिर भी नही निकलते हैं और दरवाजे के भीतर से ही पेशाव कर देते हैं, वा

क्या यह कोई सामायिक है ? क्या यह पौषध है ? यदि कोई टोकता है, तो लडने को तैयार है। भाई, पेशाब करने के लिए भी विवेक होना चाहिए। यदि समझदार लोग भी इसका ध्यान नही रखेगे, तो छोटे बच्चे तो खडे-खडे और सोते-सोते ही कर लेगे। इन बच्चो को अपन कहते है, किन्तु जब हम बडे हैं, तो हममे थोडा बहुत तो बडप्पन होना चाहिए। परन्तु हमारे भीतर यह विवेक की कमी है। इसी विवेक की कमी से धर्म का यह मार्ग जो फूल सा सुकोमल और सुगन्धित था, वह कटकाकीर्ण और दुर्गन्धित हो गया है।

आप मे से कोई पूछे कि फिर हम कहा जाकर धर्म की आराधना करें ? अरे, आप लोग देखते हैं कि जैसे यह धर्म-साधना का स्थान आप लोगो के लिए है, वैसे ही मूर्त्ति-पूजक भाइयो के लिए मन्दिर हैं, मुसलमानो के लिए मस्जिद हैं, ईसाइयो के लिए गिरजाघर हैं और सिक्खो के लिए गुरुद्वारे हैं। वे सब लोग अपने धर्म-स्थान को कितना स्वच्छ रखते हैं, उनका कितना गौरव रखते है और उनका कितना मान करते हैं ? कभी भी उन्हे न स्वय गन्दा करते हैं और न दूसरो को गन्दा करने देते हैं। वे लोग क्या आप लोगो के समान अपने धर्मस्थानो को गन्दा करते है क्या ? नहीं करते है। आप लोग भी उनके मित्र हैं, साथी है, फिर आपका विवेक कहा लुप्त हो गया ? आप लोग भी तो इसी दुनिया के हैं, और भी बहुत सी बाते हैं। शरीर का वेग सब मे होता है, परन्तु विवेक से उसे निवारण करना चाहिए। बल्कि अन्य लोगो की अपेक्षा आप लोगो मे विवेक विशेष होना चाहिए, क्योकि आप सूक्ष्म दया के पालने वाले है, तो और भी अधिक विवेक से काम लेना चाहिए। इतना ऊँचा चढकर और समझदार होकर भी विवेक नही रखना यह कहा की बुद्धिमत्ता है ? दस आदमी बैठे हैं, उनमे से एक गलती करता है, तो बदनामी सबकी होती है। परन्तु हुई किससे ? मूर्खों की सगति करने से। यदि नौ आदमी उससे कह देवें कि यह धर्म स्थान है, पेशाब करने का स्थान नही है, तो आगे से वह भी धर्म स्थान को गन्दा नही करता और न दूसरो को भी आगे से गन्दा करने का साहस ही होता।

भाइयो, विवेक से काम लो, विवेक मे ही धर्म माना गया है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है—

विवेगो मोक्खो —आचाराग चूर्णि १।७।१

मोक्ष और कुछ नही, जो अन्तर का विवेक है, वह पूर्ण रूप से जागृत

हो जाना ही मोक्ष है—विवेगे धम्ममाहिए—इसलिए विवेक को ही धर्म बताया गया है। यह बात हमने पहिले भी कही है और आज धर्म के ऊपर बोल रहे हैं। धर्म ही एक ऐसा तत्त्व है, जो हमको सवल बनाता है, विशाल हृदय वाला बनाता है और हमको सेवा करना सिखाता है। मनुष्य मे जब कमजोरी आती है, तब उसमे धर्म नही रहता। धर्म तो सुन्दरता और हृदय की स्वच्छता मे रहता है। सुन्दरपने मे रहकर हम समझदारी मे आजायें, तो धर्म रहेगा। धर्म के पालन करने मे निए जैसे धर्म स्थान को स्वच्छ रखना आवश्यक है, उमी प्रकार अपने आचार और विचार को भी स्वच्छ रखना आवश्यक है। आज यह निर्मल जिन शासन मलिन क्यो हो रहा है? इसका उत्तर दिया गया है—

> पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्च तपोधनै.।
> शासनं जिनचन्द्रस्य विमल मलिनीकृतम् ॥

जिनेन्द्र चन्द्र का यह निर्मल जैन शासन इन भ्रष्टचारित्र वाले पण्डितो ने और पेटार्थी साधुओ ने मलिन कर दिया है। यदि समाज का साधु वर्ग और पण्डित समाज अपने आचार को पवित्र रखता, तो आज जो जिन-शासन का तिरस्कार देखा जाता है, वह कभी देखने मे नही आता। हमे अपने पुनीत धर्म को पवित्र रखने के लिए अपने आचार-विचार पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

कर्तव्य और पुरुषार्थ धर्म है

कितने ही लोग आकर कहते हैं कि महाराज साहब, हमारा भी ध्यान रखना, कमाई नही है। परन्तु मुझे विचार आता है कि कितनी ही जातियो के लोग वाभी, वावरी आदिक पत्थर खोदते हैं, और मेहनत मजदूरी करके गुजारा करते हैं। मैं मेवाड मे गया तो देखा कि दूर-दूर तक लोग अकाल-राहत के कामो मे लगे हैं, उनके पास शरीर पर लगाने को लगोटी भी नही है, परन्तु वे कडकती धूप मे चट्टानदार नुकीली पहाडियों पर जाकर पत्थर फोड रहे हैं और ऊपर से नीचे सिर पर रखकर ला रहे है। खाने-पीने का कोई ठिकाना नही है, उनके बच्चे-बच्चिया धूल और धूप मे पडे है, फिर भी वे उत्साहपूर्वक परिश्रम कर रहे हैं और परिश्रम करते हुए भी किसी के सामने अपना दुख-दर्द कहने को तैयार नही हैं और न किसी के सामने हाथ पसार करके दया की भीख ही मागते है। आप लोग तो एक उद्योगी जाति मे उत्पन्न हुए है, फिर भी आपके भीतर पेट भरने की समस्या उपस्थित है? यह कितने दुख की बात है? यदि चाहे, तो मनुष्य हर

प्रकार के पुरुषार्थ से पेट भर सकता। आपने देखा है कि सिन्धी लोग अपना देश छोडकर भारत आये। उनके पास आजीविका के कोई साधन नही रहे। फिर उन लोगो ने हिम्मत नही हारी और वे तथा उनके छोटे छोटे बच्चे तक भी कोई न कोई उद्योग हाथ मे लेकर पेट भर रहे हैं। वे रेलो मे चलते है और मू गफली, चना आदि बेचकर अपना गुजारा चलाते हैं। किसी भी सिन्धी को आपने भीख मागते हुए नही देखा होगा ? यदि धन्धे के लिए दुकान नही मिली तो दुकान के बाहिर ही पटरियो पर दुकान लगाकर बैठ गये और धन्धा कर रहे हैं। भाई, हिम्मत हारने से दुनिया मे कोई सहारा देने वाला नही है। हिम्मत रखने पर ही दूसरे लोग सहारा देने को तैयार होते हैं। यदि अपने मे होसला है, तो दूसरे अवश्य ही मदद करते हैं। कहा है कि 'हिम्मते मर्दा मददे खुदा'। अर्थात् मनुष्य हिम्मत रखता है, तो हर एक उसकी मदद करता है। मारवाड की कहावत है कि एक घर वाला एक आदमी को प्रसन्न कर सकता है, परन्तु घर-भर को प्रसन्न तो कैसे कर सकता है ?

भाइयो, आज आपको हिन्दुस्तान मे भीख मागने वाले लोग लाखो की सख्या मे मिलेंगे। परन्तु विदेशो मे एक भी नही मिलेगा। इसका कारण क्या है ? यही कि वहा के लोग निरन्तर उद्योग मे सलग्न रहते है। छोटा-बडा काम करने मे वहाँ कोई शर्म नही है। मद्रास से जब यहाँ के सेठ लोग आते है तो उनके साथ मे काम करने वाली स्त्रिया भी आती हैं और आदमी भी आते हैं। वे मद्रासी लोग परिश्रमी कितने हैं ? उनको तीस रुपया मासिक वेतन और रोटी खाना मिलता है जिसमे वे मकान साफ करते हैं, कपडे धोते हैं, झूठे वर्तन माजते हैं और बच्चो की टट्टी तक साफ कर देते हैं। मद्रास मे इतनी अधिक गरीबी है, परन्तु फिर भी वे परिश्रमी है, उद्योग-शील हैं। आज आपके घरो मे परदेशी नौकर-चाकर काम कर रहे हैं इसका कारण क्या है ? यही कि आप लोग और आपकी ये देविया स्वय अपना काम अपने हाथो से काम करना भूल गये है और नौकर के आश्रित हो गये है। ये मद्रास से यदि नौकर न लावे तो यहा पर डेढसौ-रुपये मासिक से कम मे नौकर नही मिलेगा। ऊपर से खाना दो, कपडे दो, फिर भी वे चोरिया करेंगे। उनसे यदि किसी छोटे काम को कहा जायगा, तो माफ उत्तर देंगे कि यह काम हमारे करने का नही है, नही करेंगे। जब हम अपना काम स्वय नही करते हैं, तब दूसरे क्यो करने लगे ? अरे, अब तो हमारे लोग स्वय अपनी थाली भी माजने को तैयार नही हैं। यदि सेठ खाता है, तो

उसको स्त्री मांजे। इस प्रकार सभी लोग अपना कर्त्तव्य भूले हुए है। साथ ही साथ-धर्म भी भूले हुए हैं, तो फिर ये मानव-धर्म को कैसे करेंगे?

सेवा धर्म भूल गये?

आज आपके घर का कोई व्यक्ति बीमार हो जाय, तो लोगो के कैसे भाव होते हैं कि इसे सफाखाने मे भरती करा दिया जाय। घर पर कौन रात-दिन इसकी सार-सभाल करेगा? भाई, सफाखाने मे जो नर्स और कम्पाउण्डर है, वे क्या आदमी नही हैं? वहा पर जो भी बीमार जाता है, उठकर टट्टी पेशाब नही कर सकता है, या और किसी कार्य के करने मे असमर्थ है, उन सब कामो को वे बडी सहानुभूति के साथ करते है। वे क्या उन कामो को करते हुए नाक-मुह सिकोडते हैं, या घृणा प्रकट करते हैं? आपके लिए तो वे सर्व प्रकार से सौजन्य का व्यवहार करते है। परन्तु उनकी भी सेवा करने मे आपको हिचकिचाहट आती है और अपने सगे कुटुम्बियो को अस्पतालो मे भरती करा रहे हैं। वहा पर भगी भोजन कराता है, परन्तु करना पडता है। यदि नही करना है, तो अपने घर पर जाओ। पर वे घर क्यो आवें? क्योकि घर वाले तो नजदीक भी नही आना चाहते हैं और हाथ भी नही लगाना चाहते हैं। जब घर के लोग ही घृणा कर रहे हैं, तो दूसरे लोग तो क्यो नही करेंगे? आप लोग किसी भी शहर मे जाकर देखें, सर्वत्र सफाखाने मे बुरी तरह से मरीज भरे हुए मिलेंगे। अब सरकार भी वहां पर और विस्तर-सख्या बढाये तो कहा से बढावे। और कहां तक बढावे? सारी दुनिया को तो वह अस्पतालो मे बसा नही सकती। अब तो घरो मे से सेवा भाव मिट गया। पहिले समय मे यदि कोई बाहिर का व्यक्ति भी बीमार हो जाता था, लोग उसे अस्पताल मे भर्ती नही कराके अपने घर ले आते थे और सर्व प्रकार से उसकी वैयावृत्य और सार-सभाल करते थे। उन्हे यह ख्याल रहता था कि यदि अस्पताल मे कुछ ऐसा-वैसा हो गया, तो हमे दुनिया क्या कहेगी और उसे हम कैसे सहन करेंगे। आज इस सेवा-भावना का लोप होता जा रहा है। अब लोगो मे सुकुमारता आ गई है। और सेवा की भावना कही नजर भी नही आ रही है। अब आप लोग ही बतावें कि हम लोग कौनसा धर्म कर रहे हैं। धर्म तो मोटे मे मोटा है, बहुत महान् है, वह विश्व का कल्याण कर सकता है। परन्तु उस टापू पर चढे तो कैसे चढे, जबकि एक छोटी सी सीढी पर भी उसे चढना कठिन हो रहा है। फिर मजिल कैसे पार की जा सकती है? अपनी वस्तु

सभाल कर नही रखते और चली जाने पर दोप दूसरो को देते हैं। कहावत प्रसिद्ध है कि—

चीज न राखे आपनी, चोरे गाली देय।

आप यहा पर बैठे हैं और घडी खोल करके रखदी। अव आप भूल गये और वह किसी ने उडा दी, या कही गुम गई। अब आप कहते हैं कि मेरे पास तो फलानचन्दजी बैठे थे, सो उन्होने ही ले ली है। यह कहना क्या अपना धर्म है ? कहा है—

सहसातकारे किणी प्रति कूडू आल दीघो होय।

अर्थात् किसी को झूठा लाछन लगाना पाप है। ये वहिनें जव स्नान करने को जाली के पास वैठती हैं, या भीतर जाती हैं, या यो ही वैठती हैं तो जैसी आपको अपनी दुकान लगती है, ऐसे ही ये अपने गहनो को रख देती है। अव घर मे कितने ही लोग आते जाते है, तव यदि कोई आभूपण चला जाता है, तव वे चिल्लाती हैं। अरी वहिनो, पहिले ही यदि सभालकर रख देती तो कोई चूडी मैली होती थी क्या ? भाई कहा है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' जितने अधिक आभूपण पहिनना प्रारम्भ किये, उतनी ही विवेक की कमी आगई। अरे, किसी वस्तु के बनाने मे देरी लगती है, परन्तु जाने मे देरी नही लगती है। यदि कोई गहना चोरी चला जाता है, तो देवर-देवरानी, जेठ-जिठानी या नौकरानी के ऊपर चोरी का दोप लगाओगी और फिर पडौसी के लिए कहोगी—कि यह लेगया है। इस प्रकार की आदतें क्यो पड रही हैं ? क्योकि हमारे भीतर धर्म का विवेक नही है। हमने केवल धर्म-धर्म चिल्लाकर उसके प्रदर्शन का ढोग मचा रखा है। कोई मनुष्य यदि विवेक से काम लेवे—तो अभी आपके सामने मुनिजी ने कहा कि आर्त्तध्यान होता है। धर्म करने वाले व्यक्ति मे आर्त्तध्यान की गु जायश ही कहा है। मनुष्य धर्म को पहिचान लेवे तो आर्त्तध्यान का दु ख क्यो रहे ? अरे, कर्म हमने वाघे हैं और दोप अपना है, तो फिर दूसरो को क्यो दिया जाय। यह तो प्रत्यक्ष ही अपनी भूल है।

धर्म से भरे रहिए !

रामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी तीनो वन को जा रहे थे। वे जव अयोध्या के वाहिर निकले और वशिष्ठ मुनि के आश्रम के समीप पहुचे तो राम ने कहा कि लक्ष्मण, हम लोग चौदह वर्ष के लिए वनवास को जारहे हैं, अत गुरुजी के तो दर्शन करते चलें। भाई, वशिष्ठ जी उनके ससारी

गुरु थे, आध्यात्मिक गुरु नही थे। तब लक्ष्मण ने कहा—भाई साहब, आगे चलिये। इनके दर्शन फिर कर लेंगे। राम ने कहा—नही, अभी करते चले। तो तीनो ने वशिष्ठ मुनि के आश्रम मे प्रवेश किया। ज्योही उनकी दृष्टि इन लोगो पर पडी तो वे कमडलु उठाकर उल्टे जाने लगे। अर्थात् इन लोगो की ओर देखा ही नही। अब लक्ष्मण ने यह दृश्य देखकर कहा—भाईसाहब, व्यर्थ चल रहे है ? वे तो हमे देखकर भी पीठ फेर के जा रहे हैं। उल्टे जा रहे हैं। यह देख वे तीनो वापिस लौटे और वनवास को चल दिये। वनवास मे चौदह वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् जब वे अयोध्या को लौट रहे थे और वशिष्ठ मुनि के आश्रम के पास पहुचे तो राम ने कहा—चलो लक्ष्मण, ऋषि के दर्शन कर आवे। यद्यपि राम को जाते समय की घटना याद थी, फिर भी उनके हृदय से गुरुपने के भाव गये नही थे। उन तीनो ने ही आश्रम मे प्रवेश किया। अब गुरु की दृष्टि दूर से ज्योही इन लोगो पर पडी, तो वे अपने आसन से उठकर पाच-सात कदम आगे आये। यह दृश्य देखकर रामचन्द्रजी को मुस्कराहट आगई। उन्हे मुस्कराते हुए देखकर वशिष्ठ जी ने पूछा—अरे राम, यह वेतुकी असामयिक हँसी कैसी ?

राम बोले—गुरुदेव, जिस समय हम लोग वनवास को जा रहे थे, उस समय आप हम लोगो को देखकर भी उल्टी पीठ फेर कर चले गये थे। और आज आप हमारे सामने अगवानी से लिए पधारे है। हे भगवन्, राम तो उस दिन भी वही था और आज भी वही है। फिर उस दिन और आज के दिन मे अन्तर क्या हो गया है ?

गभीर होकर गुरु वशिष्ठ ने कहा—'देखो राम, तुम समझदार होकर के भी यह बात नही समझ सके ? अरे, ससार भरे के सामने आता है, रीते के सामने भी कभी कोई गया है क्या ? रामचन्द्र गुरु का उत्तर सुनकर निरुत्तर हो गये।

भाइयो, यही देखलो - फतहसागर, रानी सागर जल से भरे है, तो वहा दुनिया जाती है। और जब खाली पडे थे, तो क्या लोग वहाँ जाते थे ? नही जाते थे। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि खाली का क्या देखना ? जीमण जीमने को स्त्री-पुरुष सभी जाते है, परन्तु खाली कढाव पडे हो, तो क्या वहा लोग जाते है ? यही बात मुनियो के लिए भी है और यही बात पशुओ के लिए भी ले लो। यदि कुडी मे दो चार रोटियाँ है और एक एक टुकडा डालते हो तो आपको देखते ही कुत्ते पूछ हिलाते हुए आशा से दौड-कर आते हैं, या नही ? यदि आपके सामने ही कोई दूसरा मनुष्य खाली

हाथ निकलता है, तो उसके सामने नही जाते है, क्योकि वे कुत्ते भी समझते हैं कि इनके पास कुछ नही है। लोग छोटे गावो मे गाय-भैस रखते है और उन पर हाथ फेरा करते है, उन्हें पुकारते है और समय पर खाना-पीना देते है, तो आप यदि पचास कदम दूरी पर खडे रहके आवाज देते है, तो वे पशु भी दौडे चले आते है। पशु भी सब कुछ समझते है और इसीलिए वे धनी को देखते या शब्द सुनते ही रभाते हुए दौडते हुए सामने आ जाते है। जो धनी अपने जानवरो को दुख देता है, मारता पीटता है और खाने पीने को समय पर नही देता है, तो वह कितनी ही आवाजे देता फिरे, तो भी वे सामने नही आते हैं। यह बात मनुष्यो के समान पशु भी समझते है। दाना डालने वाले लोग जब कबूतरो के स्थान पर पहुचते हैं, तो उन्हे देखते ही सब इकट्ठे हो जाते हैं। यदि कोई खाली हाथ वाला निकम्मा निठल्ला व्यक्ति आता है, तो क्या वे आते है ? नही आते हैं।

भाइयो, इन बातो को सुनकर सोच लो, समझ लो कि यदि आपके पोते पुण्य है, तो सब आपका स्वागत करेंगे। और यदि वह नही है तो कोई भी आपकी बात पूछने वाला नही मिलेगा। फिर क्यो यह मन मे लाते हो कि यह सज्जन है और यह दुर्जन है—मेरा विरोधी ? यथार्थ मे न कोई अपना मित्र है और न शत्रु है। पुण्य के पोते रहते हुए सब मित्र बन जाते हैं, और उसके अभाव मे औरो की तो बात ही क्या है, सगे-सम्बन्धी और मित्र जन भी शत्रु बन जाते हैं और शत्रु-तुल्य व्यवहार करने लगते है। इसीलिए हमारे महर्षिगण कह गये है कि—

> अनादौ सति ससारे कस्य केन न बन्धुता।
> सर्वथा शत्रुभावश्च सर्वमेतद्धि कल्पना॥

अर्थात् यह जीव इस ससार मे अनादिकाल से परिभ्रमण करता हुआ चला आ रहा है। जब-जब इसके पुण्य कर्म का उदय हुआ तो किसकी किसके साथ बन्धुता और मित्रता नही हुई ? सभी की सभी के साथ बन्धुता और मित्रता हुई है। इसके विपरीत जब इसके पाप कर्म का उदय रहा है, तो सब की सभी के साथ शत्रुता हो गई है। इसलिए किसी के साथ मित्रता और शत्रुता की कल्पना करना ही मिथ्या है, सच्ची नही है। यथार्थ मे कोई अपना नही है।

सच्चा धर्म कहाँ है ?

देखो—गुड के समीप मक्खिया जाती है, पर अग्नि के समीप नही जाती

हैं। यदि आपके पास स्वार्थ-पूर्ति के साधन विद्यमान हैं, तो इस भाई को ही क्या, पचास धर्म भाई कर लो तो वे भी आपके सुख-दुःख मे काम आजावेंगे। कोई बहिन कहे कि आप मेरे भाई हैं, तो तुम्हारे पास कुछ होगा, तभी वह ऐसा कहेगी और मन मे सोचेगी कि इसे धर्म-भाई बना लू, तो यह कुछ न कुछ अवश्य देगा। अन्यथा ऐसे कौन देगा ? अरे, जो देता है, वह भरे हुए को ही देता है, खाली को कोई नही देता है। इसलिए कहा जाता है कि जो खाली को देवे उसी की बलिहारी है। भाई, बलिहारी उसे ही मिला करती है। बलिहारी लेना आसान काम नही है, जरा कठिन है। कहने मे कुछ नही लगता है।

धर्म शब्द कहने मे क्या है ? धर्म-धर्म सब कह रहे हैं। लोगो ने आज धर्म को इतना व्यापक बना दिया है और उसका इतना शाब्दिक प्रचार कर रखा है कि उसके अनुसार सच्चा धर्म वाला कोई भी नही मिलेगा। कोई ईसाई है कोई मुसलमान है, कोई जैन है, और कोई हिन्दू है। जो लोग जगल मे रहते हैं और जिन्हे आप आदिवासी कहते हैं, तो वे भी धर्म का नाम रटते हैं और अपना काम करते है। तो सबने धर्म धर्म चिल्लाना तो प्रारम्भ कर दिया है और सभी लोग अपने को धर्मात्मा और दूसरो को धर्म-हीन कहते हैं। परन्तु धर्म का मर्म किसी ने नही समझा है। वे सब डूबने का ही काम करते हैं। क्या करते है कि वैशाख का महीना आ गया है, अत घडे भर-भर कर पीपल की ओर बड की जड मे डालोगे तो धर्म होगा। मैं पूछता हूँ कि क्या यही वृक्ष है, दूसरे वृक्ष नही है ? फिर किसी एक वृक्ष की जड मे डालने पर ही धर्म होगा और दूसरे वृक्षो की जडो मे पानी डालने पर क्या अधर्म हो जायेगा ? इसी प्रकार कहते हैं कि वैशाख मे और सक्रान्ति के समय मे नहाओगे तो धर्म होगा। तो लोग क्यो नहाते हैं और ऐसा क्यो करते हैं ? इसीलिए कि धर्म का रहस्य ही उन लोगो ने नही जाना है। अरे, तुम जैनी लोग भी तो अनन्त-अनन्त चतुदर्शी चिल्लाते हो ? पर उसका भी क्या मर्म जानते हो ? नही जानते वैष्णवो मे रामचरण जी आचार्य हो गये हैं, वे शाहपुरा के महन्त थे। वे कह गये हैं कि—

कपड़ो पहरे साठ गज जल को छाणे नाय।
जीव असंख्या पीत हैं घूंट-घूंट के माय।
घूंट-घूट के माय पशु ज्यो जल मे झूले,
कर जीवो का जूर धर्म कर मन मे फूले।
रामचरण वे मानवी मेका पद के माय।
कपडो पहरे साठगज जल कू छाणे नाय ॥१॥

वे कहते है कि लोग कपडे तो साठ गज पहिनते है, परन्तु जल के छानने को एक हाथ भी कपडा नही मिला। अरे, आप तो एक बिन्दु जल मे असख्याते जीव बताते हैं। परन्तु उन्होने तो वैष्णव होकर के यह बताया तो क्या फर्क हो गया ? वे कहते है कि यदि जीव की हिंसा करोगे तो उसे ये पशु और जलचर प्राणी जलते है, वैसे ही तुम भी जलोगे। और फिर भी कहते हैं कि धर्म क्या है ? मन मे फूलते हो कि हमने धर्म किया। वे कहते हैं कि धर्म तो किया नही, केवल अभिमान ही किया।

सग्रामदास जी भी कहते है—

कहे दास सग्राम अकल थारी मे जाणी।
घणो देख मत ढोल बहुत मूघो है पाणी।
यो पाणी मूंघो घणो सकल सृष्टि को मूल।
दिवस दोय अलगो रहे तो खबर पडे रे थूल।
खबर पडेरे थूल छाड़ जावे पिड प्राणी।
कहे दास सग्राम अकल थारी मैं जाणी।

अब कहिये, उन्होंने कहने मे क्या कसर रखी ? कितने कठोर शब्दो मे उन्होने जल की यतना के लिए कहा है ? परन्तु जिन्होने धर्म का ढोग धारण किया है और धर्म का मर्म नही पहिचाना है ऐसे लोग धर्म क्या कर सकते हैं ? उनके सामने तो जो भी वस्तु आती है, उसे ही खाना प्रारम्भ कर देते हैं। वे रात-दिन का कुछ भी विचार नही रखते और पशुओ के समान दिन रात चरते ही रहते हैं। बताओ—ऐसे लोगो के पास क्या धर्म है ?

रात्रि भोजन से अनर्थ

रात्रि भोजन मे कितना पाप है, इसका कवि वर्णन करते हैं—

जीमे नर परभात, राक्षस जीमे रातरा।

प्रभात समय जीमना मनुष्यो का और रात को जीमना राक्षसो का होता है। रात्रि-भोजन से अनेक रोगो की उत्पत्ति होती है और अनेक त्रस जीवो का विनाश ही नही होता, अपितु वे खाने के साथ खा भी लिये जाते हैं। परन्तु आप लोग तो रात्रि भोजन के शौकीन हैं न ? पाच-छह बजे दुकान से निकले। फिर घर पर जाकर निवटते हैं, स्नान करते हैं और मौका मिला तो थोडी सी बूटी (भाग) भी छन जाती है। जब उसका नशा आता है तब घर पहुचते हैं। फिर स्त्री से कहते हैं कि गरम उतरते फुलके आना चाहिए। बताओ—अब आप लोगो ने धर्म का मर्म क्या समझा ? जैनो ने

तो रात्रि-भोजन का निषेध किया ही है। परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय के महाभारत मे कहा गया है कि—

अस्तगते दिवानाथे भोजन मासमुच्यते।
रुधिर च पय:प्रोक्त मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥

मार्कण्डेय महर्षि कहते हैं कि दिन के नाथ जो सूर्य है वह जब अस्तगत-दिवगत हो जाते हैं, उस समय भोजन करना मास खाने के समान है और पानी पीना खून पीने के सदृश है।

भाइयो, इस वाक्य का अर्थ-रहस्य समझो कि वे क्या कह रहे है ? वे कह रहे है कि तुम्हारे घर म कोई बाप-दादा दिवगत हो गया, अर्थात् मर गया और घर मे अभी लाश पडी हे तो क्या आप लोग भोजन करते है ? क्या पानी पीते है ? नही। क्योकि घर का मालिक मर गया है, ऐसे समय मे कैसे खाया-पीया जा सकता है ? पर भाई दिन का नाथ—स्वामी-सूर्य जब अस्तगत अर्थात् दिवगत हो गया है, तब उसके अस्त हो जाने के बाद यदि पानी पीते हो तो पानी नही, किन्तु रुधिर पीते हो और यदि अन्न खाते हो, तो मास खाते हो। यह बात मार्कण्डेय ऋषि कह रहे है।

हमारे महर्षियो ने तो अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए रात्रि मे चारो ही प्रकार के आहार के त्याग का विधान किया है। वे कहते है—

अहिंसाव्रत रक्षार्थं मूलव्रत विशुद्धये।
नक्त भुक्ति चतुर्धापि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत्।

जैनधर्म का प्राण अहिंसा है। रात्रि मे भोजन करने पर पहिले तो रात्रि मे भोजन बनाने मे ही असख्य प्राणियो की हिंसा होती है। जो मक्खी आदि क्षुद्र जन्तु रात को विश्राम करते है, अग्नि जलने से और धुवा उठने से बेचारे वे दीन प्राणी मर जाते है। लकडी आदि पर जो जीव चढ जाते है, वे दिखाई नही देते तो उसकी सन्धियो मे रहे हुए तो वे दिखेंगे ही कैसे ? अग्नि पर पकते हुए दाल-भात मे अनेक जीव आकर पड के मर जाते है, आटा आदि के गू धने मे भी उसके भीतर घुसे जीव नजर नही आने से वे भी मर जाते है। इसके अतिरिक्त धोवन आदि जहा पर फेका जाता है, रात्रि मे उस स्थान पर विचरने वाले जीव नही दिखने से उनका भी विनाश होता है। इसके सिवाय रात्रि मे भोजन करने पर जो जू ठें बर्तन पडे रहते हैं, उसमे रही हुई जूठन को खाने के लिए चूहे अनेक कीडे-मकोडे और झीगुर वगैरह आते हैं, उन्हे छिपकली और बिल्ली आदि खा जाते है, इस प्रकार

रात्रि भोजन करने मे हिंसा की एक लम्बी परम्परा लगी रहती है। इसलिए महर्षियो ने रात्रि मे चारो ही प्रकार के आहार को करने का निषेध किया है। और भी कहा है—

जलोदरादिकृद्यूका द्यङ्कमप्रेक्ष्य जन्तुकम्।
प्रेताद्युच्छिष्टमुत्सृष्टमप्यश्नन् निश्यहो सुखी।

रात्रि मे सूर्य का प्रकाश जैसा प्रकाश नही होने से भोजन मे गिरे हुए जू, छोटी मकडी आदि नही दिखाई देते हैं, पानी और घी आदि मे गिरे हुए सूक्ष्म जन्तु भी नही दिखते हैं, खजूर आदि सूखे मेवे मे या गीले फलो मे उत्पन्न हुए सूक्ष्म कीडे भी नजर नही आते है, परोसने आदि के समय जाने आने मे भी भूमि पर चलने-फिरने वाले जीव नही दिखते हैं। इसके अतिरिक्त भूत-प्रेतादि भी रात्रि मे भोजन को जूठा कर जाते हैं और कभी-कभी त्यागी हुई वस्तु भी रात्रि मे पहिचान न सकने से खाने मे आ जाती है। इस प्रकार अनेक पापो के होने पर भी आश्चर्य है कि रात्रि मे खाने वाला मनुष्य अपने को सुखी मानता है।

भाइयो, यदि रात्रि मे नही दिखाई देने के कारण भोजन के साथ जू पेट में चली जाय, तो जलोदर रोग हो जाता है, मकडी खाने मे आ जाय तो कुष्ट रोग हो जाता है, मक्खी खाने मे आ जाय तो वमन हो जाता है। इसी प्रकार वाल आदि खाने मे आ जावे, तो स्वर-भग आदि अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिए जहा रात्रि भोजन जीव-हिंसा का कारण होने से परभव मे अति दु खदायी है, वहा पर उक्त रोगो की उत्पत्ति से इस लोक मे भी शारीरिक कष्ट को देने वाला है। इसलिए उभयलोक मे दु खदायी इस रात्रि भोजन का तो त्याग करना ही चाहिए।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने रामचरित्र मे एक घटना का उल्लेख करते हुए रात्रि भोजन को महापाप का कारण बताया है। जब रामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास को गये, उससे कुछ समय पूर्व ही कूर्च नगर के राजा महीधर की कन्या वनमाला के साथ लक्ष्मण की सगाई पक्की हुई थी। वनमाला को अनेक वर्ष तक जब लक्ष्मण के कोई समाचार नही मिले, तब वह हताश होकर राजमहल से निकल करके मरने को उद्यत हुई। उस समय उसने वन के देवता को सम्बोधित करते हुए कहा - हे वन रक्षक देव, यदि कभी भूले-भटके लक्ष्मण इधर आवें तो तुम उनसे यह सन्देश कह देना कि वनमाला तुम्हारे वियोग-जनित दु ख को न सह सकने के कारण इस वृक्ष के नीचे फासी लगा करके मर गई है। वही समीप मे ही

किसी लताकुंज मे रामचन्द्र जी ठहरे हुए थे और लक्ष्मण कुटी के द्वार पर पहरा दे रहे थे, तो उन्होने वनमाला के उक्त शब्द सुने और सुनते ही वहा जाकर वनमाला को अपना नाम बताते हुए फासी पर लटकने से बचा लिया। उस समय उसने साथ ही वनवास मे साथ चलने का लक्ष्मण से बहुत आग्रह किया। मगर लक्ष्मण साथ मे ले चलने को तैयार नही हुए। वनमाला ने कहा—क्या पता – तुम लौट कर आओगे, या नही। इस पर उसे विश्वास दिलाने के लिये लक्ष्मण ने कहा—यदि मैं रामचन्द्र जी को इष्ट स्थान पर पहुचा करके वापिस न आऊँ तो मुझे गो हत्या का पाप लगे, स्त्रीवध का पाप लगे। जब इस शपथ पर भी वह नही मानी, तब लक्ष्मण ने कहा—कि यदि मैं लौटकर न आऊ तो हिंसादि पापो के करने का फल मिले। जब वह इस शपथ पर भी नही मानी तो और भी अनेक प्रकार की कसमे लक्ष्मण ने खाई। अन्त मे निराश होकर लक्ष्मण ने कहा कि तू ही बता – जिस शपथ को करने पर तुझे विश्वास हो, उसे ही करने को मैं तैयार हू। तब उसने कहा—कि तुम यह शपथ करो कि यदि मैं वापिस न आऊ तो मुझे रात्रि भोजन करने का पाप लगे।[1] लक्ष्मण ने इसी शपथ को करके उसे आश्वस्त किया और वापिस लौट आये।

इस कथानक से यह सिद्ध है कि प्राचीनकाल मे रात्रि भोजन को अति निन्द्य समझा जाता था। जैनो मे ही नही, अजैनो तक मे उसे अति गर्हित एव त्याज्य माना गया है। तभी तो मार्कण्डेय ऋषि तक ने रात्रि मे अन्न खाने को मास खाना और जल पीने को रक्त पीना कहा है। जो लोग रात्रि मे भोजन करने के निषेध को केवल जैनो की अव्यवहार्य व्यवस्था मानते हैं वे शास्त्र की बात को नही मानना चाहते हैं और अपना आराम नही छोडना चाहते है। आज अच्छे अच्छे ब्राह्मण पण्डितो का कहना है कि हमारे सिद्धान्त मे कहा है कि 'दिन मे दो बार भोजन नही करना। भाई, इसका मतलब यह था कि पहिले समय मे लोग दिन-रात मे केवल एक बार ही दिन के समय भोजन करते थे। इसलिए उस समय के ऋषियो ने कहा

---

१ त्वा यद्युपैमि न पुन सुनिवेश्य राम,
लिप्ये वधादिकृदघैस्तदिति श्रितोऽपि।
सौमित्रिरन्य शपथान् वनमालयैक,
दोपाशि दोप शपथ किल कारितोऽस्मिन्।

—सागार धर्मामृत अ० ४ श्लोक २६

कि दिन मे दो वार भोजन नही करना। जैन-मान्यतानुसार तो पहिले आरे मे लोग तीन दिन के वाद भोजन करते थे। दूसरे आरे मे दो दिन के वाद और तीसरे आरे मे एक दिन के वाद भोजन करते थे। चौथे आरे मे सब लोग दिन मे एक वार ही भोजन करते थे। भाई, पुण्यशाली समृद्ध लोगो को भूख कम ही लगा करती है। दरिद्री और पुण्यहीन व्यक्तियो को ही अधिक भूख लगा करती है। परन्तु जिनको मिलता है, उनको भूख कम ही लगा करती है। आप ही देखलें कि घर मे भोजन नही भाता है और भूख नही लगती है। वाहिर गाव जाने पर यदि भोजन पास मे न हो तो कडकडाती भूख लागती है और उस समय जो मिल जाता है, वही वडे प्रेम से खा लेते हैं। भाई, भूख लगने पर भोजन मीठा प्रतीत होता है। यदि आप लोग भरपूर परिश्रम करें और नियमित समय पर परिमित भोजन करें तो न बीमारी हो और न भूख नही लगने की शिकायत ही रहे।

और भी देखो—भगवान महावीर ने तो रात्रि भोजन का इतना भारी निषेध किया है, किन्तु उनके भक्त उन्ही के निर्वाण दिवस पर दीपावली के दिन रात को मन्दिरो मे जाकर दीपक जलाते हैं और लाडू चढाते है। उन्हे इसका जरा भी विचार नही है, कि जब भगवान ने ही रात्रि भोजन करने की मनाई की है, तब उन्हे ही कैसे लड्डू-चढावे ? अब तो लोगो से पूछो कि कहा गये थे ? तो कहते हैं कि नोकडाजी। भाई, नाम लेते हैं नोकडा जी का और जाते हैं भैंरो जी के यहाँ। भैरो जी के यहा क्यो जाते है ? क्योकि वे ऋद्धि-सिद्धि के प्रदाता प्रसिद्ध हो रहे है। उनके दर्शन कब लाभ पहुचावेंगे ? आप लोग यदि दिन मे तीन बार भी कार लेकर के जावें और इतना माथा उनके आगे रगडें कि खून निकलने लगे और इस प्रकार वारह माह भी प्रयत्न कर लो। पर यदि भाग्य के विना मिल जाय, तो हमे वताओ। हम भी यही हैं और आप लोग भी यही पर है। कार्तिकेय स्वामी कहते हैं—

> जइ जक्खो देई धेण धणवता हवन्ति सव्व जणा।
> दीसई ण कोवि दुक्खी धणहीणो माणुसे लोए॥

अर्थात् यदि कोई व्यन्तर, यक्ष आदि देवता लक्ष्मी देता होता ससार के सभी लोग धनी दिखाई देते। कोई निर्धन नही दिखता। भाई लक्ष्मी की प्राप्ति तो दान के पुण्य से होती है। कहा भी है—'लक्ष्मी दानानुसारिणी'। जिसने पूर्व भव मे गरीबो को—जरूरतमन्दो को—दान दिया है, वह इस भव मे सहज ही लक्ष्मीवान् के घर पैदा होता है, और अनायास ही लक्ष्मी को

पाता है। यह तो कलियुग का प्रभाव है कि लोग लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए भैंरोजी, बालाजी, आदि के आगे माथा रगडते और धन पाने के लिए गिडगिडाते दिखाई देते है। परन्तु करामात कहा है ? कहा है कि—

करामात कलियुग मे थोड़ी—भोले खाते गोता है।
निज पुरुषार्थ को तज करके—जनजन आगल रोता है।
हिमिया किमिया फिरे भटकते-बंदी पैठ डूबोता है।
इतना सोचो क्यो नहीं दिल मे नागा कहा निचोता है।

अरे भाई, करामात इस कलियुग मे कहा है ? आपका जीवन तो खोटा है और करामात चाहते है ? फिर भी भोले आदमी गोता खाते फिरते है ? यदि उद्योग करो, ठीक न्यायपूर्वक व्यापार मे पुरुषार्थ करो, तो फिर भी काम बन जाये। परन्तु उद्योग को छोडकर इधर-उधर दौडते फिरते हो और नाकें घिसते और माथा रगडते स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो ? पर भ ई, आप इतना क्यो नही सोचते है कि नगा क्या निचोडेगा ? जो स्वय निर्ग्रन्थ हैं, वह दूसरे को क्या देगा ? जिसके पास स्वय ही कुछ नही है, और जिसने इस धन-सम्पत्ति को, परिग्रह को पाप समझ कर छोडा है, उसके पास जाकर मागने से क्या मिलेगा। वे यह कह गये है कि ससार की सभी सम्पदाए आकुलता की जननी हैं, और दु खदायिनी हैं। इनसे मुख मोडकर अपनी अनन्त ज्ञान-दर्शन, सुख वीर्य रूप अनन्त लक्ष्मी को पाने का प्रयत्न करो, तभी सच्चा सुख प्राप्त होगा। और यदि सासारिक सम्पत्ति की ही कामना है, तो दान करो, परोपकार करो, वह स्वय ही तुम्हें प्राप्त होगी।

आखें खोलो

आप लोग महामन्दिर जाते है, तो वहा पर हनुमानजी का मदिर था। प्राय सभी लोग वहा जाते थे। एक बार वहा सर प्रतापसिंह जी भी गये, और देखकर लोगो से पूछा कि यह क्या है ? हटाओ इनको यहा से और यहा पर गढी बना दो। यह सुनकर कितने ही लोग आपस मे कहने लगे कि अब इनके खराब दिन आ गये है। परन्तु गढी बन गई और उनका कुछ भी बिगाड नही हुआ। एक समय बाबा सा प्रगटे तो लोग भागे हुए पहुचे। पर जहा उन पर दो-चार थप्पड पडे कि बाबा सा उड गये। अरे, सोजत के पास मोडागाव है, वहा पर रतनसिंह जी ठाकुर चल बसे, तो जिस स्टेशन पर पचास आदमी भी नही उतरते थे, उस दूदोड स्टेशन पर दो सौ आदमी उतरने लगे। जब सरकारी आदमी पहुचे और सबको मारा तो एक भी नही रहा। सो भाई, अब समझावे तो किसको समझावें ? सारी दुनिया को आप

समझाने वाले हो, होशियार हो। परन्तु बोगे वन रहे हो, जिसकी कोई हद नही है। और जाते जाते कहते हैं कि क्लेश मे क्यो डालते हो ? वह समझदार लोग समझ जायेंगे कि यह सब ढोग है। दिन रात भूखो मरने वाला यदि एक झोली लेकर गलियो मे भीख मागने चला जाय तो दस रोटी भी नही मिले और बाया सा० के पास चूडिया पहिन कर चक्कर लगाया होवे तो जितना चाहो आटा भेला कर लो। कहा है—

"आधली सरधा मे गुण्डा मजा करेरे"—

भाइयो, आप लोगो ने आखे खोलना नही सीखा और आखें बन्द करके ही काम कर रहे है। पहिले यहा इन्दरराज जी रहते थे। उनको दरबार ने मारने के लिए बुलाया और जल्लाद से कहा कि तलवार से इनका सिर अलग कर दो। वह तलवार चलाता है मगर इस ओर चलाते है और जाती है उस ओर। यह देख दरबार ने हुक्म दिया कि इनको तोप के मुख मे दे दो। परन्तु फिर भी कुछ नही हुआ। जब दरबार ने बहुत आग्रह से पूछा कि इन्दरराज सा, क्या करामात है ? तब उन्होने कहा—कि क्या आपने मुझे मारने का ही विचार कर लिया है ? दरबार के द्वारा 'हा' कारा सुनते ही जाघ मे चाकू मारा और विजययत्र निकाल कर फेंक दिया, फिर जहर खिलाया तो समाप्त हो गये, परन्तु अपनी करामात नही बताई। ये करामातें आज भी वही हैं, परन्तु अगले लोग समझदार थे, इसलिए उनके पेट मे खटती थी। अत उन्होने साधना अलग रखी और चीज अलग रखी, सो रोते रहे। 'हमको विजय यन्त्र देना' ऐसा आकर लोग मागते है, सो पहिले तो मिले ही नही, क्योकि यह मन्त्र-तन्त्र, यह करामात वाणी का विषय है—शुद्ध वाणी है। जिसके शुद्ध आचार-विचार नही है और उसे यदि यह दे दिया, तो वह भ्रष्ट हो जायगा। आज लोगो को इन मन्त्र-तन्त्र और करामातो का ठीक रीति से कुछ पता ही नही है कि ये किस ग्रन्थ मे लिखें हें ? परम्परा से यद्वा तद्वा आने वाले शुद्ध-अशुद्ध मत्रो के जाप से तो भ्रष्ट ही होगा। न उसके पास साधना है और न विधि-विधान ही। फिर सिद्धि होवे तो कहा से होवे ? जैसे आज कुछ सच्चे मत्रवादी भी है और सब कुछ चीजें हैं। कहा है कि—

साजी भाजी फिटकरी गोदन्ति हरतार।
पारासु रस मेलवे – क्या करसी किरतार॥
उभीनाघा उघी नाघा, गंधक दीजे आधाभाग।
नाघणा मार नाघने दीजे—ताम्बा मौयसु सोना कीजे॥

कोई नाग है, न नागनियां है । ये सारी चीजे हैं । लोग बोलते हैं कि वावन तोले पाव रत्ती' । बावन तोला तैल उकालो और एक रत्ती वह डालो तो तावा मे से सोरा निकले । जब पोरुप आपमे नही है, तब कहते है कि बात झूठी है । भाई, मूर्खों के वास्ते झूठी है । पर बूटिया झूठी नही होती हैं । बूटी है तो ये बातें क्यो होती हैं, कि करामात नही है कलियुग मे, और ढोग बहुत है । भाई, ढोगो से दूर रहो और सही रास्ते पर आओ तब दुनिया मे पूछ होती है और तब आप कुछ कर सकते हैं ।

मूल बात है हृदयशुद्धि की, शुद्ध धर्म के आराधन की और निर्मल ब्रह्मचर्य के साधन की । यदि आपके पास ये सब वस्तुए है, तो आज भी सर्व सिद्धिया, आपको प्राप्त हो सकती हैं । कहा है कि—

'विद्या मन्त्राश्च सिध्यन्ति किंकरन्त्यमरा अपि ।
क्रूरा शाम्यन्ति नाम्नापि निर्मल ब्रह्मचारिणाम् ॥

जो निर्मल ब्रह्मचारी है उन्हे ही विद्याए और मत्र सिद्ध होते है । उनकी देव चाकरी करते है और उनके नाम मात्र से क्रूर हिंसक प्राणी भी शान्त हो जाते है ।

तो, मैंने आपके सामने धर्म का स्वरूप बताया, कि जहा विवेक है, शुद्ध आचार-विचार है वही धर्म है । धर्म की आराधना तभी होगी, जब जीवन मे विवेक आयेगा । अत प्रत्येक क्रिया को, कर्म को विवेकपूर्वक करो । विवेकमय जीवन ही धर्ममय जीवन बन सकता है ।

१७

दुःखों की जड़ : क्रोध

अप्रशस्त ध्यान के दो भेद बतलाए थे। उनमे से आर्तध्यान का वर्णन पिछले व्याख्यानो मे कर दिया गया था। आज रौद्रध्यान का विषय चलता है। रौद्रध्यान का उत्पादक है क्रोध। क्रोध क्या करता है?

क्रोध ऊपना देह मे तीन विकार करती।
आप तपे पर तापती-अकाले मरणती ॥१॥

जब किसी के हृदय मे क्रोध उत्पन्न होता है, तब वह तीन भयानक नुकसान पहुँचाता है। इनके सिवाय और कितने ही अनर्थ होते हैं, उनकी तो सीमा ही नही है। क्रोध के उत्पन्न होते ही सर्व प्रथम 'आप तपे'। जैसे काँच की भट्टी मे आग जलती है, तो काच गरम हो जाता है, वैसे ही क्रोधी की आखें बदल जाती हैं, चेहरा लाल हो जाता है, सारा शरीर कपने लगता है और कितनी ही बढिया औषधि ली हुई हो, एव उत्तम रसपूर्ण भोजन किया हुआ हो, परन्तु क्रोध के उत्पन्न होते ही सब एकदम स्वाहा हो जाता है, वह जल-भुनकर खाक हो जाता है। इस प्रकार क्रोध ने सर्व प्रथम दुःख दिया अपने शरीर को। और फिर वह दूसरो को तपाता है। क्रोधी के वचन ऐसे कठोर, कर्कश, तीव्र तीक्ष्ण बाण के समान निकलते हैं कि जो भी सुनता है, उसकी आत्मा मे बडा दुःख होता है। उसे भी क्रोध आ जाता है। यदि मरने का कोई प्रसग या अवसर भी न हो, तो भी क्रोध के आवेश मे आकर मनुष्य विष खा लेता है, फासी लगा लेता है, बन्दूक मे अपने आपको गोली मार लेता है, कुए मे छलांग लगा लेता है और जलनी

आग मे कूदते भी उसे देर नही लगती है। क्रोध ऐसा भयकर है। फिर कहा है कि—

क्रोधमूलं मनस्ताप क्रोध संसारवर्धनम्।
धर्मक्षयकरं क्रोधः तस्मात् क्रोध परित्यजेत् ?

पहिले पहिल क्रोध मन को सन्तप्त करता है और नाना प्रकार की कल्पना उत्पन्न कर देता है। क्रोध ससार की वृद्धि करने वाला है। क्योकि क्रोध से जब मनुष्य जलता है, उम समय यदि कोई भी उसे अच्छी शिक्षा देवे और कहे कि भाई, क्यो क्रोध कर रहे हो ? शान्त हो जाओ। तो वह अधिक आग-बबूला हो जाता है। उससे हृदय मे ऐसा दुर्भाव पैदा होता है कि इसे मार दू, काट दू, खत्म कर दू, और बर्बाद कर दू। यह मेरे सामने क्यो खडा है। आए दिन समाचार पत्रो मे पढने को मिलता है कि क्रोधी के द्वारा किसी की मार-पीट के समय यदि कोई बीच बचाव को गया, तो उसने उसे ही मार दिया।

क्रोध घोर अग्नि है

भाईयो,यह क्रोध अग्नि के समान कहा गया है और धर्म रुई के समान। यदि कही पर रुई का ढेर लगा हो और उसमे अग्नि की चिनगारी भी पड जाती है, तो सारी की सारी रुई भस्म हो जाती है। इसी प्रकार धर्म का भारी सचय भी किया, परन्तु उसे यदि एक बार भी क्रोध आ गया, तो वह सचित सर्व धर्म क्षण भर मे भस्म हो जाता है। गोतम स्वामी ने केशी स्वामी को उत्तर देते हुए बताया है—कसाया अग्गिणो वुत्ता—ये क्रोध आदि कषाय घोर अग्नि है, ये प्रतिक्षण ज्ञान, दर्शन आदि सद्‌गुण रूप रुई को जला रहे हैं।

द्वीपायन मुनि के जीवन भर की तपस्या और सचित किया हुआ साधु-धर्म ही एक क्षण भर के क्रोध से भस्म नही हुआ, बल्कि सारी द्वारिका को और उनको भी उसने भस्म कर दिया[1]। इतना भारी नुकसान करने वाला यह क्रोध है ! कहा भी है कि—

क्रोधी तो कुढ कुढ मरे-उठे इन्धकी जाल।
क्षमावंत सदासुखी-पीधी मिश्री गाल ॥

---

१ क्रोधानलोमहादाह समुत्पन्न शरीरिणाम् ।
निर्दहति तपोवृत्त धर्म द्वीपायनादिवत् ॥

भाई, क्रोधी मनुष्य कुढ-कुढ कर मरता है। लोग कहते हैं कि फलान चन्द जी इतने दुबले क्यो हैं ? तो उत्तर मिलता हैं कि वे कुढते अधिक हैं। जो क्रोधी है वह तो झुलसेगा ही। उसके मुखपर आनन्द और सौम्यभाव की लहर देखने को नही मिलती है। दुनिया कहती है कि अजी, किससे बात करते हो, यह तो महाचाण्डाल है। क्रोधी को सर्वत्र चाण्डाल की उपमा दी जाती है कि 'क्रोधी महाचाण्डाल'। क्रोध इतनी बुरी वस्तु है कि उसे कोई अपने पल्ले मे बाधना नही चाहता है। जो क्रोध को पल्ले मे बाधेगा, वह उसी को भस्म कर देगा। इसलिए कोई उसे अपने पल्ले मे क्यो बाधेगा ? नही बाधेगा।

क्रोध के चार भेद

यह क्रोध चार प्रकार का है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, और सज्वलन क्रोध, इन चारो प्रकार के क्रोधो का वर्णन आगम मे इस प्रकार किया गया है—

> सिल-पुढविभेद धूली-जलराइ समाणओ हवे कोहो।
> णारय-तिरिय-णरामरग ईसु उप्पायो कमसो ॥

अनन्तानुबधी क्रोध, अनन्त ससार का बन्धन करने वाला है। यह सबसे खराब है। इसको पत्थर-रेखा के समान कहा गया है। जैसे पत्थर मे पडी हुई रेखा या दरार पुन किसी भी उपाय से मिट नही सकती, या जुड नही सकती है। उसे भले ही चूने से या सीमेन्ट से भर दिया जाय, पर जहा से वह फट गया है, उसके दोनो अश आपस मे कभी मिल नही सकते है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध जिसके हृदय मे पैदा हो गया। वह कभी मिटने वाला नही है। जीवन पर्यन्त उसमे क्रोध या वैर भाव ज्यो का त्यो बना रहेगा।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध को पृथ्वी-भेद के समान कहा गया है। जैसे गर्मी मे तालाब का पानी सूख जाने पर उसकी मिट्टी मे दरारे पड जाती हैं। वे दरारे कितने समय तक बनी रहती हैं ? जब तक नया पानी नही आवे, तब तक बनी रहती है। और पानी के आते ही वे दरारें मिट जाती है और पृथ्वी के दोनो ओर के अश आपस में मिल जाते हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध तो यावज्जीवन रहता है, परन्तु अप्रत्याख्यानावरण क्रोध की सीमा है। पृथ्वी की दरार जैसे अधिक से अधिक नया पानी आने तक रहती है, उसके पश्चात् मिट जाती है। उसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण क्रोध अधिक से अधिक एक वर्ष तक रहता है उसके पश्चात वह शान्त हो जाता है और फिर वैर के बदला लेने के भाव नही रहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध धूली या वालू मे खीची गई रेखा के समान है। धूली या वालू की रेखा जब तक जोर की हवा नही चले, तब तक ही बनी रहती है और पवन के चलतेही वह मिट जाती है। इसी प्रकार इस क्रोध वाले के वदला लेने के भाव एक पक्ष से लेकर अधिक से अधिक छह मास या एक वर्ष तक बने रहते हैं। उसके पश्चात यह क्रोध शान्त हो जाता है, फिर उसके भाव वदला लेने के नही रहते हैं। इस कषाय वाले का क्रोध पूर्वोक्त कषाय की अपेक्षा और भी जल्दी शान्त हो जाता है।

सज्वलन कषाय के क्रोध को जल रेखा के समान कहा गया है। जैसे पानी मे अगुली या लकडी आदि से खीन्ची गई रेखा पीछे तुरन्त मिल जाती है। उसी प्रकार सज्वलन क्रोध होने के अन्तमुहूर्त के वाद ही शान्त हो जाता है। इन चारो ही कषायों को क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति मे उत्पन्न करने वाला आगम मे बतलाया गया है। अर्थात् अनन्तानुवन्धी क्रोध के समय गति वन्ध हो तो जीव नरक मे उत्पन्न होगा, अप्रत्याख्यान के समय गतिवन्ध हो तो तिर्यंचो मे जीव उत्पन्न होगा। प्रत्याख्यानावरण के समय यदि गतिवन्ध हो तो वह जीव मनुष्यो मे उत्पन्न होगा। और यदि सज्वलन कोध के समय गतिवन्ध हो तो वह जीव देवो मे उत्पन्न होगा।

क्रोध से गुणो का घात

अनन्तानुवन्धी आदि चारो कषाय आत्मा के किस-किस गुण का घात करती है? इसके उत्तर मे बताया है कि अनन्तानुवन्धी कषाय सम्यक्त्व और स्वरूपाचरण चारित्र का घात करती है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशव्रत का घात करती है। प्रत्याख्यानावरण कषाय सकल चारित्र का घात करती है और सज्वलन कषाय यथाख्यातचारित्र का घात करती है। जब तक जिस जीव के जिस कषाय का सद्भाव बना रहेगा तब तक उक्त गुण प्रकट नही हो सकेगा। जीव के भीतर जब तक अनन्तानुवन्धी कषाय विद्यमान है, तब तक उसे सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही हो सकती है। अनन्तानुवन्धी कषाय वाला जीव निरन्तर दुनिया का खराब ही चिन्तवन करता रहेगा। उसके हृदय मे कभी कोई भली भावना जागृत ही नही होती है। इसीलिए उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती है।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जीव के भाव श्रावक व्रतो को धारण करने के नही होते। क्षायिक सम्यक्त्वी राजा श्रेणिक, श्रीकृष्ण आदि अनेक महापुरुषो को तीर्थंकरो का साक्षात सम्पर्क प्राप्त हुआ, अनेको

बार वे भगवान के समवसरण मे गये और उनकी धर्म-देशना भी सुनी। फिर भी उनके भाव श्रावक व्रतो के धारण करने के नही हुए। प्रत्याख्या-नावरण कषाय सकल चारित्र को धारण नही करने देता। आनन्द आदि श्रावको को इस कषाय का उदय था, इसलिए भगवान महावीर से अपने अनेक मित्रो और बन्धुजनो को प्रव्रजित होते देखकर भी उनके भाव प्रव्रज्या ग्रहण करने के नही हुए और वे मरण पर्यन्त श्रावक व्रत ही पालन करते रहे। सज्वलन कषाय के उदय होने पर प्रबल तपश्चरण करने वाला भी साधु यथाख्यात चारित्र को नही प्राप्त कर सकता, न वीतराग बन सकता है और न कैवल्य प्राप्त कर अरहन्त पद ही पा सकता है।

यहाँ पर इतना और भी ज्ञातव्य है कि मिथ्यादृष्टि जीव के चारो ही प्रकार की कषाय होती हैं। अविरत सम्यक्त्वी के अनन्तानुबन्धी के सिवाय शेष तीन कषाय होती है। देशव्रत पालन करने वाले श्रावको के प्रत्याख्याना-वरण और सज्वलन ये दो कषाय रहती हैं और साधुपना पालन करने वाले मनुष्य के एक सज्वलन कषाय ही रहती है। जब जीव कर्मों का क्षय या मोह कर्म का उपशम करने के लिए क्षपक श्रेणी या उपशम श्रेणी पर चढता है, तब उसके नौवे गुणस्थान के कितने ही भागो के बिताने पर सज्वलन कषाय के उपशमन या क्षपण को करने पर दशवें गुणस्थान के अन्त मे ही सज्वलन लोभ का क्षय होता है। कर्म सिद्धान्त की यह चर्चा करने का अभिप्राय यह है कि जिस जीव मे चारो ही जाति के क्रोध हैं, उससे सभी पाप कर्मों का बन्ध प्रबल होता है और दुर्गति का पात्र होता है और उतनी ही दुःख दायिनी गति को प्राप्त होता है और ज्यो ज्यो क्रोध की मात्रा या जाति कम होती जाती है, त्यो त्यो ही यह जीव अच्छी गति को पाता है। और जब सभी जाति की कषायो का अभाव हो जाता है, तब सर्वोत्तम गति रूप पचम सुगति शिवपद को प्राप्त होता है।

क्रोध काला नाग है

क्रोधी पुरुष किसी को भी अच्छा नही लगता है। काला नाग यदि घर मे घुसता है तो किसे प्यारा लगता है ? किसी को भी नही। यदि कोई दुष्ट पुरुष है तो उस काले साप को देखते ही देखते मार डालता है। यदि वह दयावान् है तो मारता तो नही है, परन्तु किसी प्रकार से उसे पकड करके फेंक देता है। इसी प्रकार क्रोधी पुरुष किसी को भी अच्छा नही लगता है। चाहे मा-बाप, भाई, बहिन हो या स्त्री पुत्र अथवा मित्रादि कोई भी क्यो न हो, पर क्रोधी तो सबके साथ कलह करके प्रेम और प्रीति का नाश कर

देता है। इसलिए तो महापुरुषों ने कहा है कि 'कोहो पीइं पणासेइ'। घर में यदि हंस आ जाता है, या तोता, मैना और कोयल आ जाती है, तो उसे कोई भी घर में नहीं निकालता है। परन्तु क्रोधी जानवर, या पशु पक्षी के आते ही उसे तुरन्त बाहिर निकाल देते हैं। क्रोध का फल सदा ही बुरा होता है। क्रोध से कभी भी किसी को सुख न मिला है, न मिलता है और न मिलेगा, क्योंकि वह तो दुःख का ही कारण है। क्रोधी पुरुष स्वयं भी दुःख देखता है और दूसरों को भी देता है। उसके वचन कैसे निकलते हैं? जो पिता अपने पुत्र का जनक है— जन्म देने वाला है, वह भी अपने पुत्र से कहता है कि अरे चाण्डाल! ऐसा कहने से वह स्वयं भी चाण्डाल हो गया और अपने आप बुरी पदवी ले ली। और अपने आप अपने लड़के को भी उसने चाण्डाल कहा। इस प्रकार वह अपने मान और शान को स्वयं घटाता है। जिस घर में क्रोधी मनुष्य रहता है, वहां पर क्या सुख (आराम) रह सकता है? नहीं रहता है। कहा है—

> क्रोध बड़ा चंडाल है—मित्र जाय सब टूट।
> जिसके घर में क्रोध घुसा है उबर मचाते फूट
> उतर गई केइयों की आब ॥

क्रोध के द्वारा कितने घर बर्बाद हो गए, कितने ही श्रीमानों के सम्पन्न घर श्री-विहीन हो गये। क्रोधी पुरुष का क्या हाल है कि—

> हितहु की कहिए नहीं—जो नर होत अबोध।
> ज्यों नकटे को आरसी—होत दिखाये क्रोध ॥

क्रोधी मनुष्य को हित की भी शिक्षा देना एक महा दुःख मोल लेना है। उसे हित की बात भी बहुत बुरी लगती है मानो उसे किसी ने [illegible] हो। हितकी बात सुनते ही लाल आंखें करके घूरने लगता है। क्रोध अन्धा होता है, उसे अपने या पराये का कुछ भी भला-बुरा नहीं दिखाई देता है। जैसे किसी सामने खड़े नकटे आदमी को कोई दर्पण दिखावे, तो उसे क्रोध आता है और मन में विचारता है कि यह बदमाश है। अरे, मेरे नाक नहीं है, तभी यह दर्पण दिखाता है। इसलिए उसे दर्पण के सामने आते ही क्रोध आता है। इसी प्रकार क्रोधी को अच्छी शिक्षा देने से भी क्रोध आता है। क्रोधी में क्षमा करने की शक्ति नहीं रहती है। परन्तु क्रोधी को विचारना चाहिए कि क्रोध करने से मुझे मिला क्या? यदि क्रोध से कोई उत्तम वस्तु मिलती हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए। पुनः, किसी [illegible]

कोई भी पुरुष अपने पल्ले मे बाध लेता है। परन्तु आग को कोई पल्ले बाधता है क्या ? कोई नही बाधता है। यदि आग को पल्ले बाधे तो कपडे के साथ ही उसे स्वय भी जलना पडेगा। इसलिए शुद्ध वस्तु शान्ति है, तो उसे अपने पल्ले मे हर एक बाधने को तैयार रहता है। परन्तु बुरी वस्तु और फिर उसमे भी आग जैसे जलाने वाली क्रोध कषाय को कौन अपने पल्ले मे बाधना चाहेगा ? भाइयो, आप लोग बुद्धिमान हैं, चतुर और विवेकी है, फिर क्यो आपने क्रोध को पकड रखा है ? यदि आपने क्रोध को जीत लिया, तो समझिये कि शान्ति का द्वार खुल गया।

गम खाता हूँ

एक सेठ शरीर मे बडा मजबूत था। उसने एक दुर्बल व्यक्ति से पूछा—सेठ साव, आप ऐसा क्या खाते हैं, जिससे कि आप इतने हट्टे-कट्टे और मोटे ताजे हैं ? उसने उत्तर दिया—भाई साव, मैं तो गम खाता हूँ। यदि आपको भी मेरे जैसा बनना है, तो आप भी गम खाया कीजिए। यदि सामने वाला कहे कि सेठ साव, मुझ से तो यह गम नही खाया जा सकता है ? तो फिर भाई, छीको। क्रोधी को विद्या आती है क्या ? नही। वह तो गुरु से ही झगड पडता है। यही कारण है कि क्रोधी एव गुरु द्रोही को विद्या प्राप्त नही हो पाती है। यह तो पढने के बजाय किताबो को ही फाड डालता है। और अपना ही अहित करता है। क्रोधी मनुष्य क्रोध को अपने लिए करता है, पर के लिए करता है, दोनो के लिए करता है, चय करता है, उपचय करता है और विभाग करता है, जमीन के लिए, धन के लिए एव अन्य स्थावर-जगम सम्पत्ति के लिए। क्रोधी मनुष्य का क्रोध किसी एक ही निमित्त से प्रगट नही होता बल्कि कुछ भी निमित्त पाकर उसका क्रोध भडक उठता है। आपके पास मे कोई क्रोधी व्यक्ति बैठा है, अब आपको खांसी चली, खखारा कर दिया, तो वह कहता है कि यह बदमाश है और मुझे देखकर इसने खखारा किया है। यदि उसके सामने देख लिया तो कहता है कि मेरी ओर तुमने क्यो देखा ? क्या काणा हू, या लूला-लगडा हू ? वह प्रत्येक ही बात मे दुर्गुण ही दुर्गुण देखता है। बडे बडे महात्मा, सन्त साधु—जो कि स्वय तिरने वाले थे और दूसरो को तारने वाले थे, इस क्रोध ने उनकी भी गति को बिगाड दिया है और वे दुर्गति को प्राप्त हुए हैं।

क्रोध से साधु साप बना

एक तपस्वी साधु मास-मासखमण करने वाले, शान्ति के सागर और अनेक ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न थे। उन्हे एक दुष्ट एव क्रोधी शिष्य मिल

गया। वह सदा ही कोई न कोई बात क्रोध उत्पन्न करने की कहा करे, परन्तु गुरु तो क्षमा के सागर थे, अत वे कभी क्रोधित या उत्तेजित नही होते थे। एक समय की बात है कि वरसात का मौसम था, कुछ समय पहिले ही पानी वरस गया था। मुनि के मासखमण का पारणा था, वे गोचरी के लिए जा रहे थे। वह शिष्य भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। पाच-सात भक्तो की मडली भी साथ मे थी। चलते हुए अचानक एक मरी हुई मेढकी से गुरु महाराज का पैर छू गया। उन्होंने पैर हटाया और मन मे यह विचार किया कि आज मैं अन्न-जल को ग्रहण नही करूगा। क्योकि मेरी सावधानी मे कमी रही, जिससे कि मेरे पैर का स्पर्श इस मरी मेढकी से हो गया है। वे साधु तो विचार कर ही रहे थे कि इतने मे पीछे चलने वाले उस चेले ने कहा- अरे गुरुजी, आप सयमी कहलाते हैं, दया के सागर कहे जाते है, फिर भी आपने यह मेढकी मारदी ? तब गुरु ने कहा कि भाई, मेरे पैर से मेढकी नही मरी है यह तो पहिले से ही मरी हुई पडी थी।

शिष्य बोला—हू, पहिले से ही मरी हुई पडी थी ? यह आप झूठ बोल रहे हैं ? प्रथम तो आपने जीव को मारा, फिर ऊपर से झूठ भी बोलते हैं ? आपके दो महाव्रत नष्ट हो गए ! तब साथ मे चलने वाले भक्तो ने कहा— कि आप शिष्य हैं और आपको अपने गुरु के सम्मुख बोलने की भी कुछ तमीज नही है ? अरे, गुरु के सामने इस प्रकार से पेश आते हो ? उन लोगो के डाटने पर वह चुप हो गया। अव वे आगे बढे और किसी श्रावक के घर मे गए। वहा पर जो भी दाल, थुली, फूलके आदि मिले, उन्हे भक्त गृहस्थ देने लगा। यह देख वह चेला वोला—गुरुजी, आहार मत लेना। आपके पैर से मेढकी मर गई। वह वेचारी कहाँ जाकर आहार लेगी। गुरु ने कहा —अरे भाई, मेरे पैर से मेढकी नही मरी है। लोगो ने उसे फिर फटकारा। वह फिर चुप हो गया। अव गुरु आहार लेकर अपने स्थान पर गए। उन्होने माडला विछाया और आहार करने को ज्यो ही तैयार हुए कि शिष्य फिर वोला—गुरुजी, आप आहार क्यो करते है ? आपने मेढकी मारदी है ? यह आहार कैसे पचेगा ? गुरु ने जिस किसी प्रकार पारणा किया। जव साय-काल आया और गुरुजी प्रतिक्रमण करने वैठे, तो शिष्य फिर कहने लगा— गुरुजी, आप प्रतिक्रमण सावधानी से करना, मेढकी मर गई है। लोगो ने फिर फटकारा। उसे इतने वार फटकार खाने के वाद भी कुछ लज्जा या सकोच नही हुआ। प्रतिक्रमण करके सभी श्रावक अपने घरो को चले गये। जव सोने का समय आया, तव शिष्य ने फिर कहा—गुरुजी, नीद मत लेना

क्योंकि नींद में यदि प्राण निकल गए तो सीधे नरक में जाओगे, क्योंकि आपने मेढकी मारी है। दिन भर तो गुरु जी शान्त रहे थे, उससे कुछ भी नहीं कहा था। परन्तु अब तो ऐसे क्षमाशील से भी नहीं रहा गया, उन्हे भी रोष आ गया और क्रोध के आवेश में शिष्य से कहा—बदमाश, दिन भर से बकवास कर रहा है और अभी तक तेरा वही रवैया है। बस, क्रोध मे आकर ओघा हाथ मे लिया और दो-चार जमा दिए। क्रोध मे तो भरे हुए थे ही, अधकार था ही, अत जैसा ही वे पीछे को मुडे खम्भे मे टकरा गये, मर्म स्थान पर चोट लगते ही उनके प्राण निकल गये। वे हाँ मरकर चण्ड कौशिक सर्प बने।

भाइयो, देखो—ऐसे तपस्वी और शान्ति के अवतार वे साधु थे, परन्तु कुपात्र ससर्ग से उनको भी क्रोध आ गया और अपने जीवन भर की साधना पर पानी फेर दिया। ऐसी दुष्ट सर्पयोनि मे जन्म किसके प्रताप से लेना पडा ? इसी क्रोध के प्रताप से। क्रोध से जो दुर्भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें ही रौद्रध्यान कहते है। वह साप भी बना तो कैसा बना ? चण्डकौशिक। डक मारना या डसना तो दूर रहा, उसकी आँखो से भी ऐसी विषैली गैस निकलती थी कि उसका स्पर्श होते ही मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्ष तक जल कर भस्म हो जाते थे। क्रोध का इतना अनर्थकारक भयकर दुष्प्रभाव होता है। इस क्रोध ने ऐसे परम तपस्वी साधुओ की साधना भी नष्ट कर दी।

क्रोध की रौद्रता

स्कन्धकाचार्य पाच सौ मुनियो के गुरु थे। वे ग्रामानुग्राम विचरते हुए दण्डक राजा के राज्य मे पहुँचे। वहाँ का प्रधानमत्री पालक घोर मिथ्यात्वी था। उसने राजा को साधुओ के विरुद्ध भडका दिया। उसने स्कन्धकाचार्य को कहा—आप लोग अपने धर्म को छोड दो। अन्यथा घानी मे पिलवा दिये जाओगे। जब आचार्य और उनका सघ धर्म छोडने को तैयार नही हुए, तब उस दुष्ट पालक ने एक-एक करके ४९९ साधुओ को कोल्हू मे पिलवा कर मरवा दिया। एक छोटा शिष्य बचा। उससे गुरु ने कहा कि मुझे आशा थी कि तू मेरा पट्टधर आचार्य बनेगा। जब पालक आचार्य को घानी मे पिलवाने को उद्यत हुआ, तब उस शिष्य ने कहा—पहिले मुझे पेल दो पीछे मेरे गुरु को पेलना। उस समय पालक बोला—कि मुझे औरो से वैर भाव नही है, मुझे तो तेरे से ही वैर है, अत मैं तुझे ही पहिले पेलू गा। उसके ऐसे क्रोध युक्त वचन सुनकर आचार्य को भी क्रोध आ गया। पालक ने गुरु के साथ ही उस शिष्य को भी घानी मे पिलवा दिया। आचार्य का मरण क्रोधभाव से

रौद्रध्यान से हुआ, अत वे भवनपति देवो की अग्निकुमार जाति के देवो मे उत्पन्न हुये। यहा जन्मते ही अवधिज्ञान से पूर्वभव की सारी घटना जान ली, उनको क्रोध भडक उठा और तत्काल यहा आकर दण्ड देश के साढे सोलह देशो को जला करके भस्म कर दिया। क्रोध से उन आचार्य के इस जीव ने कितना अनर्थ कर डाला। वैर तो था अकेले पालक के साथ। परन्तु रौद्र भाव कितना बढा कि असख्य प्राणियो को भी उसके साथ भस्म कर दिया। ऐसे परम तपस्वी और चिरकाल तक सयम की आराधना करने वाले उन आचार्य के हृदय मे भी अग्नि की ज्वाला भडकाने वाला यह क्रोध ही है। क्रोध के समान ससार मे दूसरा कोई पदार्थ बुरा नही है।

क्रोध का रग काला होता है और हालाहल विष का भी रग काला ही होता है। जैसे हालाहल विष के खाने से कोई भी नही बच सकता है, वैसे ही क्रोध से भी किसी का भला नही हुआ है, न कोई इससे तिर ही सका है। यह तो काल कूट विष है, यह समय को बिगाड देता है, गति को बिगाड देता है, कार्य को बिगाड देता है और सौम्यता, सौजन्यता को पास मे भी नही आने देता है। क्रोध मे भरा हुआ प्राणी नरको मे जाकर उत्पन्न होता है। यदि तिर्यंचो मे उत्पन्न होता है तो क्रूर हिंसक सिंह,व्याघ्र, चीते और सर्पादिक कुयोनियो मे उत्पन्न होता है। इस भव के क्रोध का सस्कार वहा भी जाता है सो वहाँ पर भी वह घुर्राता और फु कारता है और जिस जीव के साथ वैरानुबध चला आ रहा है, उसे तो खाये या काटे विना नही रहता है। इस प्रकार वहा भी क्रोध का सस्कार उसे जीवन भर नित्य नया पडता रहता है, अत वहा से मरकर वह फिर भी नरक तिर्यंचादि की रौद्रध्यानमय कुयोनियो मे जन्म लेता है और स्वय नाना प्रकार के तड़न-मारण,भूख-प्यास शीत-उष्ण और वध-बन्धनादि के कष्ट, महा दु ख एव वेदनाए अनन्त काल तक भोगता रहता है इसीकारण से इस पहिली जाति की कषाय को अनन्तानुबन्धी कहा गया है। चारो ही कषायो मे यह क्रोध ही प्रधान है, अत सर्वप्रथम इसका नाम दिया गया है। ससार मे अनन्त भवो तक भव-भ्रमण कराने वाला यह क्रोध ही है, इसलिए भाइयो, जीवो का परम वैरी, महान् दु खो को देने वाले इस क्रोध से बचना चाहिए।

यद्यपि सभी लोग यह जानते हैं कि यह क्रोध बहुत बुरा है, भयानक है, दु खदायी है, फिर भी अवसर आने पर क्रोध आ ही जाता है। भाई, कर्म-प्रकृतियो का यही स्वभाव है, जब उनका तीव्र उदय आता है, तो मनुष्य

उसके उदय मे वह हो जाता है। अरे, साधारण मनुष्यो की तो बात क्या है, द्वीपायन और स्कन्धक जैसे महान् तपस्वी साधु भी उसके प्रवाह मे बह गये। और उसके फलस्वरूप उन्होने स्वय तो अपने आगामी असख्य भव बिगाडे ही, साथ मे असख्य जीवो को भस्म करके उनका भी सत्यानाश कर दिया। इसी लिए तो कहा गया है कि—

'मध्ये मध्ये हि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्'

अर्थात् जब तक जीव के मोहनीय कर्म सत्ता मे बना रहता है, तब तक वह भले ही योगी क्यो न बन जाय, उसके चपलता आती ही रहती है।

क्रोध को शान्त कैसे करें ?

अब आप लोग पूछेंगे कि इस अनर्थकारी क्रोध की शान्ति का और उसके दूर करने का उपाय क्या है ? इसका एक मात्र उपाय यही है, कि क्रोध आने के तुरन्त ही बाद पश्चत्ताप करो—यह विचार करो, कि हाय, यह मैंने क्या किया, समझदार होते हुए मुझे तो धोबी के साथ धोबी नही बनना चाहिए था। सामने वाले भोकने पर मुझे तो भोकने वाला कुत्ता नही बनना चाहिए था। इसके सिवाय जैसे प्रतिदिन प्रात. सायकाल भगवान् के नाम की माला फेरते हैं. शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ के नाम का जाप करते है, एवं राधा-कृष्ण, सीताराम एव शिव-शकर की माला फेरते हो, इसी प्रकार एक माला प्रतिदिन यह भी फेरो कि मेरे क्रोध का नाश हो, मुझे फिर क्रोध न आवे और क्षमा गुण प्राप्त हो। आप एक यह भी माला कुछ दिन तक फेर कर देखो, आत्मा पर उसका कुछ न कुछ असर होता है, या नही ? इसके बाद भी मौका मिलने पर यदि क्रोध आ जाय, तो अपने कान पकडो, पश्चात्ताप करो, कि हाय, मैंने यह क्या किया ? मुझे धिक्कार है। मुझे यह नही करना चाहिए था। अब आगे चाहे कुछ भी मेरा नुकसान हो जाय और दूसरा मुझे कितना ही क्यो न सतावे, मारे पीटे और प्राण भी क्यो न लेने को उतारू हो जाय, परन्तु मैं अब क्रोध नही करूगा। साथ ही यह भी विचार करें कि—

लोकद्वयाहितोत्पादि हन्त स्वान्तमशान्तिमत्।
न द्वेक्षि द्वेक्षिते मौढ्यादन्यं सकल्प्य विद्विषम्॥

अर्थात्—हे आत्मन्, तू दोनो लोक—इस लोक और परलोक के बिगाडने वाले—अहित-उत्पादक अपने अशान्त चित्त से तो द्वेष करता नहीं, अपने क्रोधी स्वभाव पर तो क्रोध करता नही. और अपनी मूढता से, अज्ञान से

दूसरे को शत्रु की कल्पना करके उसके ऊपर द्वेष करता है—उसको बुरा कहकर उस पर क्रोध करता है।

इस प्रकार क्रोध का निमित्त मिलने पर और क्रोध आ जाने पर आप हमेशा उपर्युक्त विचार करते रहिये। कुछ समय के पश्चात् आप स्वय ही अनुभव करेंगे कि आपको अब पहिले जैसे जल्दी गुस्सा नही आता है और आत्मा मे शान्ति आने लगी है। इस प्रकार से अभ्यास करते रहने पर आपका क्रोध अपने आप शान्त हो जायगा। कोई भी पुराना सस्कार किसी विधि-विशेष के अपनाने बिना दूर नही हो सकते हैं। देखो—जिसके कब्जियत रहती है—और यही सभी रोगो की जड है, तो उसके लिए वैद्य कहते हैं कि त्रिफला की - हरड़, बहेड़ा और आवला की फाकी रोजाना लिया करो तो कब्जी नही रहेगी। इन तीनो की तीन तासीरें हैं—एक पित्त को, एक कफ को और एक वायु को शमन करता है, साथ ही शरीर को सुन्दर बना देता है। इससे बढकर आयुर्वेदिक मे और कोई उत्तम औषधि नही है। परन्तु यह त्रिफला आप लोगो को पसन्द है ? आप तो यही कहते है कि हरड, बहेडा, आवला मे क्या रखा है ? चलो हकीम, वैद्य और डाक्टर के पास। परन्तु त्रिफला लेने को तैयार नही हैं। पहले समय मे थोडी सी गर्मी बढ जाती थी तो लोग कहते थे कि सोनामुखी की फकी ले लो, यह सोने के समान शरीर बना देगा। परन्तु आज कोई क्या यह घास-पत्ती लेने को तैयार है ? नही है। पहिले बडा निकाला (मोतीझरा) निकलता था तो बडे घासा देते थे। परन्तु आज तो वह पसन्द ही नही है। आज के युग मे कौडियो की दवा पसन्द नही, परन्तु मोहरो की दवा पसन्द है। पर भाई, याद रखना कि ये मोहर की कीमती दवाए ही फेल हो जायेगी, परन्तु कौडियो की दवाएं फेल होने वाली नही है। जितनी भी दवाए बनती हैं, वे प्राय इनसे ही बनती है। अरे, जब इन प्रकृति-प्रदत्त असली वस्तुओ से लाभ नही होगा, तो क्या इन बनावटी और नकली दवाओ से होगा ? जैसे हरड़, बहेडा और आवला रोगो का शमन करता है। उसी प्रकार समभाव, विवेक और अवसर की जानकारी, तथा धीरता ये तीनो बातें जब आपके भीतर आ जायेंगी, तो क्रोध नही रहेगा।

सर्वप्रथम मन मे समभाव आना चाहिए। जो लकडी टेढी रह गई, तो उसको टूटना मजूर है, परन्तु टेढापना नही निकलेगा, क्योकि टेढापन उसका स्वभाव बन चुका है। यदि कपडे मे टेढापन रह गया तो काट लो, सीधापन आ जायगा। परन्तु बिना काटे तो उसका टेढापन नही निकलता है। इसी

प्रकार जिस व्यक्ति की जैसी प्रकृति पड गई है, वह मिटने की नही है। इस लिए दूसरो के टेढेपन को क्रोधी स्वभाव को देख करके अपने को यह विचारना चाहिए कि हम क्यो क्रोध करके अपना इहभव और परभव खराब करें। इस प्रकार समभाव क्रोध को शान्त करने का पहिला उपाय है।

विवेक से काम लो !

क्रोध को शान्त करने के लिए दूसरा अमोघ उपाय है विवेक। जैसे व्यापारी पुरुष व्यापार करते हुए हमेशा यह विवेक रखता है कि मुझे जिस व्यापार मे कुछ लाभ हो, आने-दो आने का मुनाफा मिले तो करता है, जिस मे उसे नुकसान दिखता है उस व्यापार को क्या वह व्यापारी करेगा ? नही करेगा। यदि जानते-समझते हुए भी वह करेगा तो अपनी पू जी समाप्त कर दिवालिया बनेगा। इसी प्रकार क्रोध का अवसर उपस्थित होने पर मनुष्य को यह विवेक रखना चाहिए कि मैं किसके ऊपर क्रोध कर रहा हूँ, वह सुधरे, या न सुधरे यह तो उसके भवितव्य पर निर्भर है, परन्तु मेरी तो शान्ति रूपी सारी पू जी ही बर्बाद हो जायगी, इसलिए मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए।

समय को समझो !

क्रोध को शान्त करने का तीसरा उपाय है अवसर की जानकारी। क्रोध के अवसर पर मनुष्य को यह सोचना चाहिए, कि यह अवसर क्या क्रोध करने का है ? सबके दिलो मे आनन्द है और सब आमोद-प्रमोद मे उछल रहे हैं। इस समय यदि मैं क्रोध करूंगा, तो सबका आनन्द समाप्त हो जायगा। इसलिए अभी इसे पी जाओ और क्रोध मत करो। कहा है कि — 'रीस मार्‌या रसायन होय'। क्रोध को जीतने से शरीर को पुष्ट करने वाली रसायन उत्पन्न होती है। परन्तु भाई, वक्त पर क्रोध को मारना, उस पर काबू पाना बडा कठिन कार्य है। अरे, कहने से क्या होता है, परन्तु कार्य की सिद्धि तो करने से होती है। आप और हम भी सहसा क्रोध को नही रोक सकते हैं। उसे तो महापुरुष ही अपने अधीन रख सकते हैं। इसीलिए तो महाकवि कालिदास ने कहा है कि—

'विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीरा ।'

अर्थात् वे ही धीर वीर पुरुष कहलाते हैं, जिनके कि चित्त मनोविकार के प्रबल कारण मिलने पर भी विकार को प्राप्त नही होते हैं।

यदि इस शैतान को – महान् शत्रु क्रोध को वश मे कर लिया जाय तो

कर्मों का कितना ही भार हलका हो जाय। इस क्रोध के साथी भी तीन हैं—मान, माया और लोभ। इन तीनो का मूल आधार यही क्रोध हैं क्योकि क्रोध से मान आता है और उसके पीछे ही मायाचार दौडता है और फिर लोभ भी आ धमकता है। इन सबका श्री गणेश करने वाला क्रोध ही है।

क्रोध के कारण ही आज जातियो के कितने टुकडे हो गये? एक ओसवाल जाति को ही ले लो। पहले दस्सा-बीसा हुए। फिर उसमे भी दस्सा-पाँचा ये दो भेद हो गये। फिर उसमे भी ढैया-पाचा का भेद हो गया। ये सब भेद कैसे हुए? किससे हुए? क्रोध से ही हुए हैं। यदि उस समय प्रेम और विवेक से काम लेते तो ये टुकडे नही होते। परन्तु तात्कालिक लोगो ने काम लिया क्रोध से और जरा-जरासी भूलो के करने पर अपने ही भाइयो को बिरादरी से अलग करते गये, सो इतने टुकडे हो गये। उम समय टुकडे करना तो था, परन्तु उन्हें वापिस जोडना हाथ मे नही था। इमी प्रकार एक मूल जैन धर्म के भी पहिले जरा सी बात पर दो टुकडे हुए दिगम्बर और श्वेताम्बर, फिर दिगम्बरो के भी दो टुकडे हुए—तारणपथी और सोनगढी। इसी प्रकार श्वेताम्बरो के भी दो टुकडे हो गये मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी फिर स्थानकवासियो मे से भी तेरहपन्थी निकल पडे और दिगम्बरो मे भी तेरापन्थी और बीसापन्थी, तेतीसपन्थी और साढ़े सोलह पन्थी। इस प्रकार साधुओ मे भी चैत्यवासी, यति, भट्टारक आदि न जाने कितने भेद हो गये।

क्रोध ने टुकडे-टुकडे कर डाले

भाइयो, ये इतने भेद केवल जरा-जरा सी बातो पर क्रोध करने से हुए हैं। पर मोक्ष का मार्ग तो एक है, परन्तु लोगो ने बना दिये हैं अनेक। अब मैं पूछता हूँ कि क्या करना? दिगम्बर कहते हैं कि नगे रहने से ही मुक्ति है। अभी यदि भगवान महावीर लगोटी लगाये हुए विद्यमान होते तो दिगम्बरो की शक्ति नही थी कि वे उनकी लगोटी छीन लेते। और यदि वे नगे होते तो क्या श्वेताम्बरो की ताकत थी कि उनको लगोटी लगा देते। यदि वे हाथ मे मु ह पत्ती लेकर आते या डोरा बाधकर आते, तो क्या तोड देते, या लगा देते? यह काम विवेक के रास्ते पर नही, अपितु अविवेक और क्रोध के अपनाने से हुए हैं। जिन शिष्यो ने गलती की और गुरु ने उन्हें क्रोध से भला-बुरा कहा - तो वे उनमे दूर हो गये और अपना एक सघ, गच्छ, या गण बना कर रहने लगे। फिर यह तो स्वाभाविक बात है कि भूमि पर यदि गोठा पडता है, तो कुछ न कुछ लेकर के ही उठता है। फिर

तो जो किसी भी कारण से किसी भी सघ से अलग होता है, उसके दस पचास अनुयायी हो ही जाते है। फिर तो (सघ) बढता ही जाता है। इस क्रोध से धर्म के टुकडे हुए और जाति के भी टुकडे हुए। प्रारम्भ मे मूल मे क्या बात पैदा होती है, और पीछे वे क्या कर देती है। यदि किसी को क्रोध उत्पन्न न हो तो समीपवर्ती लोग उत्पन्न करा देते हैं। उनका तो कुछ बिगडता नही, पर उनके बहकाने मे आने वालो का तो सत्यानाश हो जाता है। इसलिए कही पर भी किसी क्रोध का प्रसग आने पर हमे अवसर देखना चाहिए कि ठीक है किसी ने कह दिया तो कह दिया। परन्तु मुझे तो अपने स्वरूप मे रहना चाहिए। मुझे क्रोध के अधीन क्यो होना चाहिए ? मुझे उससे क्या लेना देना है। भाई, सब को केवटना पडता है और सबको सभाल करके उनके साथ रहना पडता है और उनको भी साथ रखना पडता है।

पूज्य श्रीलालजी महाराज बडे त्यागी-वैरागी थे। हमारे गुरु महाराज वि०स० १९७२ मे जैतारन मे उनसे मिले तो कहा कि आपने अपने सम्प्रदायो की खूब तरक्की की और आप खूब आनन्द मे हैं। वे बोले नही स्वामीजी, कहाँ की शान्ति है ? यहा अधिक साधु बढे हैं तो उपाधि और भी अधिक बढ गई। कोई सोलह आना कलदार है, तो कोई बारह आना, कोई आठ आना,कोई चार आना और कोई दो आना है,और कोई तो छदाम भर ही हैं। परन्तु अब हमे सबको केवटना पडता है। देखो स्वामी जी, सोलह आने वाले से तो वर्ष मे एक दो बार ही बोलना पडता है। परन्तु छदाम वाले से तो दिन मे दस बार बोलना पडता है। मुझे सबका मन रखना पडता है। जब आप ब्यावर पधारे तब सम्प्रदायवाद था, कुछ साधु पूज्य जी के साथ अकड गये और मर्यादा से बाहिर निकल गये। आचार्य तो गभीर थे सो शान्ति मे रहे और उन्होने उनके साथ भी वही व्यवहार किया। पर दो एक भाइयो ने आकर कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं ? इस प्रकार से शासन की अवहेलना करने वालो को आप मु ह लगाते हैं ? तब उन्होने कहा कि ये नयाशहर (ब्यावर) के श्रावक हैं, मेरे तो तिजोरी मे है और नया शहर तो मेरे लिए तिजोरी है। अब बोलो भाइयो, उन्होने उन्हे कैसा ऊँचा चढा दिया ? जो क्रोध मे भरे हुए थे, वे शान्त हो गये। भाइयो, जब इतनी शान्ति हो, तभी समाज और सघ मे शान्ति रह सकती है और एका बना रह सकता है। वे ऐसे सन्त महापुरुष थे कि वैरी से भी महावैरी मिलता, तो वे उससे भी हसकर बोलते थे। उनकी इस भद्र प्रकृति और हसमुखी आकृति को देखकर दूसरो को बड़ा अटपटा सा लगता और कहते कि इनमे तो कोई

स्थिरता, दृढता या मजबूती नही है । जो ओछे और हलके होते हैं, वे यही कहते है और ऐसा ही देखते है। परन्तु जो गभीर होते हैं, वे विचारते हैं कि इस दुनिया मे तो नाना प्रकार की अनेक स्वभाववाली असख्य वस्तुए भरी हुई हैं । मैं किस-किस को क्या कहता फिरू और किस-किस से लडाई झगडा करके वैर-विरोध मोल लू ! मुझे तो शान्तिपूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहना चाहिए ।

आप लोग यहा व्याख्यान सुनने को आए हैं,परन्तु सबकी एक वेष-भूषा है क्या ? नही है । किसी की पगडी लाल है, किसी की चन्दनिया और किसी की केशरिया है । और कितने ही उघाडे माथे—नगे सिर ही बैठे हैं । तथा कितने ही साफा या अनेक प्रकार की टोपियाँ लगाये हैं । अब क्रोध किस किस पर करोगे ? वेष-भूषा के सिवाय कोई व्यक्ति लम्बा है, कोई ठिगना-बौना है, किसी की बोली से अमृत झरता है, तो किसी की बोली से जहर बरसता है । अब आप किस किसके साथ गोरखधन्धा करना चाहेंगे ? इसलिए इस व्यर्थ के गोरखधन्धे को छोडकर अपने भीतर ऐसी वस्तुए भरने का प्रयत्न करो कि क्रोधी से क्रोधी व्यक्तियो पर भी उनका असर पडे । जो क्षमारूपी खड्ग हाथ मे ले लो, फिर दुर्जन या शत्रु तुम्हारा क्या करेगा ? कुछ भी नही कर सकेगा । कहा भी है—

> क्षमा खड्ग करे यस्य, दुर्जन किं करिष्यति ?
> अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति ॥

जहा पर तृण-घास आदि जलने के योग्य कुछ भी ईंधन नही है, केवल सूखी साफ भूमि है, वहा पर गिरी हुई अग्नि क्या जलाएगी ? वह तो स्वय ही उपशान्त हो जायगी, बुझ जायगी और राख हो जायगी ? वह आगे नही बढ सकती है । यदि आप लोग क्रोध को शान्त करना चाहते हैं तो शान्त बनो, विवेकी बनो और अवसर के ज्ञाता बनो । यदि आप केवल अवसर के ही ज्ञाता बन जाए गे। तो शेष दोनो गुण भी आप लोगो मे आ जावेंगी ।

समर्थ को क्षमा

महाभारत मे ऐसा उल्लेख आता है कि पाचो पाडवो मे और कौरवो मे जब युद्ध होने का अवसर आया तो श्री कृष्णचन्द्र महाराज कौरवो को समझाने गये । उस समय दुर्योधन ने उन्हें क्रोधित करने का उपाय सोचा और बोला—तुम्हारे भीतर क्या है ? तुमने उम्र भर गायें चराई हैं और जाति के हो ग्वाल । तुम राजनीति मे क्या समझते हो ? कभी जीवन मे

तलवार उठाई हो तो राजनीति का पता चले ? तुम पाचो पाण्डवो को पाच गाव देने की बात कहते हो, मैं तो सुई की नोक के ऊपर आवे, इतनी सी भी भूमि को नही दूँगा ? तुम्हे किसने पच बनाया है ? बिना बुलाए और बिना बनाये ही पच बनकर आगये हो ? भाइयो ऐसे शब्द क्या तीन खण्ड के स्वामी से कहने चाहिए थे, दुर्योधन को ? परन्तु ऐसे अपमान भरे कर्कश शब्दो को सुनकर भी श्री कृष्णचन्द्र उससे लडे क्या ? अरे, जिसमे बीस लाख अष्टापद का बल कि बडे बडे पहाडो को भी चूर्ण कर दें, तो उनके सामने दुर्योधन किस गिनती मे था ? चाहते तो उसी समय समाप्त कर देते। फिर आगे महायुद्ध का भी क्या काम था ? परन्तु वे अवसर के ज्ञाता थे। उन्होने सोचा कि यह सुअवसर न मारने का है और न कुछ भला बुरा ही कहने का। अरे, दुनिया खाये बिना रह सकती है परन्तु कहे बिना नही रहती। दुनिया के लोग तो यही चाहते हैं कि हमे कोई नई बात मिले और कहने-सुनने का अवसर हाथ लगे ? दुनिया बिल्ली और चील के समान अपनी शिकार की ताक मे और उसके घात मे तैयार बैठी रहती है। इसलिए श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि मैंने इस समय कुछ भी किया तो लोग मुझे अन्यायी, पक्षपाती और न जाने क्या क्या कहेंगे ? इसलिए दुर्योधन के शब्दो को सुनकर कुछ भी नही बोले और शान्त रहे और क्षमा धारण करली।

यदि श्रीकृष्ण चाहते, तो सब कुछ कर सकते थे। परन्तु उन्होने इतना अधिक अपमानित होने पर भी शान्ति ही रखी। सो भाइयो, दुर्योधन को अपने कडुए कथन से सब भाइयो के साथ मरना पडा और समस्त साम्राज्य के स्वामी पाण्डव बने तथा लोग कृष्ण की उस लोक चातुरी और राजनीति की आज तक प्रशसा करते चले आ रहे हैं।

क्रोध से परिवार का सर्वनाश

एक सेठजी के कसाला (दारिद्रय) आ गया। वे घर मे तीन प्राणी थे स्त्री, लडका और वे स्वय। सेठने सोचा कि अब यहा रहना कठिन है, अत परदेश चलना चाहिए। यह सोच कर वे स्त्री और पुत्र को साथ लेकर परदेश के लिए रवाना हो गए। जब वे जगल मे पहुँचे तो सबको प्यास लगी। सेठ का विचार था कि स्त्री और बच्चे को ससुराल पहुँचा आऊ और मैं परदेश चला जाऊगा। उसने अपना यह भाव स्त्री पर प्रकट कर दिया। इतने मे वे ससुराल के गाव के समीप पहुँचे। सबको प्यास सता ही रही थी, इतने मे एक कुआ दिखाई दिया, सो सेठ लोटा डोर लेकर पानी भरने के लिए कुए पर गया। भाई, पहिले के लोग बिना पात्र और थेले के नही

निकलते थे, उनके कोथले मे लोटा और सिर पर पगडी रहती थी। परन्तु आज के ये अग्रेजो की नकल करने वाले और अपने को सभ्य समझने वाले ये लोग उघाडे माथे रहते है, सो उनके पास क्या मिले ? भूख लगे रास्ते मे, तो क्या सिर खावें और प्यास लगे तो इधर-उधर मारे-मारे फिरेंगे ? विना साधन के क्या खायेंगे-पीयेंगे ? वे कहाँ से खाने और पीने का साधन निकालेंगे ? कोट से या पेट की जेबो से ? अरे, समय पर तो उनके पास रूमाल भी नही मिलता है ? अब सेठ ने लोटे मे डोर कस करके पानी निकाला और स्त्री व पुत्र को पिलाया। फिर जैसे ही वह अपने पीने को पानी निकालने के लिए कु ए की ओर ओधा हुआ कि औरत ने विचार किया कि जब मेरे अच्छे दिन थे तो अपने पीहर अच्छे कपडे और आभूपण पहिन कर जाती थी। अब इस प्रकार के फटे-मैले कपडो मे इनके साथ कैसे पीहर जाऊ ? ऐसे वेप मे तो जाने से मुझे वहुत लज्जित होना पडेगा ? यहा कौन देखता है, क्यो न इन्हे इसी कु ए मे धकेल दू । बस ऐसा दुर्विचार मनमे आते ही उसने आकर सेठ को पीछे से धक्का दे दिया। सेठ कु ए मे गिर पड़ा और स्त्री अपने लडके को गोद मे उठाकर पीहर पहुँची। वहा इस प्रकार अकेली आने पर सबने पूछा—बाई जी, विना कोई समाचार दिये अकेले कैसे आ गई ? तब वह बोली—सेठजी साथ मे आये थे, परन्तु हमे पहुँचाने के लिए यहा तक नही आये और मार्ग के मोड से सीधे ही परदेश चले गये। पर भाइयो, स्त्री ने तो सचमुच बडे परदेश पहुँचाने का काम कर दिया था। कहा है—

'स्वारथ की नार भरतार दियो कूपडार,
आई घरे इम कही गये परदेश मे।
पुन्य के प्रसंग अग-आल नहीं आइ तन,
लेइ गयो काढी अन-सोदागर वेश मे।
काल केले वेते आयो-लक्ष्मी कमाई लायो,
जुगति जीमावे नार-छाया करी शेश मे।
अरे मन रोष नहीं-त्रिया केरी दोष नहीं,
हिरालाल कहै सेठ-जरा नहीं द्वेष मे ॥

सेठ को यद्यपि उसकी स्त्री ने कुए मे धकेल दिया था, पर पुण्यवानी थी, तो वह वच गया। ज्यो ही नीचे गिरा कि एक दाता पकड लिया और उसके नीचे एक दाँता और था सो उसके ऊपर बैठ गया। इस प्रकार उसके जरासी भी चोट नही आई। थोडी देर के वाद उधर ही लक्खी वनजारे की

ालद आ गई। बन जारे ने पानी और मैदान का मौका देखकर वही पडाव
ाल दिया। ज्यो ही पानी भरने के लिए आदमी गया और बालटी कुए मे
ाली, तो सेठ ने रस्सी पकड़ ली। उस आदमी ने आवाज लगाई कि कुए
े अन्दर कौन है ? सेठ ने कहा—मैं एक मनुष्य हूं, मुझे बाहिर निकालो।
ोर को वही ऊपर कुए के खम्भे से बाधकर वह अपने मालिक के पास
हुंचा और कहा—मालिक, कुए मे कोई आदमी है और कहता है कि मुझे
ाहिर निकालो। यह सुनते ही बनजारे ने कहा—चार-छह आदमी जाओ
ौर उसे कुए से तुरन्त बाहिर निकालो। आदमी गये उन्होंने सेठ को बाहिर
िकाल लिया। वे लोग सेठ को बनजारे के पास ले आये। बनजारे ने
ूछा—क्या हुआ भाई ? तुम कैसे कुए मे गिर पडे ? सेठ बोला—पानी पीने
े लिए जैसे ही मैंने लोटा डोर कुए मे डाली की अकस्मात् मेरा पैर फिसल
या और मैं कुए मे गिर पडा। धन्य है उस सेठ को, कि उसने अपनी स्त्री
ा नाम नही लिया। उसने सोचा कि स्त्री की करतूत कहने पर उसकी भी
दनामी होगी और मेरा भी माजना नही रहेगा। बनजारे ने पूछा—आप
हा जा रहे थे ? सेठ ने कहा—मैं परदेश पेट भरने के लिए जा रहा हूँ।
नजारे ने कहा—हमे नावालेखा करने के लिए एक मुनीम की जरूरत है।
दि आपकी इच्छा हो तो हमारे पास ही रह जावें। सेठ के पास अभी
क्ष्मी आने की जोगवाई नही थी, परन्तु था वह बडा होशियार। अत
सने मन मे सोचा कि अभी कुछ दिन इसके पास रह जाना ही श्रेयस्कर
ेगा। अत वह बनजारे के पास रह गया और उसने लगन के साथ ऐसा
ाम करके दिखाया कि बनजारे के खूब कमाई होने लगी। यह देख बनजारे
सोचा कि यह चतुर है और पुण्यशाली भी दिखता है कि इसे रखने के
द मेरे अनाप-सनाप कमाई हो रही है। उसके काम से प्रसन्न होकर बनजारे
अपने व्यापार मे सेठ की आधी पाती रख दी। भाई, फिर कमाई का क्या
ार था ? बस, चार-पांच वर्ष मे ही लाखो की पूजी कमा ली। क्योंकि
िस्मत खुलते देर नही लगती है। कहा भी है कि—

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्य ।'

अर्थात् त्रिया चरित्र को और पुरुष के भाग्य को देव भी नही जानसकता
फिर मनुष्य तो कैसे जान सकेगा ?

हा, तो जब सेठ के पास पूजी आ गई तो उसे सन्तोष भी आ गया।
ब उसने बनजारे से कहा—अब मैं अपने गाव को जाना चाहता हूँ, अत
े घर जाने की स्वीकृति दी जाय। बहुत कुछ अनुनय-विनय के पश्चात्

वनजारे ने स्वीकृति दे दी और उसके हिस्से का धन उसे दे दिया। वह सेठ गाडी पर माल-असवाव लाद कर गाव के लिए रवाना हो गया। उसने सोचा—सीधे घर को न जाकर ससुराल मे सेठानी के और बच्चे के हाल-चाल तो पूछकर पीछे घर जाना ठीक रहेगा। मुझे उससे द्वेप भाव रखकर क्या करना है। वह यदि अच्छी है, तो वही है और यदि बुरी है तो भी वही है। यह सोच कर सेठ ससुराल को चल दिया। जव गाँव के वाहिर पहुँचा तव उसने अपनी ससुराल मे अपने आने का समाचार किसी आदमी से कहलवाया। साला जी दौडे आये, अपने वहनोई से मिले और कुशल-क्षेम पूछा। सेठ ने कहा—सव कुशल-मगल है। सेठ ने अपने घर जाने की कही। साला जी बोले—आपको जाने की इतनी जल्दी क्या है? कुछ दिन तो यहीं रहिये। वाई साहव अभी यही पर हैं, सो कुछ दिन ठहर कर और उन्हे लिवा करके घर को जाना। अभी तो हमारे यहा पधारो। सेठ ने कहा—पीछे लिवाने को आऊगा, अभी मुझे जाने दो। पर साले ने आग्रह किया कि वहनोई साहव, आप को अभी हमारे यहा ठहरना ही पडेगा। आखिर साले की अधिक मनुहार करने पर सेठ ने हुंकारा भर लिया। अव सेठ जी के लिए हवेली का सवसे वढिया सजा हुआ कमरा खोल दिया गया। उनके आदर सत्कार किये जाने लगे। वाई जी से कहा गया कि वहनोई जी आये है। यह सुनकर वह भेली-भेली होने लगी और मन मे पश्चात्ताप करने लगी—हाय, मैंने कितना वुरा काम किया कि पति को कु ए मे धकेल दिया। यह तो इनका आयुष्यवल वलवान् था कि ये वच गये और लाखो का धन कमा करके लाये हैं। पर अव मैं कैसे इनके सामने जाऊ और अपना मुख कैसे दिखलाऊ? इधर सेठानी यह विचार कर रही है और उधर सेठ के मन मे विचार आया—कही शर्म के मारे सेठानी कु ए मे जाकर न पड जावें? इसलिए मुझे स्वय ही उनके कमरे मे जाकर मिलना चाहिए। यह विचार कर सेठ सीधा उनके कमरे मे गया। वहा जाकर देखता है कि सेठानी सामने विचारमग्नसी खडी हुई है। तव सेठ ने स्वय ही पूछा—सेठानी जी, आनन्द से तो हो न? यद्यपि दैवयोग से मैं कुंएं मे गिर पडा था, तथापि तेरे सत्य-शील के योग से मैं वच गया और मुझे रत्ती भर भी कही कोई चोट नही लगी। पर तूने तो उस समय रोना-धोना शुरू कर दिया था। परन्तु तेरे हाथ मे क्या था? भाइयो, पूछो कि रोया कौन? परन्तु सेठ वहुत वुद्धिमान् और दूरदर्शी था, अत वात जमा दी। जो वुद्धिमान् होते हैं, वे समय पर समझदारी से ही काम लेते हैं। कहा है कि राजपूत तो सात पीढी तक वैर को याद रखता है और वनिया सौ वर्प के वैर को भी भुला देता है।

सेठ के मधुर वचन सुनते ही सेठानी खुश हो गई और उसके मन की सारी दुविधा दूर हो गई। सेठ जी वहा दस-पाच दिन रहे। उनकी खूब मेहमानदारी की गई। कुछ दिन पश्चात् सेठ धूम-धाम से विदा होकर और सेठानी व लडके को साथ मे लिवा करके अपने घर आया। उसने अपने पुराने मकान को गिरा करके नया मकान बनवाया और गाव मे व्यापार-धन्धा करने लगा। सेठ ने जनता की खूब सेवा की। इससे उसका व्यापार-धन्धा भी खूब चलने लगा और चारो ओर उसकी नामवरी भी खूब फैल गई। इस प्रकार सेठ का व्यापार खूब फैल गया और लक्ष्मी भी दिन दूनी-रात चौगुनी के हिसाब से बढने लगी। कुछ वर्ष इस प्रकार आनन्द से बीत गये।

एक दिन अवसर देखकर सेठानी ने सेठ से कहा—अब बाबू बडा हो गया है, अत उसका विवाह कर देना चाहिये। सेठानी की बात सुनकर सेठ मन मे विचारने लगा—पहिले ही यह सेठानी मुझे ऐसी मिली है। इसलिये यदि किसी अच्छे घराने की लडकी लडके को मिल जाय, तब तो ठीक है। अन्यथा यदि लडके पर भी मेरी जैसी नौबत आ गई, तो बेचारे का जीवन बर्बाद हो जायगा। ऐसा विचार करके उसने सेठानी से कहा—इतनी जल्दी बीन्दणी को लाने की जरूरत क्या है। शान्ति के साथ अच्छा घराना और सुन्दर, सुयोग्य, सुशील लडकी देख करके विवाह करेंगे, जिससे कि घर बिगडने का अवसर न आवे। परन्तु सेठानी को तो घर मे बीन्दणी लाने की जल्दी थी। एक दिन जब यह सेठानी उपाश्रय मे सामायिक करने को गई, तो वहा पर एक दूसरी सेठानी भी अपनी लडकी के साथ आई हुई थी। उसकी लडकी के सौंदर्य को देखकर यह मुग्ध हो गई और एक टक टकी लगाकर उसकी ओर देखने लगी। तब उस लडकी की मा ने कहा—सेठानी जी, देखती क्या हो ? लाखो मे भी ढूंढने पर ऐसी लडकी नहीं मिलेगी। मेरी लडकी तो साक्षात हीरा है। यदि हा भरो तो विवाह जैसा चाहोगी, वैसा ही कर दूगी। सेठानी ने सोचा—लडकी अच्छी सुन्दर, गुणवती और सुशीला है। फिर यह विवाह भी अच्छा करने को कहती है। अत क्यो न इसे अपनी स्वीकृति दे दूं ? ऐसा विचार करके उसने कहा—अच्छा, मुझे यह रिश्ता मजूर है। तब उस दूसरी सेठानी ने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें रिश्ता मजूर है, तो लडकी को अगूठी पहिना दो। सेठानी ने भी सेठ से पूछे बिना ही उस लडकी को अगूठी पहिना दी। घर आ करके उसने सेठ से कहा—मैंने लडके का सगपण कर दिया है। सेठ उसकी बात सुनकर मन ही मन कहने लगा कि यह लडकी तो इससे भी सवाई है। पर अपने

को उससे क्या लेना है। अरे, घर मे तो सास और वहू को माथ-साथ रहना है। मुझे तो इनके बीच में रहना ही नही है। फिर यह स्वय ही अपने मनकी वहू तलाश करके आई है, अत मुझे कोई आपत्ति नही है। शुभ लग्न पर सेठ ने लडके का विवाह धूम-धाम से कर दिया। परन्तु वहू का रग-ढग तो निराला ही था। उसने आते ही अपना रग दिखाना शुरू कर दिया। उसकी नित्य नई हरकतें देखकर सेठानी मन मे विचारने लगी कि यह क्या हो गया। अव यदि मैं सेठ से कहती हू तो सुनकर वे भी चिन्तित होंगे और लडके को भी दुःख होगा। अत अब तो सब्र रखने मे ही ठीक है। सेठानी वहू की हर हरकत पर जैसे जैसे सब्र करती गई, वहू की हरकतें त्यो त्यो और भी आगे वढती गई। उसे तो अव पीछे पैर रखने की जरूरत ही नही रही। धीरे धीरे वहू की हरकतें सेठजी को और कवर साव को भी मालूम होने लगी। सेठ ने सोचा - अरे, यह तो वहुत वुरा हुआ। अब तो लडके का जीवन खतरे मे पड गया। परन्तु लडका सुपात्र था। आखिर वह अपने ही वाप का वेटा था। और सेठ के समान ही दूरदर्शी था। अव सेठानी ऐसी मोम जैसी नरम वन गई कि वहू के ऊपर वह कुछ भी गुस्सा नही करती है। लडाई का मौका आने पर भी वह टाल देती है। परन्तु वहू तो सदा ही लड़ाई की ताक मे रहती है और सोचती है कि मौका हाथ लगे तो मैं सासू जी को आडे हाथो लूँ। जो व्यक्ति जिस वात की चाह रखता है, तो उसे वह मौका मिल ही जाता है।

एक दिन की वात है—सेठ जी जीमने के लिये आये। सेठानी जी ने गीदी-वाजोट विछा दिया, लोटा-गिलास पानी से भरकर रख दिया और सेठानी जी वडे प्रेम से सेठजी को जिमाने लगी। वहू रानी रसोई वना रही थी। और गर्म-गर्म फुलके सेठजी को भेज रही थी। सेठजी के जीमते समय खिडकी मे से सूरज की किरणें आकर सेठजी के ललाट पर पड रही थी। सेठानी ने सोचा—कही सेठजी का सिर न दुखने लगे, इस विचार से उसने अपना पल्ला आड़ा कर दिया, जिससे सूरज की किरणो का सेठजी के ललाट पर पडना वन्द हो गया। यह देखकर सेठजी को अचानक वे-मौके की हसी आ गई। सेठ मन मे सोचने लगा—वाहरी दुनिया! यह ससार वडा मक्कार है। कहा है कि—

स्वार्थ की तो है सगाई जोइझो इण ससार।
स्वार्थ बिना बोले नहीं—पलभर करे न प्यार॥

अरे, जिस दिन इसने मुझे कुए मे धकेला, उस दिन भी मैं ही था, और

आज भी वही मैं हूँ ? पर आज यह सूरज की किरणे रोकने के लिये पल्ला आडा कर रही है। आज इससे मेरा इतना भी दु ख नही देखा जाता है। यह ससार कितना विचित्र है। सेठ की हंसी को सेठानी ने भी देख लिया और उसे भी हसी आ गई। इस प्रकार एक दूसरे को देखकर मुस्करा गये। वहू ने जब यह दृश्य देखा तो वह डाकिन की तरह आखें फाड कर घूरने लगी और विचारने लगी कि ये सास-ससुर आज कैसे हसे ? सेठजी जीम कर चले जाने के बाद लडका जीमने को आया। इस समय सेठानी किसी काम से इधर उधर चली गई थी। अब लडका और वहू दोनो ही रसोई घर मे थे जब लडके ने जीमना शुरू किया, तब वहू ने उससे कहा—देखोजी, आज तुम्हारे मा-बाप मेरे ऊपर हसे। क्या मुझे भोजन बनाना नही आता है ? अथवा ऐसी क्या बात थी, जिस पर दोनो जने भोजन करते समय हसे ? जब तक तुम इस बात का पूरा पता लगाकर नही बताओगे, तब तक मैं भोजन नही करूँगी। लडके ने समझाया कि इसमे इतना विचार करने की क्या बात ? यो ही हसे होगे। परन्तु वहू अपनी हठ पर अडी रही और कहती रही कि जब तक इस हसी का पता नही लगाओगे, तब तक मैं रोटी नही खाऊगी। खैर। उस दिन तो लड़का चला गया। परन्तु दूसरे दिन भी वही बात और तीसरे दिन भी वही बात वहू ने कही और रोटी नही खाई। लडके ने मन मे सोचा— हे भगवान, यह कैसी स्त्री पल्ले बध गई है ? यह जरा सी बात के लिये अपनी हठ ही नही छोडती है। मा-बाप तो एक दिन चले जावेंगे, परन्तु इसका दु ख तो मेरी छाती पर हमेशा ही रहेगा। आज लडके ने भी इसी चिन्ता मे भोजन नहीं किया और चितातुर हो गया।

सेठ की नजर लडके पर पडी तो उसने पूछा—अरे बाबू, आज तू उदास क्यो दिख रहा है ? तुझे ऐसी कौन सी चिन्ता है। अरे, अभी तो मैं बैठा हू और सारा कारोबार सभाले हुए हूँ। लडके ने कहा—पिताजी, मुझे धन की या कारोबार की चिन्ता नही है। परन्तु आपने जो मेरे पल्ले यह अटाला बाध दिया है, उसकी चिन्ता से उदास हूँ। सेठ ने कहा हा बेटा, दु ख तो है, परन्तु अब क्या किया जा सकता है। अपना घराना भी ऐसा नही है कि इसमे कुछ परिवर्तन किया जा सके। अब तो जो पल्ले बध गई है, उसे केवटने मे ही भलाई है। पर तू यह बता कि क्या बात हुई है ? लडके ने कहा—पिताजी, तीन दिन पहिले जब आप जीम रहे थे और उस समय किसी कारण से आपको हंसी आ गई थी। बस, उसी के विषय मे वह तीन दिन से पूछ रही है और तभी से उसने भोजन करना भी छोड दिया है। यह सुनते ही सेठ पुत्र के मोह मे आ गया और कहने लगा कि बेटा, कोई बात नही थी

और हसने का तो वहू से कोई भी सम्वन्ध नही था। यह तो हम दोनो की वात थी, सो तेरी मा को देखकर मुझे हसी आ गई। कोई वडी वात नही थी, वह तो जरा सी वात थी। देख, परदेश को जाते समय जव मैं तुम दोनो को ननिहाल मे पहुँचाने जा रहा था, उस समय रास्ते मे मैं जव कुए पर पानी खीचने को गया, तव तेरी माँ ने मुझे कुए मे धकेल दिया था। और अव एक दिन वह भी आया, जव वह मेरे ललाट पर सूरज की किरणें भी नही सहन कर सकी उसने अपना पल्ला आडा कर दिया। वस, यह देखकर ही मुझे हसी आ गई। इसके सिवाय और कोई वात नही थी। जव लडका शाम को घर पहुँचा तो वहू ने ताना मारा कि क्या आपने मुझे मारने का विचार ही कर लिया है ? लडके ने कहा कि मैं तो तुझे नही मारना चाहता हूँ ? फिर भी यदि तू मरे तो यह तेरी मरजी की वात है। परन्तु उस दिन तेरे विपय मे माता-पिता नही हसे थे। कोई और ही वात थी। वहू ने पूछा—तो फिर क्या वात थी ? लडका सरल स्वभाव का था, अत स्त्री के मोह मे आकर और भविष्य के परिणामो को सोचे विना ही सारी वात ज्यो की त्यो कह दी। वहू ने सोचा—अव तो सास की चावी मेरे हाथ मे आ गई है। अव यदि मैं सास को नीचा न दिखा दू, तो मेरा नाम ही क्या ? अव तो वह हर काम विगाड करके करने लगी। यह देख सास ने कहा— वहू जी, यह घर तुम्हारा है, अत जो भी नुकसान होगा, वह तुम्हारा ही होगा। वह कहने लगी—वस, वस ! चुपचाप वैठी रहो, तुम वात करने के योग्य नही हो ? सास ने पूछा—वहू जी, क्या वात है, कुछ तो कहो। वह वोली—कहू क्या ? तुमने अपने धनी को कुए मे धकेला था। मैने नही धकेला था। यह सुनकर सास स्वत. ही चुप हो गई। उसने मन मे विचारा मेरी वात प्रकट हो गई है। अव यह एक से सो औरतो मे और फिर सारे गाँव मे फैल सकती है। अत अव इस प्रकार से अपमानित होकर जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। यह विचार करके सेठानी ऊपर के कमरे मे गई और अपनी ओढनी से गले मे फासी लगाकर मर गई। भाई, इतने वर्पो की छिपी हुई वात थी। परन्तु अव वह चौडे हो रही है। वस, इसी चिन्ता मे वह मर गई। अव थोडी देर के वाद सेठ जी घर पर आये और वहू से पूछा कि तेरी सास कहाँ पर है ? उसने इशारे से वताया कि ऊपर के कमरे मे है। ज्यो ही सेठ ऊपर गया तो देखता हैं कि वह तो फासी लगाकर मर गई है। मालूम होता है कि लडके ने वहू से वात कह दी और उसने इसका ताना मार दिया होगा। उसे वह सहन नही हुआ और फासी लगाकर मर गई। जव वहू ने अपनी सास को ताना मार दिया है, तव कभी यह मुझे भी ताना मार सकती है।

अत उसने आवेश मे आकर और चिन्ताग्रस्त होकर सेठानी का तो फन्दा खोल करके नीचे सुला दिया और वह गले फासी लगाकर स्वय भी मर गया। जब बहुत देर तक पिताजी दुकान पर नही पहुंचे, तब लडका दुकान बढा करके घर पर आया और स्त्री से पूछा कि पिताजी कहा हैं ? उसने कहा कि ऊपर कमरे मे दोनो सलाह कर रहे हैं । यह सुन करके लडका ऊपर गया तो देखता है कि माता-पिता दोनो ही फासी लगा करके मर गये हैं । यह देखते ही उसके हृदय पर वज्रपात-सा हुआ । उसके पैरो के नीचे से भूमि खिसकने सी लगी । उसने सोचा—यह क्या गजब हो गया ? माता-पिता तो मेरे पवित्र तीर्थ के समान थे। परन्तु मैने विना सोच-विचार किये स्त्री के मोह मे आकर के वह बात कह दी । जिसके फलस्वरूप आज मुझे अपने माता-पिता से हाथ धोना पडा और बात खुलने से मर्माहत होकर अपने प्राणो की बाजी लगा दी। अब मैं इस हत्या से कैसे बचूगा। मैंने नासमझी मे बडा भारी अनर्थ करा दिया। अब ऐसे कलकित जीवन से तो मेरा मरना ही अच्छा है । यह विचार करके उसने पिताजी के गले की फासी छोडकर उन्हे नीचे लिटा दिया और वह भी फासी लगा करके मर गया। जब बहुत देर हो गई और स्त्री ने अपने पति को ऊपर से आया हुआ नही देखा तो वह भी ऊपर गई और देखती क्या है कि तीनो ही फासी लगाकर मर गये है। यह दृश्य देख करके वह भी किंकर्त्तव्यमूढ हो गई। उसने सोचा कि इन सबका मरण मेरे ही निमित्त से हुआ है । यदि मैं सास से ऐसा नही कहती, तो आज यह बीभत्स दृश्य देखने को नही मिलता और सारे घर का सत्यानाश नही होता । अब यदि मै जीवित रहती हू तो राज्य भी मुझे मारे विना नही छोडेगा। सरकार मुझे पकड कर फासी के तख्ते पर चढा देगी। अत वहा मरने की अपेक्षा तो यही पर फासी लगा करके मर जाना अच्छा है । यह विचार कर उसने अपने पति के शरीर को उतार कर नीचे रखा और वह बहू भी फाँसी का फन्दा गले मे लगा कर मर गई।

इस कथानक के कहने का साराश यह है कि क्रोध कितना भयकर और अनर्थकारक होता है । यदि बहू की प्रकृति क्रोधमय नही होती, तो क्या यह सारा का सारा घर वर्बाद होता ! नही । परन्तु इस क्रोध से एक घर ही नही, बल्कि सहस्रो घर बर्बाद हो गये । अतएव यदि आप लोग अपने घरो को आबाद रखना चाहते हो, खुशहाल देखना चाहते हो और सर-सब्ज बनाना चाहते हो, तो क्रोध कषाय से बचते रहना । यदि आप इस क्रोध रूपी भूत को जीतना चाहते हैं, तो क्षमा को धारण करें । ●